यू जी सी अनुमोदित पत्रिका
आई एस एस एन **0523-1418**

अंक 314 वर्ष 63

भाषा

संयुक्तांक

मई–जून–जुलाई–अगस्त 2024



सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

भाषा
मई–जून–जुलाई–अगस्त 2024

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ टंकित रूप में (यूनिकोड में) भेजी जाएँ। भेजी जानी वाली सामग्री के साथ रचनाकार कृपया अपनी पासपोर्ट आकार की फोटो, पूरा पता और अपना संक्षिप्त परिचय भी अवश्य भेजें।

2. लेख आदि सामान्यतः फुलस्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए। लेख इत्यादि रचनाएँ भेजते समय इस आशय का भी प्रमाण–पत्र भेजा जाय कि रचना अप्रकाशित है तथा किसी भी रूप में अन्यत्र प्रकाशित नहीं हुई है।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

9. द्वैमासिक पत्रिका भाषा का ई–संस्करण केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वेबसाइट (www.chdpublication.education.gov.in) पर देखा जा सकता है।

10. भाषा पत्रिका में प्रकाशित अंकों से संबंधित लेखकों/पाठकों की टिप्पणियों/सुझावों का स्वागत है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं पर पाठकों की टिप्पणियों को 'आपने लिखा' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित किया जाएगा।

संपादकीय कार्यालय

संपादक, भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066



भाषा

मई–जून–जुलाई–अगस्त 2024

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)



प्रधान संपादक

प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर'

परामर्श मंडल

प्रो. जी. गोपीनाथन
प्रो. चक्रधर त्रिपाठी
प्रो. श्रीराम परिहार
प्रो. नरेंद्र मिश्र
प्रो. किरण हजारिका
प्रो. विशाला शर्मा
श्री कुलदीप अग्निशेखर

संपादन मंडल

संपादक

डॉ. अनुपम माथुर
डॉ. नूतन पाण्डेय

सह–संपादक

डॉ. प्रतिष्ठा श्रीवास्तव
श्री प्रदीप कुमार ठाकुर

कार्यालयीन व्यवस्था

विक्रांत हुड्डा
संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **63 अंक : 3(314)**
मई-जून-जुलाई-अगस्त 2024

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ई–मेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011-26105211/12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : acop-dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823è 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग,
दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ई–मेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in → Quick Payment → Ministry (007 Higher Education) → Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफॉर्मा भरकर भेजें।
3. भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य :

1. एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	(डाक खर्च सहित)
4. दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5. बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

भाषा
मई–जून–जुलाई–अगस्त 2024
(संयुक्ताकं)

प्रधान संपादक की कलम से
संपादकीय

स्मृति कलश

1. अशोक के फूल — आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी — 09
2. कर्तव्य परायणता — बालकृष्ण भट्ट — 16
3. क्या लिखूँ — डॉ. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी — 19
4. कछुआ–धरम — पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी — 23

आलेख

5. हिंदी कहानी में चित्रित ग्रामीण समाज और उसकी समस्याएँ — डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन — 27
6. भूमंडलीकरण के थपेड़े झेलतीं तीन स्त्रियाँ — डॉ. एलाङ्बम विजयलक्ष्मी — 33
7. कस्मै देवाय हविषा विधेम — डॉ. राजेंद्र गौतम — 41
8. भारतीय ज्ञान परंपरा और शिक्षा नीति — डॉ. एस.ए.मंजुनाथ — 45
9. उषाकिरण खान की कहानियाँ : लोक, समाज और संघर्ष — डॉ. मंटू कुमार साव — 51
10. ब्रिटिश उपनिवेशवाद और प्रेस नियंत्रण कानून — डॉ. गजेंद्र पाठक, डॉ. वर्षा कुमारी — 59
11. पृथ्वीराज रासो में कनवज्ज समय के षट्ऋतु वर्णन का औचित्य — डॉ. उषा शर्मा — 67
12. मोहन राकेश के नाटकों का समकालीन परिप्रेक्ष्य — डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति — 79
13. नदियों के अस्तित्व संघर्ष की कविताएँ — डॉ. शशि शर्मा — 89
14. निर्गुण संत साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री–चिंतन का स्वरूप — डॉ. अशोक कुमार मीणा — 94
15. भारतीय संतों की वाणी में एकता की भावना — पूजा पाराशर — 102
16. महाराष्ट्र की घुमंतू वासुदेव परंपरा — डॉ. तुकाराम दौड — 109
17. संत कवि दादूदयाल के साहित्य में साझी संस्कृति — प्रो. पठान रहीम खान — 120
18. श्रवण बाधित विद्यार्थियों की समस्याएँ और पुनर्वास कार्यक्रम — डॉ. रेखा रानी — 127
19. अहीरवाटी बोली का भाषिक संदर्भ — डॉ. कमलेश कुमारी — 135
20. स्वबोध में निहित है उन्नति का बीजमंत्र — डॉ. गौरव रंजन — 147
21. विज्ञानकथा साहित्य के सौ साल — औदुंबर बबनराव मोरे, प्रो. भाऊसाहेब नळे — 155

यात्रा–वृत्तांत

22. शिवसागर की राजधानी यात्रा — सागर देसले — 161

साक्षात्कार

23. केवल साहित्य है जो संवेदना को बचाए हुए चल रहा है : काशीनाथ सिंह — पल्लवी फताटे — 168

कहानी

24. पक्की स्मृतियों के कच्चे आँगन — नीरज नीर — 173
25. संत्रास — मंगला रामचंद्रन — 178
26. माँ (मराठी / हिंदी) — विजयावाड, अनुवाद– डॉ. अशोक बाचुलकर — 185
27. नमक (बांग्ला / हिंदी) — महाश्वेता देवी, अनुवाद – मीता दास — 194
28. वेबसाइट (मलयालम / हिंदी) — चंद्रमति, अनुवाद– जे.एस.तंकमणि अम्मा — 207

कविता

29. हर ओर हताश–निराश — कागो मादो — 215
30. सारनाथ — नरेंद्र पुंडरीक — 217
31. मेरी कविताएँ आजकल — वीरभद्र कार्कीढोली — 219
32. सोमवार की सुबह — सुशांत सुप्रिय — 221
33. कुछ अनिवार्य प्रश्न (मराठी / हिंदी) — पी. विट्ठल, अनुवाद– प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर' — 223
34. मुक्ति (मराठी / हिंदी) — संगीता बर्वे, अनुवाद– डॉ. सुलभा कोरे — 227
35. बाजार (बोडो / हिंदी) — फुकनचंद्र बसुमतारी, अनुवाद– डॉ. स्वर्णप्रभा चैनारी — 229

पुस्तक समीक्षा

36. दलित स्त्री केंद्रित कहानियाँ : एक मूल्यांकन (कहानी संग्रह) / रजतरानी मीनू — डॉ. पूनम तुषामड़ — 233
37. रूपक और बिंब से बुनी गई गंभीर कहानियाँ (कहानी संग्रह) / पवन माथुर — प्रो. रामदेव शुक्ल — 240
38. धरोहर : एक रचनात्मक आंदोलन की तहरीर (पत्र संचयन) / डॉ. एन. सिंह — डॉ. राजेश पाल — 250

प्राप्ति स्वीकार — 258

संपर्क सूत्र — 259

सदस्यता फॉर्म — 264

प्रधान संपादक की कलम से



युगबोध समसामयिक परिस्थितियों के ज्ञान की अवधारणा है। समसामयिक परिस्थितियों में किसी काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थितियाँ सम्मिलित मानी जाती हैं। अतः युगबोध का सीधा संबंध सृजन प्रक्रिया से है। यही युगबोध नित नवीन साहित्य का संसार बुनता है जिसका मूल तंतु संवेदना है। संवेदना एवं संवेदना से निर्मित मानवीयता प्रत्येक युग की माँग रही है। यह मन की प्रवृत्ति को खंगालती है, तैयार करती है और अंततः परिवेश से लेकर एक नवीन युग की निर्मात्री भी होती है। आदि श्लोक इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। "मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्।।" अर्थात् 'हे निषाद! तुम अनंत वर्षों तक प्रतिष्ठा प्राप्त न कर सको क्योंकि तुमने क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से कामभावना से ग्रस्त एक का वध का डाला है।' यह श्लोक आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के मुख से निकला एक बहेलिए के प्रति श्राप है। किंतु मर्म पर चोट करती संवेदना ने उन्हें आदिकवि वाल्मीकि बना दिया और रामायण का रचयिता भी। विचारमग्न महर्षि वाल्मीकि मुख से निकले इस श्रापवचन से उद्वेलित हो उठे कि यह अकारण ही नहीं हुआ। अंततः उनकी चिंता शांत हुई। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने उन्हें दर्शन दिए और देवर्षि नारद द्वारा उन्हें सुनाई गई राम कथा का स्मरण कराया। उन्होंने महर्षि को प्रेरित किया कि पुरुषोत्तम राम की कथा को काव्यबद्ध करें। यह प्रेरणा 'रामायण' के बालकांड द्वितीय के श्लोक 32 में इस प्रकार उल्लिखित है "रामस्य चरितं कास्त्रं कुरू त्वमृषिसतम्। धर्मामनो भगवतों लोके रामस्य धीमतः।। वृत्तं कथथ धीरस्य यथा ते नारदाच्द्दृतम् रहस्यं च प्रकाशं च यह वृत्तं तस्य धीमतः।।"

संवेदना की जड़ें जितनी गहरी होंगी, उसकी विशालता ओर उससे निकली शीतलता अनादिकाल तक महसूस की जाती रहेगी। द्वापरयुग में यही संवेदना अर्जुन को व्यथित करती है। कुरुक्षेत्र में अपने सगे–संबंधियों भाइयों को युद्धक्षेत्र में खड़ा देख उनका मन बोझिल हो उठता है, वे युद्ध में अपने सारथी श्री कृष्ण से अपनी अज्ञान भावनाओं के आवेग में कहते हैं– "सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति। वेपयुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।।(29) गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्वक्चैव परिदह्यते। न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।।" (30) अर्थात् मेरे शरीर के सभी अंग काँप रहे है और मुख सूखा जा रहा है, ओर मेरे शरीर के कंपन से रोमांच उत्पन्न हो रहा है। मेरे हाथ से गांडीव छूट रहा है, और त्वचा भी जल रही है, मेरा मन

भ्रमित–सा हो रहा है, इसलिए मैं खड़ा भी नहीं हो पा रहा हूँ।' इस प्रकार संवेदना से उपजे अर्जुन के प्रतिउत्तर में श्री कृष्ण ने कालजयी कृति उपदेशपरक श्रीमद्भगवद् गीता का सृजन किया। तब से लेकर संवेदना के बीजतंतु से रचनासंसार प्रवाहमान है। आदिकालीन कवि संत कबीर, सूर, तुलसी से लेकर यह रचनायात्रा रीतिकालीन कवियों तथा आधुनिक काल से सद्यः संवेदना तक मानव सृजन में लगी हुई है। इन कालजयी कृतिकारों ने तत्कालीन समाज के नैतिक मूल्यों, सद्‌चार–सद्‌विचार, सदव्यवहार का सुंदर रूप निरूपित किया है जिससे मनुष्य में मनुष्यता शेष रहे।

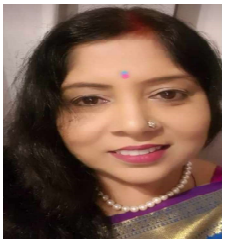
वर्तमान समय में देश में हुई कुछ घटनाओं ने मानव जगत को विचलित किया है जो दर्शाता है कि घटती संवेदना पृथ्वी के अस्तित्व को खतरे में डाल रही है और मानव सभ्यता नैतिक पतन की ओर है। एक जिम्मेदार नागरिक होने के नाते हम सभी का यह दायित्व है कि हम अपनी संवेदना को टटोलें, विवेक का इस्तेमाल करें और आत्ममूल्यांकन करें कि संवेदनहीनता से अस्मिता, प्रतिष्ठा पर आंच न आए, अपितु ऐसी कोमल भावनाएँ रखें जिससे मानुष होने का अर्थ बना रहे। स्वतंत्रता आंदोलन के समय दिनकर, पंत, निराला जैसे महान क्रांतिकारी कवियों ने चेतना जगाने की जो मशाल जलाई थी, वह मशाल वर्तमान साहित्यकारों को दृढ़ता से थामकर संवेदना को खत्म न होने देने का आह्‌वान करते रहना चाहिए। कृतिकार 'दिनकर' ने 'रश्मिरथी' में लिखा है– 'ऊँच–नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है, दया धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है'।

भारतीय शास्त्रकारों, साहित्यकारों ने अपने काव्य प्रयोजन से सदैव मनुष्यता की रक्षा ही की है। "काव्यंयशसेऽकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परिनिर्वतये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे।।" 'काव्यप्रकाश' रचयिता मम्मट ने काव्य प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'काव्य यश की प्राप्ति के लिए धन के उपार्जन के लिए, व्यवहार ज्ञान के लिए, अमंगल निवारण (नाश) के लिए, तुरंत ही परमानंद की प्राप्ति के लिए तथा प्रियतमा के समान उपदेश देने के लिए होता है।' काव्य सृजन का प्रतिपाद्य यह दर्शाता है कि रचयिता साहित्य रचते समय अपने काव्य प्रयोजन का स्वयं चयन करे। निदेशालय की भाषा पत्रिका का प्रयोजन भी व्यवहार ज्ञान एवं अमंगल निवारण ही है। प्रस्तुत अंक में सम्मिलित समस्त रचनाकारों को शुभकामनाओं सहित हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ और कामना करता हूँ, यह पत्रिका अपने काव्य प्रयोजन में सफलीभूत हो। प्रस्तुत संयुक्ताक में आप सभी को संवेदना के विविध रूप पढ़ने को मिलेंगे। आपके सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।



(प्रो.सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर')

संपादकीय



मनुष्य जाति आदिम काल से लेकर वर्तमान समय तक अनेक आतंरिक बाह्य समस्याओं से जूझती आ रही है, चाहे वह आत्म–व्यथा हो या समाजजनित पीड़ा या पारिवारिक, आर्थिक अथवा धार्मिक द्वंद्व। इन सभी मसलों से दिन–प्रतिदिन जूझता प्रभावित होता उसका संघर्षशील अंतर्मन निज से परोन्मुख होता हुआ सर्वमानव कल्याण हेतु निरंतर विचार–मनन का मार्ग भी ग्रहण करता है। भारतीय समाज ने भी जब–जब राजनीतिक–धार्मिक–सांस्कृतिक संकटों का सामना किया है तो हमारे संत–साहित्यकारों ने मूलतः मानवमात्र के उत्थान और मानसिक शांति के प्रेरक बनने के साथ समाज में व्याप्त अशांति और धर्म–जातिगत विद्रूपता पर कठोर–मधुर वाणी–प्रहार करके स्वस्थ समाज की पुनर्रचना में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

कोई भी साहित्यकार किसी प्रभाव के अभाव में रचना नहीं कर सकता। वह अपने परिवेश, अपने समय–चक्र से निरंतर प्रभावित होता हुआ समाज से ग्रहण किए हुए तत्वों को सुसंस्कारित–परिमार्जित–कांतासम्मत रूप में समाज को ही लौटाता है। मूलतः संत का मूल धर्म मानव धर्म है और वह निरंतर मानव–धर्म का चिंतन करता हुआ समाज में समरसता की स्थापना का प्रयास करता है। लोकोपकारी संत का मानदंड उसकी लोकहितकारी वाणी ही है और उसके लिए उसका शास्त्रज्ञ और सुशिक्षित होना जरूरी नहीं है। हमारे अधिकतर संत–साहित्यकार अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित ही होने के कारण इनकी भाषा प्रायः अनगढ़ अवश्य है किंतु सच्ची और खरी अनुभूतियों की सहज और सुबोध्य अभिव्यक्ति के कारण इन संतों की अधिकतम रचनाएँ न केवल उत्तम कोटि के साहित्य में परिगणित होती हैं अपितु अद्यसामयिक प्रश्नों–प्रसंगों में भी आधुनिक मनीषियों द्वारा उद्धृत की जाती हैं।

पंद्रहवीं शती विक्रमी के उत्तरार्ध से उद्‌भूत संत–परंपरा में रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य और मध्वाचार्य से निःसृत भक्ति की वेगमयी धारा उत्तरोत्तर विकसित होती हुई उत्कल में संत जयदेव, महाराष्ट्र में संत नामदेव और संत ज्ञानदेव, पश्चिम में संत सधना और बेनी, असम में शंकरदेव और माधवकंदली तथा कश्मीर में संत ललद्यद में विस्तार पाती हुई मानवमात्र का कल्याण करती रही। इन संतों के चिंतन का आधार मानवकल्याण है और इनकी दृष्टि में मानव मानव में कोई भी भेद नहीं है। इनका मानना है कि कोई भी व्यक्ति किसी विशेष कुल में जन्म

लेकर विशेष नहीं हो जाता। इन संतों ने मनुष्यों में भेद करने वाली जाति–व्यवस्था का कठोरता से विरोध किया और सबको एक समान मानकर प्रेमभाव से देखने पर बल दिया है। कबीर ने मनुष्यों के बीच भेदभाव और ऊँच–नीच की भावना को विकास में बाधक माना है और स्पष्ट संदेश दिया है "जौ तूं बामन बामनी जाया, तौ आन बाट ह्वे क्यों नहीं आया। जौ तूं तुरुक तुरकानी जाया, तौ भीतर खतना क्यों न कराया।" गोस्वामी तुलसीदास ने भी राम द्वारा शबरी के जूठे बेर ग्रहण करने और निषादराज तथा भालू–बंदरों के मित्रता करने के अद्‌भुत प्रसंगों द्वारा मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र के माध्यम से समाज को प्रत्येक मानव ही नहीं, सभी प्राणियों के प्रति समभाव रखने का संदेश दिया है। संत रामानंद यदि सामाजिक बदलाव के लिए सभी के साझे प्रयासों का आह्‌वान करते हैं तो संत नामदेव सर्वधर्म समानता का संदेश अपने अभंगों के माध्यम से देते हैं।

इस परंपरा में जितने भी संत–भक्त कवि हुए, उन सबने मानवता को ही सर्वोपरि मानते हुए उसे दूषित करने वाले विचारों–कृत्यों की जमकर भर्त्सना की, अपनी कविताओं और संदेशों द्वारा समाज में फैले अज्ञान, पाखण्ड और मानव–विरोधी भावनाओं पर प्रहार करते हुए परस्पर प्रेम–भाव का संदेश दिया। संत–साहित्य ने भारतीय समाज और संस्कृति को आध्यात्मिकता के साथ न केवल उच्चतर मानवीय मूल्य प्रदान किए हैं, अपितु आचरण में नैतिकता और संयमशीलता बरतने का आग्रह भी किया है।

भाषा पत्रिका का प्रस्तुत संयुक्तांक अपने मिश्रित कलेवर के साथ आप सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। इस अंक में स्मृति कलश कालम के अंतर्गत हिंदी साहित्य की महान विभूतियों – श्रद्‌धेय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, बालकृष्ण भट्‌ट, डॉ. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी तथा पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी को उनके जन्मदिवस पर भावमय श्रद्‌धा–सुमन अर्पित करते हुए उनके द्वारा रचित एक–एक निबंध को संचयित किया गया है। प्रस्तुत अंक में संकलित आलेखों में संत–साहित्य के विभिन्न पक्षों को छूते आलेख समाहित हैं तो निकट अतीत में प्रणीत रचनाओं का भिन्नपक्षीय आकलन भी। श्रवण बाधित विद्यार्थियों की समस्याओं जैसे सामाजिक चिंतन के अछूते साहित्येतर विषयों तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद और प्रेस नियंत्रण कानून एवं विज्ञानकथा से संबंधित तथ्यपरक आलेखों को पत्रिका में शामिल करने का प्रयास किया गया है। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित तथा हिंदी साहित्य की साठोत्तरी पीढ़ी के सुप्रसिद्‌ध लेखक काशीनाथ सिंह जी के साक्षात्कार ने इस संयुक्तांक की गरिमा में और अभिवृद्‌धि की है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस अंक की सामग्री हमेशा की तरह पाठकों के लिए हृदयग्राही और उपयोगी सिद्‌ध होगी। आपकी सहृदय प्रतिक्रियाओं और आशीर्वचनों की प्रतीक्षा रहेगी।

(डॉ. अनुपम माथुर)

अशोक के फूल



आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

अशोक में फिर फूल आ गये हैं। इन छोटे–छोटे, लाल–लाल पुष्पों के मनोहर स्तबकों में कैसा मोहन भाव है! बहुर सोच–समझकर कंदर्प–देवता ने लाखों मनोहर पुष्पों को छोड़कर सिर्फ पाँच को ही अपने तूणीर में स्थान देने योग्य समझा था। एक यह अशोक ही है।

लेकिन पुष्पित अशोक को देखकर मेरा मन उदास हो जाता है। इसलिए नहीं कि सुंदर वस्तुओं को हतभाग्य समझने में मुझे कोई विशेष रस मिलता है। कुछ लोगों को मिलता है। वे बहुत दूरदर्शी होते हैं। जो भी सामने पड़ गया उसके जीवन के अंतिम मुहुर्त तक का हिसाब वे लगा लेते हैं। मेरी दृष्टि इतनी दूर तक नहीं जाती। फिर भी मेरा मन इस फूल को देखकर उदास हो जाता है। असली कारण तो मेरे अंतर्यामी ही जानते होंगे, कुछ थोड़ा–सा मैं भी अनुमान कर सका हूँ। बताता हूँ।

भारतीय साहित्य में, और इसलिए जीवन में भी, इस पुष्प का प्रवेश और निर्गम दोनों ही विचित्र नाटकीय व्यापार हैं। ऐसा तो कोई नहीं कह सकेगा कि कालिदास के पूर्व भारतवर्ष में इस पुष्प का कोई नाम ही नहीं जानता था; परंतु कालिदास के काव्यों में यह जिस शोभा और सौकुमार्य का भार लेकर प्रवेश करता है वह पहले कहाँ था! उस प्रवेश में नववधू के गृह–प्रवेश की भाँति शोभा है, गरिमा है, पवित्रता है और सुकुमारता है। फिर एकाएक मुसलमानी सल्तनत की प्रतिष्ठा के साथ–ही–साथ यह मनोहर पुष्प साहित्य के सिंहासन से चुपचाप उतार दिया गया। नाम तो लोग बाद में भी लेते थे, पर उसी प्रकार जिस प्रकार बुद्ध, विक्रमादित्य का। अशोक को जो सम्मान कालिदास से मिला वह अपूर्व था। सुंदरियों के आसिजनकारी नूपुरवाले चरणों के मृदु आघात से वह फूलता था, कोमल कपोलों पर कर्णावतंस के रूप में झूलता था और चंचल नील अलकों की अचंचल शोभा को सौ–गुना बढ़ा देता था। वह महादेव के मन में क्षोभ पैदा करता था, मर्यादा पुरुषोत्तम के चित्त में सीता का भ्रम पैदा करता था और मनोजन्मा देवता के एक इशारे पर कंधे पर से ही फूट उठता था। अशोक किसी कुशल अभिनेता के समान झम–से रंगमंच पर आता है और दर्शकों को अभिभूत करके खप

से निकल जाता है। क्यों ऐसा हुआ? कंदर्प–देवता के अन्य बाणों की कदर तो आज भी कवियों की दुनिया में ज्यों–की–त्यों है। अरविंद को किसने भुलाया, आम कहाँ छोड़ा गया और नीलोत्पल की माया को कौन काट सका? नवमल्लिका की अवश्य ही अब विशेष पूछ नहीं है; किन्तु उसकी इससे अधिक कदर कभी थी भी नहीं। भुलाया गया है अशोक। मेरा मन उमड़–घुमड़कर भारतीय रस–साधना के पिछले हजारों वर्षों पर बरस जाना चाहता है। क्या यह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज थी? सहृदयता क्या लुप्त हो गयी थी? कविता क्या सो गई थी? ना, मेरा मन यह सब मानने को तैयार नहीं है। जले पर नमक तो यह है कि एक तरंगायित पत्रवाले निफूले पेड़ को सारे उत्तर भारत में अशोक कहा जाने लगा। याद भी किया तो अपमान करके।

लेकिन मेरे मानने–न–मानने से होता क्या है? ईसवी सन् के आरंभ के आस–पास अशोक का शानदार पुष्प भारतीय धर्म, साहित्य और शिल्प में अद्‌भुत महिमा के साथ आया था। उसी समय शताब्दियों के परिचित यक्षों और गंधर्वों ने भारतीय धर्म–साधना को एकदम नवीन रूप में बदल दिया था। पंडितों ने शायद ठीक ही सुझाया है कि गंधर्व और कंदर्प वस्तुतः एक ही शब्द के भिन्न–भिन्न उच्चारण हैं। कंदर्प–देवता ने यदि अशोक को चुना है तो यह निश्चित रूप से एक आर्येतर सभ्यता की देन है। उन आर्येतर जातियों के उपास्य वरुण थे, कुबेर थे, वज्रपाणि यक्षपति थे। कंदर्प यद्यपि कामदेवता का नाम हो गया है तथापि है, वह गन्धर्व का ही पर्याय। शिव से भिड़ने जाकर एक बार यह पिट चुके थे, विष्णु से डरते थे और बुद्धदेव से भी टक्कर लेकर लौट आये थे। लेकिन कंदर्प–देवता हार माननेवाले जीव न थे। बार–बार हारने पर भी वह झुके नहीं। नये–नये अस्त्रों का प्रयोग करते रहे। अशोक शायद अंतिम अस्त्र था। बौद्ध–धर्म को उस नये अस्त्र से उन्होंने घायल कर दिया, शैवमार्ग को अभिभूत कर दिया और शाक्त–साधना को झुका दिया। बज्रयान इसका सबूत है, कौल–साधना इसका प्रमाण है और कापालिक मत इसका गवाह है।

रवींद्रनाथ ने इस भारतवर्ष को 'महामानवसमुद्र' कहा है। विचित्र देश है यह! असुर आये, आर्य आये, शक आये, हूण आये, नाग आये, यक्ष आये, गंधर्व आये–न जाने कितनी मानव जातियाँ यहाँ आईं और आज के भारतवर्ष के बनाने में अपना हाथ लगा गईं। जिसे हम हिंदू रीति–नीति कहते हैं, वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का अद्‌भुत मिश्रण है। एक–एक पशु, एक–एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित हैं। अशोक की भी अपनी स्मृति–परंपरा है। आम की भी है, बकुल की है, चंपे की भी है। सब क्या हमें मालूम है? जितना मालूम है, उसी का अर्थ क्या स्पष्ट हो सका है? न जाने किस बुरे मुहूर्त में मनोजन्मा देवता ने शिव पर बाण फेंका था? शरीर जलकर राख हो गया और वामन–पुराण (षष्ठ अध्याय) की गवाही पर हमें मालूम है कि उनका रत्नमय धनुष टूटकर खंड–खंड हो धरती पर गिर

गया। जहाँ मूठ थी, वह स्थान रुक्म–मणि से बना था, वह टूटकर धरती पर गिरा और चंपे का फूल बन गया। हीरे का बना हुआ जो नाह–स्थान था, वह टूटकर गिरा और मौलसरी के मनोहर पुष्पों में बदल गया। अच्छा ही हुआ। इंद्रनील मणियों का बना हुआ कोटि–देश भी टूट गया और सुंदर पाटल–पुष्पों में परिवर्तित हो गया। यह भी बुरा नहीं हुआ लेकिन सबसे सुंदर बात यह हुई कि चन्द्रकांत– मणियों का बना हुआ मध्यदेश टूटकर चमेली बन गया और विद्रुम की बनी निम्नतर कोटि बेला बन गई, स्वर्ग को जीतनेवाला कठोर धनुष जो धरती पर गिरा तो कोमल फूलों में बदल गया। स्वर्गीय वस्तुएँ धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होती।

परंतु मैं दूसरी बात सोच रहा हूँ। इस कथा का रहस्य क्या है? यह क्या पुराणकार की सुकुमार कल्पना है या सचमुच ये फूल भारतीय संसार में गंधर्वों की देन हैं? एक निश्चित काल के पूर्व इन फूलों की चर्चा हमारे साहित्य में मिलती भी नहीं। सोम तो निश्चित रूप से गंधर्वों से खरीदा जाता था। ब्राह्मण– ग्रंथों में यज्ञ की विधि में यह विधान सुरक्षित रह गया है। ये फूल भी क्या उन्हीं से मिले?

कुछ बातें तो मेरे मस्तिष्क में बिना सोचे ही उपस्थित हो रही हैं। यक्षों और गंधर्वों के देवता–कुबेर, सोम, अप्सराएँ–यद्यपि बाद के ब्राह्मण–ग्रंथों में भी स्वीकृत हैं, तथापि पुराने साहित्य में आप देवता के रूप में ही मिलते हैं। बौद्ध–साहित्य में तो बुद्धदेव को ये कई बार बाधा देते हुए बताये गये हैं। महाभारत में ऐसी अनेक कथाएँ आती हैं जिनमें संतानार्थिनी स्त्रियाँ वृक्षों के अपदेवता यक्षों के पास संतान–कामिनी होकर जाया करती थीं। यक्ष और यक्षिणी साधारणतः विलासी और उर्वरता–जनक देवता समझे जाते थे। कुबेर तो अक्षय निधि के अधीश्वर भी हैं। 'यक्ष्मा' नामक रोग के साथ भी इन लोगों का संबंध जोड़ा जाता है। भरहुत, बोधगया, साँची आदि में उत्कीर्ण मूर्तियों में संतानार्थिनी स्त्रियों का यक्षों के सान्निध्य के लिए वृक्षों के पास जाना अंकित है। इन वृक्षों के पास अंकित मूर्तियों की स्त्रियाँ प्रायः नग्न हैं, केवल कटिदेश में एक चौड़ी मेखला पहने हैं। अशोक इन वृक्षों में सर्वाधिक रहस्यमय है। सुंदरियों के चरण–ताड़न से उसमें दोहद का संचार होता है और परवर्ती धर्म–ग्रंथों से यह भी पता चलता है कि चैत्रशुक्ल अष्टमी को व्रत करने और अशोक की आठ पत्तियों के भक्षण से स्त्री की संतान कामना फलवती होती है। अशोक कल्प में बताया गया है कि अशोक के फूल दो प्रकार के होते हैं– सफेद और लाल। सफेद तो तांत्रिक क्रियाओं में सिद्धिप्रद समझकर व्यवहृत होता है और लाल स्मरवर्धक होता है। इन सारी बातों का रहस्य क्या है? मेरा मन प्राचीन काल के कुंझ–टिकाच्छन्न आकाश में दूर तक उड़ना चाहता है। हाय, पंख कहाँ हैं??

यह मुझे प्राचीन युग की बात मालूम होती है। आर्यों का लिखा हुआ साहित्य ही हमारे पास बचा है। उसमें सब कुछ आर्य दृष्टिकोण से ही देखा गया है। आर्यों

से अनेक जातियों का संघर्ष हुआ। कुछ ने उनकी अधीनता नहीं मानी, वे कुछ ज्यादा गर्वीली थीं। संघर्ष खूब हुआ। पुराणों में इसके प्रमाण हैं। यह इतनी पुरानी बात है कि सभी संघर्षकारी शक्तियाँ बाद में देवयोनि–जात मान ली गईं। पहला संघर्ष शायद असुरों से हुआ। यह बड़ी गर्वीली जाति थी। आर्यों का प्रभुत्व इसने कभी नहीं माना। फिर दानवों, दैत्यों और राक्षसों से संघर्ष हुआ। गंधर्वों और यक्षों से कोई संघर्ष नहीं हुआ। वे शायद शांतिप्रिय जातियाँ थीं। भरहुत, साँची, मथुरा आदि में प्राप्त यक्षिणी मूर्तियों की गठन और बनावट देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये जातियाँ पहाड़ी थीं। हिमालय का देश ही गंधर्व, यक्ष और अप्सराओं की निवास–भूमि है। इनका समाज संभवतः उस स्तर पर था, जिसे आजकल के पंडित 'पुनालुअन सोसाइटी' कहते हैं। शायद इससे भी अधिक आदिम। परंतु वे नाच–गान में कुशल थे। यक्ष तो धनी भी थे। वे लोग वानरी और भालुओं की भांति कृषिपूर्व स्थिति में भी नहीं थे और राक्षसों और असुरों की भांति व्यापार–वाणिज्य वाली स्थिति में भी नहीं। वे मणियों और रत्नों का संधान जानते थे, पृथ्वी के नीचे गड़ी हुई निधियों की जानकारी रखते थे और अनायास धनी हो जाते थे। संभवतः इसी कारण उनमें विलासिता की मात्रा अधिक थी। परवर्तीकाल में यह बहुत सुखी जाति मानी जाती थी। यक्ष और गंधर्व एक ही श्रेणी के थे परंतु आर्थिक स्थिति दोनों की थोड़ी भिन्न थी। किस प्रकार कंदर्प–देवता को अपनी गंधर्वसेना के साथ इंद्र का मुसाहिब बनना पड़ा, वह मनोरंजक कथा है। पर यहाँ वह सब पुरानी बातें क्यों रटी जायँ? प्रकृत यह है कि बहुत पुराने जमाने में आर्य लोगों को अनेक जातियों से निपटना पड़ा था। जो गर्वीली थीं, हार मानने को प्रस्तुत नहीं थीं, परवर्ती साहित्य में उनका स्मरण घृणा के साथ किया गया और जो सहज ही मित्र बन गईं, उनके प्रति अवज्ञा और उपेक्षा का भाव नहीं रहा। असुर राक्षस, दानव, और दैत्य पहली श्रेणी में, तथा यक्ष, गंधर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर, वानर, भालू आदि दूसरी श्रेणी में आते हैं। परवर्ती हिंदू समाज इन सबको बड़ी अद्‌भुत शक्तियों का आश्रय मानता है, सबमें देवता–बुद्धि का पोषण करता है।

अशोक–वृक्ष की पूजा इन्हीं गंधर्वों और यक्षों की देन है। प्राचीन साहित्य में इस वृक्ष की पूजा के उत्सवों का बड़ा सरस वर्णन मिलता है। असल पूजा अशोक की नहीं, बल्कि उसके अधिष्ठाता कंदर्प–देवता की होती थी। इसे 'मदनोत्सव' कहते थे। महाराज भोज के 'सरस्वती–कंठाभरण' से जान पड़ता है कि यह उत्सव त्रयोदशी के दिन होता था। 'मालविकाग्निमित्र' और 'रत्नावली' में इस उत्सव का बड़ा सरस मनोहर वर्णन मिलता है। मैं जब अशोक के लाल स्तबकों को देखता हूँ तो मुझे वह पुराना वातावरण प्रत्यक्ष दिखाई दे जाता है। राजघरानों में साधारणतः रानी ही अपने सनूपुर चरणों के आघात से इस रहस्यमय वृक्ष को पुष्पित किया करती थीं। कभी–कभी रानी अपने स्थान पर किसी अन्य सुंदरी को भी नियुक्त कर दिया करती

थीं। कोमल हाथों में अशोक–पल्लवों का कोमलतर गुच्छ आया, अलक्तक से रंजित नूपुरमय चरणों के मृदु आघात से अशोक का पाद–देश आहत हुआ–नीचे हल्की रुनझुन और ऊपर लाल फूलों का उल्लास! किसलयों और कुसुम–स्तवकों की मनोहर छाया के नीचे स्फटिक के आसन पर अपने प्रिय को बैठाकर सुंदरियाँ अबीर, कुंकुम, चंदन और पुष्प–सम्भार से पहले कंदर्प–देवता की पूजा करती थीं और बाद में सुकुमार भंगिमा से पति के चरणों पर वसंत पुष्पों की अंजलि बिखेर देती थीं। मैं सचमुच इस उत्सव को मादक मानता हूँ। अशोक के स्तवकों में वह मादकता आज भी है, पर पूछता कौन है? इन फूलों के साथ क्या मामूली स्मृति जुड़ी हुई है ? भारतवर्ष का सुवर्ण–युग इस पुष्प के प्रत्येक दल में लहरा रहा है।

कहते हैं, दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है ! केवल उतना ही याद रखती है, जितने से उसका स्वार्थ सधता है। बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक से उसका स्वार्थ नहीं सधा । क्यों उसे वह याद रखती ? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।

अशोक का वृक्ष जितना भी मनोहर हो, जितना भी रहस्यमय हो, जितना भी अलंकारमय हो, परंतु है वह उस विशाल सामंत–सभ्यता की परिष्कृत रुचि का ही प्रतीक, जो साधारण प्रजा के परिश्रमों पर पली थी, उसके रक्त के ससार कणों को खाकर बड़ी हुई थी और लाखों–करोड़ों की उपेक्षा से जो समृद्ध हुई थी। वे सामंत उखड़ गये, समाज ढह गये, और मदनोत्सव की धूमधाम भी मिट गई। संतान–कामिनियों को गंधर्वों से अधिक शक्तिशाली देवताओं का वरदान मिलने लगा–पीरों ने, भूत–भैरवों ने, काली–दुर्गा ने, यक्षों की इज्जत घटा दी। दुनिया अपने रास्ते चली गई, अशोक पीछे छूट गया।

मुझे मानव–जाति की दुर्दम–निर्मम धारा के हजारों वर्ष का रूप साफ दिखाई दे रहा है। मनुष्य की जीवनी–शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती–बहाती यह जीवन–धारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब–कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा (जीने की इच्छा)। वह गंगा की अबाधित–अनाहत धारा के समान सब–कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है! सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षण–भर बाधा उपस्थित करता है, धर्माचार का संस्कार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सब–कुछ बह जाते हैं। जितना कुछ इस जीवनी शक्ति को समर्थ बनाता है; उतना उसका अंग बन जाता है, बाकी फेंक दिया जाता है। धन्य हो महाकाल, तुमने कितनी

बार मदनदेवता का गर्व–खंडन किया है, धर्मराज के कारागार में क्रांति मचाई है, यमराज के निर्दय तारल्य को पी लिया है, विधाता के सर्वकर्तृत्व के अभिमान को चूर्ण किया है! आज हमारे भीतर जो मोह है, संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है, धर्माचार और सत्यनिष्ठा के नाम पर जो जड़िमा है, उसमें का कितना भाग तुम्हारे कुंठनृत्य से ध्वस्त हो जायगा, कौन जानता है! मनुष्य की जीवनधारा फिर भी अपनी मस्तानी चाल से चलती जायगी। आज अशोक के पुष्प–स्तबकों को देखकर मेरा मन उदास हो गया है, कल न जाने किस वस्तु को देखकर किस सहृदय के हृदय में उदासी की रेखा खेल उठेगी! जिन बातों को मैं अत्यंत मूल्यवान समझ रहा हूँ और जिनके प्रचार के लिए चिल्ला–चिल्लाकर गला सुखा रहा हूँ, उनमें कितनी जियेंगी और कितनी बह जायँगी; कौन जानता है! मैं क्या शौक से उदास हुआ हूँ। माया काटे कटती नहीं। उस युग के साहित्य और शिल्प मन को मसले दे रहे हैं। अशोक के फूल ही नहीं, किसलय भी हृदय को कुरेद रहे हैं। कालिदास जैसे कल्पकवि ने अशोक के पुष्प को ही नहीं, किसलयों को भी मदमत्त करने वाला बताया था। अवश्य ही शर्त यह थी कि वह दयिता (प्रिया) के कानों में झूम रहा हो–'किसलय प्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिता श्रवणार्पितः! परंतु शाखाओं में लंबित, वायुलुलित किसलयों में भी मादकता है। मेरी नस–नस से आज करुण–उल्लास की झंझा उत्थित हो रही है। मैं सचमुच उदास हूँ।

आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे हैं, वह क्या ऐसी ही बनी रहेगी? सम्राटों–सामंतों ने जिस आचार–निष्ठा को इतना मोहक और मादक रूप दिया था वह लुप्त हो गई; धर्माचार्यों ने जिस ज्ञान और वैराग्य को इतना महार्घ समझा था, वह लुप्त हो गया, मध्ययुग के मुसलमान रईसों के अनुकरण पर जो रस–राशि उमड़ी थी, वह वाष्प की भांति उड़ गई, तो क्या यह मध्ययुग के कंकाल में, खिला हुआ व्यावसायिक–युग का कमल ऐसा ही बना रहेगा? महाकाल के प्रत्येक पदाघात में धरती धसकेगी। उसके कुंठनृत्य की प्रत्येक चारिका कुछ–न–कुछ लपेटकर ले जायगी। सब बदलेगा, सब विकृत होगा–सब नवीन बनेगा।

भगवान् बुद्ध ने मार–विजय के बाद वैरागियों की पलटन खड़ी की थी। असल में 'मार' मदन का ही नामांतर है। कैसा मधुर और मोहक साहित्य उन्होंने दिया। पर न जाने कब यक्षों के वज्रपाणि नामक देवता इस वैराग्य–प्रवण धर्म में घुसे और बोधिसत्वों के शिरोमणि बन गए। फिर वज्रयान का अपूर्व धर्ममार्ग प्रचलित हुआ। त्रिरत्नों में मदन–देवता ने आसन पाया। वह एक अजीब आँधी थी। इसमें बौद्ध बह गये, शैव बह गये, शाक्त बह गये। उन दिनों 'श्री– सुन्दरीसाधनतत्पराणां योगश्च भोगश्च करस्थ एव' की महिमा प्रतिष्ठित हुई। काव्य और शिल्प के मोहक अशोक ने अभिचार में सहायता दी! मैं अचरज से इस योग और भोग की मिलन–लीला को देख

रहा हूँ। यह भी क्या जीवनी–शक्ति का दुर्दम अभियान था! कौन बतायेगा कि कितने विध्वंस के बाद इस अपूर्व धर्म–मत की सृष्टि हुई थी? अशोक स्तबक का हर फूल और हर दल इस विचित्र परिणति की परंपरा ढोये आ रहा है। कैसा झबरा–सा गुल्म है!

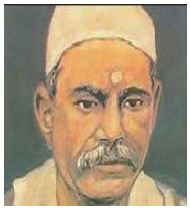
मगर उदास होना भी बेकार है। अशोक आज भी उसी मौज में है, जिसमें आज से दो हजार वर्ष पहले था। कहीं भी तो कुछ नहीं बिगड़ा है, कुछ भी तो नहीं बदला है। बदली है मनुष्य की मनोवृत्ति। यदि बदले बिना वह आगे बढ़ सकती तो शायद वह भी नहीं बदलती। और यदि वह न बदलती और व्यावसायिक संघर्ष आरंभ हो जाता– मशीन का रथ घर्घर चल पड़ता–विज्ञान का सवेग धावन चल निकलता; तो बड़ा बुरा होता। हम पिस जाते। अच्छा ही हुआ जो वह बदल गई। पूरी कहाँ बदली है? पर बदल तो रही है। अशोक का फूल तो उसी मस्ती से हँस रहा है। पुराने चित्त से इसको देखने वाला उदास होता है। वह अपने को पंडित समझता है। पंडिताई भी एक बोझ है–जितनी ही भारी होती है उतनी ही तेजी से डुबाती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है तो सहज हो जाती है। तब वह बोझ नहीं रहती। वह उस अवस्था में उदास भी नहीं करती। कहाँ, अशोक का कुछ भी तो नहीं बिगड़ा है। कितनी मस्ती में झूम रहा है! कालिदास इसका रस ले सके थे–अपने ढंग से। मैं भी ले सकता हूँ, अपने ढंग से। उदास होना बेकार है!

❑❑❑

संसार भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा है कि आत्म सम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है–

चंद्रगुप्त का कथन– नाटक 'चंद्रगुप्त' से
(जयशंकर प्रसाद)

कर्तव्य परायणता



बालकृष्ण भट्ट

बड़े–बड़े उत्कृष्ट गुण जिनसे मनुष्य समाज में माननीय होता है जिनके अभाव से सब ठौर निरादर पाता और हेठा समझा जाता है– उनमें कर्तव्य परायणता का होना गुण–सोपान की पहली सीढ़ी है। पहली सीढ़ी इसलिए इसे कहते हैं कि जब यही मालूम नहीं है कि हमें क्या करना उचित है और जिसके करने की जिम्मेदारी हम पर है त्रुटि या चूक होने से उसका हिसाब अंतरात्मा को हमें देना होगा तब हम विद्वान् बड़े धर्मनिष्ठ भी हुये तो क्या? कर्तव्य परायणता के कई एक अवांतर भेद हम यहाँ नहीं लेते जिसमें जुदी–जुदी जाति के लोगों में अलग–अलग मतभेद हैं। कितनी बातें ऐसी हैं जिन्हें हम हिंदुस्तान के रहने वाले कर्तव्य मानते हैं पर इंग्लैंड तथा यूरोप के और देश फ्रान्स–जरमनी इत्यादि के लोग उसे अवश्य कर्तव्य न समझेंगे। जैसे पुत्र के लिये माँ–बाप की सेवा और अपनी सब कमाई उनके अर्पण करना या अपने छोटे तथा असमर्थ भाइयों और कुटुंब को पालना पोखना यहाँ हिंदुस्तान में एक कर्तव्य कर्म है और न करने पर निंदा है वैसा यूरोप के इंग्लैंड, फ्रांस आदि देशों में नहीं। अँगरेज़ों में बाप–माँ की कुछ विशेष खबर न ले सर्वस्व अपनी मेम साहबा को सौंप देना महा कर्तव्य परायणता है। यहाँ ऐसा करने से समाज में निंदा है। यहाँ कुलवती स्त्रियों के लिये बात–चीत और संलाप एक ओर रहे, घूँघट के ओट से भी किसी पर पुरुष को देखना निंदनीय है वरन सूर्य चंद्रमा भी उन्हें न देख पायें यहाँ तक असूर्यपश्या होना कर्तव्य परायणता है जैसा किसी कवि ने कहा है–

''पदन्यासो गेहाद्बहिरहिफणारोपणसमो।
निजवासादन्यद्भवमपरद्वीपगमनम्।।
बचो कृपणघनंतुल्यं मृगदृशः।
पूमान्या कांताद्विधुरिव चतुर्थी समुदितः।।

• पदन्यासो गेहाद्बहिरहिफणारोपणोसमो।
निजावासादन्यभ्दवमपरद्वीपगमन्।।
वचो लोकालभ्यं कृपणधनतुल्यं मृगदृशः।
पुमानन्यस कान्ता द्विघुरिव चतुर्थी समुदितः।।

कुलवती स्त्रियों का घर से बाहर पाँव काढ़ना वैसा ही है जैसा साँप के फन पर पाँव रखना, अपने घर से किसी दूसरे के घर कभी जाना तो मानो द्वीपांतर में जाना है, उनके मुँह की बोल दूसरे के कान को सुनने के लिये वैसा ही अप्राप्य है जैसा सूम का धन दूसरे को नहीं मिल सकता। उनका किसी परपुरुष की ओर निहारना वैसा ही है जैसा भादो के चौथ के चाँद को देखना। और भी रस मंजरी में स्वकीया का उदाहरण इस भाँति कुलवती स्त्रियों के बर्ताव के सम्बन्ध में दिखाया है–

'गतागतकुतूहलं नयनयोरपांगावधि स्मितं
कुलनतभ्रुव मधुर एवं विश्राम्यति।
बच, प्रियतमश्रुतेरतिथिरेवकोपक्रमः।।
क्वचिदयिचेत्तदा मनसि केवलं मज्जति।।'

नेत्र के कटाक्षों का इधर–उधर चलाना आँख के कानों ही तक में कुलवधू जनों का हँसना होंठों के फरकने ही तक उनके वचन केवल प्राणनाथ अपने पति के कानों ही तक; नये आए हुए पाहुने की भाँति क्रोध यदि कभी आया भी तो मन ही मन मसोस कर रह गई। व्यय में मुक्त हस्त न हो घर के काम–काज तथा शिशु–पालन में प्रवीणता आदि उत्तम गुणों की खान हिंदू ललनाओं का अखंड पुण्य और उनका पवित्र चरित्र ही भारत को इस गिरी दशा में भी करावलम्ब देते सर्वथा अधःपात से इसे बचा रहा है। जिनके चरित्र पालन की प्रशंसा में किसी कवि ने ऐसा भी कहा है–

''अपि मां पावयेत्साध्वी स्नात्वेतीच्छति जान्हवी''

यह साध्वी हमारे में आए स्नान कर हमें पवित्र करे, ऐसा जगत् पावनी जान्हवी गंगा भी चाहा करती हैं।

यूरोप देश निवासियों को इसमें कुछ भी कर्तव्य परायणता नहीं समझी गई। यहाँ लौं सभ्यता जोर किये हुए हैं कि किसी की मेम साहबा को कोई बग्घी पर चढ़ाये दिन भर घूमते और सैर–सपाटा करते रहे कोई क्षति नहीं। अस्तु, इस तरह की एक–एक जाति की अलग–अलग कर्तव्य परायणता को जुदे–जुदे देशों की जुदी–जुदी रिवाज और अपने–अपने समाज के भिन्न–भिन्न क्रम या दस्तूर मान हम उसे कर्तव्य परायणता न कहेंगे बल्कि कर्तव्य परायणता उसे कहेंगे कि जिसके न करने में प्रत्यवाय अथवा प्रायश्चित है जैसा ब्राह्मण के लिए सूर्योदय के समय सन्ध्योपासना कर्तव्य कर्म है और उसके न करने में प्रत्यवाय है।

कर्तव्य पर ध्यान और समय का उचित अनुवर्तन (पंक्चुअलटी) दोनों का साथ है। सच पूछो तो हम इन दोनों से च्युत हो गये हैं, जो अपने समय को ठीक रखना या पालन करना जानता है अपने वख़्त को बेजा न खोता वही कर्तव्य परायण भी भरपूर रह सकता है और ये दोनों इस समय हमारे शासनकर्ता में अच्छी तरह पाये जाते हैं। जब हम उन्हें अपना शिक्षा गुरु अनेक सामयिक सभ्यता की बातों में मान रहे हैं और

उन्हें अपना गुरुर्गुरु समझ कर उनका अनुकरण कर रहे हैं तो इन दोनों में भी उनके अनुयायी क्यों नहीं? किन्तु यह भी कुछ देश के भाग्य ही कहेंगे कि यहाँ के लोग बुराई का अनुकरण पहले और बहुत जल्द करने लगते हैं भलाई को भुलाय उस ओर कभी झुकते ही नहीं। जित जेता का अनुकरण करते हैं। यह प्राकृतिक नियम की भाँति हो रहा है और यह कुछ यही नहीं वरन् सब देश और सब जाति के लोगों में देखा गया है।

जब से मुसलमान यहाँ के जेता हुए उस समय से हम उनकी चाल ढाल, नशिस्त बरखास्त के कायदे न केवल उनकी अरबी फारसी तथा उर्दू भाषा वरन् दीन इसलाम को अब तक अपनियाते आये आर्य से अर्ध–यवन हो गये; यहाँ लौ कि मुसलमानों को अपना एक अंग बना लिया अब पचास साठ वर्ष से हिन्दू मुसलमान दोनों अपने नये जेता का अनुकरण कर रहे हैं, किन्तु उनमें जो कुछ त्रुटि है केवल उसी का उनमें भलाई क्या है उसका नहीं। उनका–सा अध्वसाय धुन बाँध के किसी काम को करना विघ्न पर विघ्न होता रहे पर जिसे आरंभ किया उसे करी के तब छोड़ना; स्वजाति, पक्षपात, विद्याभ्यास, ऐक्य, साहस, धैर्य, वीरता, विचार की दृढ़ता आदि उनके अनेक गुणों की ओर कभी ध्यान नहीं देते उनकी–सी भोग–लिप्सा–पान दोष इत्यादि को अलबत्ता अपना करते जाते हैं।

यावत् कर्तव्यों में वर्तमान गिरी दशा से अपना उद्वार महा कर्तव्य परायणता है किन्तु इस पर किसी का ध्यान नहीं जाता प्रत्युत उसी को कर्तव्य मान रहे हैं जिसमें हमारा अधिक बिगाड़ है और गतानुगतिक न्याय के अनुसार भेड़िया धसान के समान आँख मूँद उधर ही को बराबर चले जाते हैं। सिंधिया और होल्कर के पूर्व पुरुष इसी कर्तव्य परायणता के बदौलत इस उत्तम पद पर कर दिये गये, ये दोनों पेशवा के घर के सेवक थे। इतिहासों में कितने इसके उत्तम उदाहरण पाये जा सकते हैं। इस समय भी यद्यपि देश बड़ी गिरी दशा में आ गया है पर ढूँढने से बहुत–से अच्छे उदाहरण मिल जायेंगे। जिनमें कर्तव्य परायणता होगी उनमें समय का सदनुष्ठान (पंक्चुअलिटी) भी अवश्य होगा, दोनों उत्तम गुणों का बड़ा घनिष्ठ संबंध है, बिना एक के दूसरा कभी रही नहीं सकता। देश के कल्याण के लिए इन दोनों का उस देश के निवासियों में आना स्वाभाविक गुण होना चाहिये। ईश्वर प्रसन्न होकर हम लोगों में कर्तव्य परायणता स्वाभाविक गुण पैदा कर दे तो देश का उत्थान सहज में हो जाय। सर्वसाधारण की दशा के परिवर्तन की यह पहली सीढ़ी अवश्य कही जायगी और सीढ़ी–सीढ़ी चढ़ते जायें तो कदाचित् एक दिन शिखर पर भी चढ़ बैठें तो अचरज क्या।

❑❑❑

क्या लिखूँ ?



डॉ. पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी

मुझे आज लिखना ही पड़ेगा। अँगरेजी के प्रसिद्ध निबंध लेखक ए.जी. गार्डिनर का कथन है कि लिखने की एक विशेष मानसिक स्थिति होती है। उस समय मन में कुछ ऐसी उमंग–सी उठती है, हृदय में कुछ ऐसी स्फूर्ति सी आती है, मस्तिष्क में कुछ ऐसा आवेग–सा उत्पन्न होता है कि लेख लिखना ही पड़ता है। उस समय विषय की चिंता नहीं रहती। कोई भी विषय हो, उसमें हम अपने हृदय के आवेग को भर ही देते हैं। हैट टाँगने के लिए कोई भी खूँटी काम दे सकती है। उसी तरह अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए कोई भी विषय उपयुक्त है। असली वस्तु है हैट, खूँटी नहीं। इसी तरह मन के भाव ही तो यथार्थ वस्तु हैं विषय नहीं।

गार्डिनर साहब के इस कथन की यथार्थता में मुझे संदेह नहीं, पर मेरे लिए कठिनता यह है कि मैंने उस मानसिक स्थिति का अनुभव ही नहीं किया है, जिसमें भाव अपने–आप उत्थित हो जाते हैं। मुझे तो सोचना पड़ता है, चिंता करनी पड़ती है, परिश्रम करना पड़ता है तब कहीं मैं एक निबंध लिख सकता हूँ। आज तो मुझे विशेष परिश्रम करना पड़ेगा, क्योंकि मुझे कोई साधारण निबंध नहीं लिखना है। आज मुझे नमिता और अमिता के लिए आदर्श निबंध लिखना होगा। नमिता का आदेश है कि मैं 'दूर के ढोल सुहावने होते हैं' इस विषय पर लिखूँ। अमिता का आग्रह है कि मैं समाज सुधार पर लिखूँ, ये दोनों ही विषय परीक्षा में आ चुके हैं और उन दोनों पर आदर्श निबंध लिखकर मुझे उन दोनों को निबंध–रचना का रहस्य समझाना पड़ेगा।

दूर के ढोल सुहावने अवश्य होते हैं। पर क्या वे इतने सुहावने होते हैं कि उन पर पाँच पेज लिखे जा सकें? इसी प्रकार जिस समाज–सुधार की चर्चा अनादि काल से लेकर आज तक होती आ रही है और जिसके सम्बन्ध में बड़े बड़े विज्ञों में भी विरोध है, उसको मैं पाँच पेज में कैसे लिख दूँ? मैंने सोचा कि सबसे पहले निबंध–शास्त्र के आचार्यों की सम्मति जान लूँ। पहले यह तो समझ लें कि आदर्श निबंध है क्या और वह कैसे लिखा जाता है; तब फिर में विषय की चिंता करूँगा। इसीलिए मैंने निबंधशास्त्र के कई आचार्यों की रचनाएँ देखीं।

एक विद्वान का कथन है कि निबंध छोटा होना चाहिए। छोटा निबंध बड़े की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है, क्योंकि बड़े निबंध में रचना की सुंदरता नहीं बनी रह सकती। इस कथन को मान लेने में ही मेरा लाभ है। मझे छोटा ही निबंध लिखना है, बड़ा नहीं। पर लिखूँ कैसे? निबंध–शास्त्र के उन्हीं आचार्य महोदय का कथन है कि निबंध के दो प्रधान अंग हैं–सामग्री और शैली। पहले तो मुझे सामग्री एकत्र करनी होगी, विचार–समूह संचित करना होगा। इसके लिए मुझे मनन करना चाहिए। यह तो सच है कि जिसने जिस विषय का अच्छा अध्ययन किया है, उसके मस्तिष्क में उस विषय के विचार आते हैं। पर यह कौन जानता था कि 'दूर के ढोल सुहावने' पर भी निबंध लिखने की आवश्यकता होगी। यदि यह बात पहले ज्ञात होती तो पुस्तकालय में जाकर इस विषय का अनुसन्धान कर लेता; पर अब समय नहीं। मुझे तो यहीं बैठकर दो घंटों में दो निबंध तैयार कर देने होंगे। यहाँ न तो विश्वकोश है और न कोई ऐसा ग्रन्थ, जिनमें इन विषयों की सामग्री उपलब्ध हो सके। अब तो मुझे अपने ही ज्ञान पर विश्वास कर लिखना होगा।

विज्ञों का कथन है कि निबंध लिखने के पहले उसकी रूपरेखा बना लेनी चाहिए। अतएव सबसे पहले मुझे 'दूर के ढोल सुहावने' की रूपरेखा बनानी है। मैं सोच ही नहीं सकता कि इस विषय की कैसी रूपरेखा है। निबंध लिख लेने के बाद मैं उसका सारांश कुछ ही वाक्यों में भले ही लिख दूँ, पर निबंध लिखने के पहले उसका सार दस–पाँच शब्दों में कैसे लिखा जाय? क्या सचमुच हिंदी के सब विज्ञ लेखक पहले से अपने–अपने निबंधों के लिए रूपरेखा तैयार कर लेते हैं? ए.जी. गार्डिनर को तो अपने लेखों का शीर्षक बनाने में ही सबसे अधिक कठिनाई होती है। उन्होंने लिखा कि मैं लेख लिखता हूँ और शीर्षक देने का भार मैं अपने मित्र पर छोड़ देता हूँ। उन्होंने यह भी लिखा है कि शेक्सपीयर को भी नाटक लिखने में उतनी कठिनाई न हुई होगी, जितनी कठिनाई नाटकों के नामकरण में हुई होगी। तभी तो घबराकर नाम न रख सकने के कारण उन्होंने अपने एक नाटक का नाम रखा 'जैसा तुम चाहो'। इसलिए मुझसे तो यह रूपरेखा तैयार न होगी। अब मुझे शैली निश्चित करनी है। आचार्य महोदय का कथन है कि भाषा में प्रवाह होना चाहिए। इसके लिए वाक्य छोटे–छोटे हों, पर एक–दूसरे से संबद्ध। यह तो बिल्कुल ठीक है। मैं छोटे–छोटे वाक्य अच्छी तरह लिख सकता हूँ। पर मैं हूँ मास्टर। कहीं नमिता और अमिता यह न समझ बैठे कि मैं यह निबंध बहुत मोटी अक्ल वालों के लिए लिख रहा हूँ। अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने के लिए, अपना गौरव स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि वाक्य कम–से–कम आधे पृष्ठ में तो समाप्त हो। बाणभट्ट ने कादम्बरी में ऐसे ही वाक्य लिखे हैं। वाक्यों में अस्पष्टता भी चाहिए, क्योंकि यह अस्पष्टता या दुर्बोधता गाम्भीर्य ला देती है। इसलिए संस्कृत के प्रसिद्ध कवि श्रीहर्ष ने जान–बूझकर अपने काव्य में ऐसी

गुत्थियाँ डाल दी हैं, जो अज्ञों से न सुलझ सकें और सेनापति ने भी अपनी कविता मूढ़ों के लिए दुर्बोध कर दी है। तभी तो अलंकारों, मुहावरों और लोकोक्तियों का समावेश भी निबंधों के लिए आवश्यक बताया गया है। तब क्या किया जाय?

अँगरेजी के निबंधकारों ने एक दूसरी पद्धति को अपनाया है। उनके निबंध इन आचार्यों की कसौटी पर भले ही खरे सिद्ध न हों, पर अंग्रेजी साहित्य में उनका मान अवश्य है। उस पद्धति के जन्मदाता मानटेन समझे जाते हैं। उन्होंने स्वयं जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया, उसी को अपने निबंधों में लिपिबद्ध कर दिया। ऐसे निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे मन की स्वच्छन्द रचनाएँ हैं। उनमें न कवि की उदात्त कल्पना रहती है, न आख्यायिका–लेखक की सूक्ष्म दृष्टि और न विज्ञों की गंभीर तर्कपूर्ण विवेचना। उनमें लेखक की सच्ची अनुभूति रहती है। उनमें उसके सच्चे भावों की सच्ची अभिव्यक्ति होती है, उनमें उसका उल्लास रहता है। ये निबंध तो उस मानसिक स्थिति में लिखे जाते हैं, जिसमें न ज्ञान की गरिमा रहती है और न कल्पना की महिमा, जिसमें जीवन का गौरव भूलकर हम अपने में ही लीन हो जाते हैं, जिसमें हम संसार को अपनी ही दृष्टि से देखते हैं और अपने ही भाव से ग्रहण करते हैं। तब इसी पद्धति का अनुसरण कर मैं भी क्यों न निबंध लिखूँ। पर मुझे तो दो निबंध लिखने होंगे।

मुझे अमीर खुसरो की एक कहानी याद आई। एक बार प्यास लगने पर वे एक कुएँ के पास पहुँचे। वहाँ चार औरतें पानी भर रही थीं। पानी माँगने पर पहले उनमें से एक ने खीर पर कविता सुनने की इच्छा प्रकट की, दूसरी ने चर्खे पर, तीसरी ने कुत्ते पर और चौथी ने ढोल पर। अमीर खुसरो प्रतिभावान थे। उन्होंने एक ही पद्य में चारों की इच्छाओं की पूर्ति कर दी। उन्होंने कहा–

खीर पकाई जतन से, चर्खा दिया चला;
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा।

मुझमें खुसरो की प्रतिभा नहीं है, पर उनकी इस पद्धति को स्वीकार करने से मेरी कठिनाई आधी रह जाती है। मैं भी एक निबंध में इन दोनों विषयों का समावेश कर दूँगा। एक ही ढेले से दो चिड़ियाँ मार लूंगा।

दूर के ढोल सुहावने होते हैं, क्योंकि उनकी कर्कशता दूर तक नहीं पहुँचती। जब ढोल के पास बैठे हुए लोगों के कान के पर्दे फटते रहते हैं, तब दूर किसी नदी के तट पर, संध्या समय, किसी दूसरे के कान में वही शब्द मधुरता का संचार कर देते हैं। ढोल के उन्हीं शब्दों को सुनकर वह अपने हृदय में किसी के विवाहोत्सव का चित्र अंकित कर लेता है। कोलाहल से पूर्ण घर के एक कोने में बैठी हुई किसी लज्जाशीला नववधू की कल्पना वह अपने मन में कर लेता है। उस नववधू के प्रेम, उल्लास, संकोच, आशंका और विषाद से युक्त हृदय के कम्पन ढोल की कर्कश ध्वनि को मधुर बना देते

हैं, क्योंकि उसके साथ आनन्द का कलरव, उत्सव व प्रमोद और प्रेम का संगीत ये तीनों मिले रहते हैं। तभी उसकी कर्कशता समीपस्थ लोगों को भी कटु नहीं प्रतीत होती और दूरस्थ लोगों के लिए तो वह अत्यन्त मधुर बन जाती है।

जो तरुण संसार के जीवन–संग्राम से दूर हैं, उन्हें संसार का चित्र बड़ा ही मनमोहक प्रतीत होता है, जो वृद्ध हो गये हैं, जो अपनी बाल्यावस्था और तरुणावस्था से दूर हट आये हैं, उन्हें अपने अतीतकाल की स्मृति बड़ी सुखद लगती है। वे अतीत का ही स्वप्न देखते हैं। तरुणों के लिए जैसे भविष्य उज्वल होता है, वैसे ही वृद्धों के लिए अतीत। वर्तमान से दोनों को असन्तोष होता है। तरुण भविष्य को वर्तमान में लाना चाहते हैं और वृद्ध अतीत को खींचकर वर्तमान में देखना चाहते हैं। तरुण क्रान्ति के समर्थक होते हैं और वृद्ध अतीत गौरव के संरक्षक। इन्हीं दोनों के कारण वर्तमान सदैव क्षुब्ध रहता है और इसी से वर्तमान काल सदैव सुधारों का काल बना रहता है।

मनुष्य जाति के इतिहास में कोई ऐसा काल ही नहीं हुआ, जब सुधारों की आवश्यकता न हुई हो। तभी तो आज तक कितने ही सुधारक हो गये हैं। पर सुधारों का अन्त कब हुआ है? भारत के इतिहास में बुद्धदेव, महावीर स्वामी, नागार्जुन, शंकराचार्य, कबीर, नानक, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द और महात्मा गाँधी में ही सुधारकों की गणना समाप्त नहीं होती। सुधारकों का दल नगर–नगर और गाँव–गाँव में होता है। यह सच है कि जीवन में नये–नये दोष उत्पन्न होते जाते हैं और नये–नये सुधार होते जाते हैं। न दोषों का अंत है और न सुधारों का। जो कभी सुधार थे, वही आज दोष होते गये हैं और उन सुधारों का फिर नव सुधार किया जाता है। तभी तो यह जीवन प्रगतिशील माना गया है।

हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य का निर्माण हो रहा है। उसके निर्माता यह समझ रहे हैं कि उनके साहित्य में भविष्य का गौरव निहित है। पर कुछ ही समय के बाद उनका यह साहित्य भी अतीत का स्मारक हो जायगा और आज जो तरुण हैं, वही वृद्ध होकर अतीत के गौरव का स्वप्न देखेंगे। उनके स्थान में तरुणों का फिर दूसरा दल आ जायगा, जो भविष्य का स्वप्न देखेगा। दोनों के ही स्वप्न सुखद होते हैं, क्योंकि दूर के ढोल सुहावने होते हैं।

❑❑❑

कछुआ–धरम



पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी

'मनुस्मृति' में कहा गया है कि जहाँ गुरु की निंदा या असत्कथा हो रही हो वहाँ पर भले आदमी को चाहिए कि कान बंद कर ले या कहीं उठकर चला जाए। यह हिंदुओं के या हिंदुस्तानी सभ्यता के कछुआ धरम का आदर्श है। ध्यान रहे कि मनु महाराज ने न सुनने जोग गुरु की कलंक–कथा के सुनने के पाप से बचने के दो ही उपाय बताए हैं। या तो कान ढककर बैठ जाओ या दुम दबाकर चल दो। तीसरा उपाय, जो और देशों के सौ में नब्बे आदमियों को ऐसे अवसर पर पहले सूझेगा, वह मनु ने नहीं बताया कि जूता लेकर, या मुक्का तानकर सामने खड़े हो जाओ और निंदा करने वाले का जबड़ा तोड़ दो या मुँह पिचका दो कि फिर ऐसी हरकत न करे। यह हमारी सभ्यता के भाव के विरुद्ध है। कछुआ ढाल में घुस जाता है, आगे बढ़कर मार नहीं सकता। अश्वघोष महाकवि ने बुद्ध के साथ–साथ चले जाते हुए साधु पुरुषों को यह उपमा दी है

• देशादनायैरभिभूयमानान्महर्षयो धर्ममिवाप्यान्तम्।

अनार्य लोग देश पर चढ़ाई कर रहे हैं। धर्म भागा जा रहा है। महर्षि भी उसके पीछे–पीछे चले जा रहे हैं। यह कर लेंगे कि दक्षिण के अप्रकाश देश को कोई अत्रि या अगस्त्य यज्ञों और वेदों के योग्य बना लें... तब तक ही जब तक कि दूसरे कोई राक्षस या अनार्य उसे भी रहने के अयोग्य न कर दें... पर यह नहीं कि डटकर सामने खड़े हो जावें और अनार्यों की बाढ़ को रोकें। पुराने से पुराने आर्यों की अपने भाई असुरों से अनबन हुई। असुर असुरिया में रहना चाहते थे, आर्य सप्तसिंधुओं को आर्यावर्त बनाना चाहते थे। आगे चल दिए। पीछे वे दबाते आए। विष्णु ने अग्नि और यजपात्र और अरणि रखने के लिए तीन गाड़ियाँ बनाईं, उसकी पत्नी ने उनके पहियों की चूल को घर से आंज दिया। ऊखल, मूसल और सोम कूटने के पत्थरों तक को साथ लिए हुए यह 'कारवाँ' मूजवत् हिंदुकुश के एकमात्र दर्रे खैबर में होकर सिंधु की घाटी में उतरा। पीछे से श्वान, भाज, अंभारि, बंभारि, हस्त, सुहस्त, कृशन, शंड, मर्क मारते चले आते थे, वज्र की मार से पिछली गाड़ी भी आधी टूट गई, पर तीन लंबे डग

भरने वाले विष्णु ने पीछे फिर नहीं देखा और न जमकर मैदान लिया। पितृभूमि अपने भ्रातृव्यों के पास छोड़ आए और यहाँ 'भ्रातृव्यस्य वधाय', 'सजातानां मध्यमेष्ठयाय' देवताओं को आहुति देने लगे। चलो, जम गए। जहाँ–जहाँ रास्ते में टिके थे वहाँ–वहाँ यूप खड़े हो गए। यहाँ की सुजला सुफला शस्यश्यामला भूमि में ये बुलबुलें चहकने लगीं। पर ईरान के अंगूरों और गुलों का, यानी मूजवत् पहाड़ की सोमलता का, चसका पड़ा हुआ था। लेने जाते तो वे पुराने गंधर्व मारने दौड़ते। हाँ, उनमें से कोई–कोई उस समय का चिलकौआ नकद नारायण लेकर बदले में सोमलता बेचने को राजी हो जाते थे। उस समय का सिक्का गौएँ थीं। जैसे आजकल लखपति, करोड़पति कहलाते हैं वैसे तब 'शतगु', 'सहस्रगु' कहलाते थे। ये दमड़ीमल के पोते करोड़ीचंद अपने 'नवग्वाः', 'दशग्वाः' पितरों से शरमाते न थे, आदर से उन्हें याद करते थे। आजकल के मेवा बेचने वाले पेशावरियों की तरह कोई–कोई सरहदी यहाँ पर भी सोम बेचने चले आते थे। कोई आर्य सीमा प्रांत पर जाकर भी ले आया करते थे। मोल ठहराने में बड़ी हुज्जत होती थी जैसी कि तरकारियों का भाव करने में कुंजड़िनों से हुआ करती है। ये कहते कि गौ की एक कला में सोम बेच दो। वह कहता कि वाह! सोमराजा का दाम इससे कहीं बढ़कर है। इधर ये गौ के गुण बखानते। जैसे बुड्ढे चौबेजी ने अपने कंधे पर चढ़ी बालवधू के लिए कहा था कि याही में बेटी और याही में बेटा, ऐसे ये भी कहते कि इस गौ से दूध होता है, मक्खन होता है, दही होता है, यह होता है, वह होता है। पर काबुली काहे को मानता, उसके पास सोम की मानोपली थी और इन्हें बिना लिए सरता नहीं। अंत को गौ का एक पाद, अर्ध, होते–होते दाम तै हो जाते। भूरी आँखों वाली एक बरस की बछिया में सोमराजा खरीद लिए जाते। गाड़ी में रखकर शान से लाए जाते।

जैसे मुसलमानों के यहाँ सूद लेना तो हराम है, पर हिंदी साहूकारों को सूद देना हराम होने पर भी देना ही पड़ता है वैसे यह फतवा दिया गया कि 'पापो हि सोमविक्रयी' पर सोम क्रय करना उन्हीं गंधर्वों के हाथ गौ बेचकर सोम लेना– पाप नहीं कहला सका। तो भी सोम मिलने में कठिनाई होने लगी। गंधर्वों ने दाम बढ़ा दिए या सफर दूर का हो गया, या रास्ते में डाके मारने वाले 'वाहीक' आ बसे, कुछ न कुछ हुआ। तब यह तो हो गया कि सोम के बदले में पूतिक लकड़ी का ही रस निचोड़ लिया जाए, पर यह किसी को न सूझी कि सब प्रकार के जलवायु की इस उर्वरा भूमि में कहीं सोम की खेती कर ली जाय जिससे जितना चाहे उतना सोम घर बैठे मिले। उपमन्यु को उसकी माँ ने और अश्वत्थामा को उसके बाप ने जैसे जल में आटा घोलकर दूध कहकर पतिया लिया था, वैसे पूतिक की सीखों से देवता पतियाए जाने लगे।

अच्छा, अब उसी पंचनद में वाहीक आकर बसे। अश्वघोष की फड़कती उपमा के अनुसार धर्म भागा और दंड–कमंडल लेकर ऋषि भी भागे। अब ब्रह्मवर्त, ब्रह्मर्षिदेश

और आर्यावर्त की महिमा हो गई और वह पुराना देश न तत्र दिवसं वसेत्! युगंधरे पयः पीत्वा कथं स्वर्ग गमिष्यति!!!

बहुत वर्ष पीछे की बात है। समुद्र पार के देशों में और धर्म पक्के हो चले। वे लूटते–मारते तो सही, बेधर्म भी कर देते। बस, समुद्रयात्रा बंद! कहाँ तो राम के बनाए सेतु का दर्शन करके ब्रह्महत्या मिटती थी और कहाँ नाव में जाने वाले द्विज का प्रायश्चित कराकर भी संग्रह बंद। वही कछुआ धर्म ढाल के अंदर बैठे रहो।

पुर्तगाली यहाँ पर व्यापार करने आये। अपना धर्म फैलाने की भी सूझी। 'विवृत–जघनां को विहातुं समर्थः'? कुएँ पर सैकड़ों नर–नारी पानी भर रहे और नहा रहे थे। एक पादरी ने कह दिया कि मैंने इसमें तुम्हारा अभक्ष्य डाल दिया है। फिर क्या था? कछुए को ढाल बल उलट दिया गया। अब वह चल नहीं सकता। किसी ने यह नहीं सोचा कि अज्ञात पाप, पाप नहीं होता। किसी ने यह नहीं सोचा कि कुल्ले कर लें, घड़े फोड़ दें या कै ही कर डालें। गाँव के गाँव ईसाई हो गए। और दूर–दूर के गाँवों के कछुओं को यह खबर लगी तो बंबई जाने में भी प्रायश्चित कर दिया गया।

हिंदू से कह दीजिए कि विलायती खांड खाने में अधर्म है। उसमें अभक्ष्य चीजें पड़ती हैं। चाहे आप वस्तुगति से कहें, चाहे राजनैतिक चालबाजी से कहें, चाहे अपने देश की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए उसकी सहानुभूति उपजाने को कहें। उसका उत्तर यह नहीं होगा कि राजनैतिक दशा सुधरनी चाहिए। उसका उत्तर यह नहीं होगा कि गन्ने की खेती बढ़े। उसका केवल एक ही कछुआ उत्तर होगा वह खांड खाना छोड़ देगा, बनी–बनाई मिठाई गौओं को डाल देगा, या बोरियाँ गंगाजी में बहा देगा। कुछ दिन पीछे कहिए कि देसी खांड के बेचने वाले भी सफेद बूरा बनाने के लिए वही उपाय करते हैं। वह मैली खांड खाने लगेगा। कुछ दिन ठहरकर कहिए कि सस्ती जावा या मोरस की खांड मैली करके बिक रही है। वह गुड़ पर उतर आवेगा। फिर कहिए कि गुड़ के शीरे में भी सस्ती मोरिस की मैल का मेल है। वह गुड़ छोड़कर पितरों की तरह शहद (मधु) खाने लगेगा, या मीठा ही खाना छोड़ देगा। वह सिर निकालकर यह न देखेगा कि सात सेर की खांड छोड़कर डेढ़ सेर की कब तक खाई जाएगी, यह न सोचेगा कि बिना मीठे कब तक रहा जाएगा। यह नहीं देखेगा कि उसकी सी मति वाले शरबत न पीने वालों की संख्या घटती–घटती दहाइयों और इकाइयों पर आ–जा रही है, वह यह नहीं विचारेगा कि बन्नू से कलकत्ते तक डाकगाड़ी में यात्रा करने वाला जून के महीने में झुलसते हुए कंठ को बरफ से ठंडा बिना किए नहीं रह सकता। उसका कछुआपन कछुआ–भगवान की तरह पीठ पर मंदराचल की मथनी चलाकर समुद्र से नए–नए रत्न निकालने के लिए नहीं है। उसका कछुआपन ढाल के भीतर और भी सिकुड़कर घुस जाने के लिए है।

किसी बात का टोटा होने पर उसे पूरा करने की इच्छा होती है, दुख होने पर उसे मिटाना चाहते हैं। यह स्वभाव है। अपनी–अपनी समझ है। संसार में त्रिविध दुख

दिखाई पड़ने लगे। उन्हें मिटाने के लिए उपाय भी किए जाने लगे। 'दृष्ट' उपाय हुए। उनसे संतोष न हुआ तो सुने सुनाए (आनुश्रविक) उपाय किए। उनसे भी मन न भरा। सांख्यों ने काठ कड़ी गिन–गिनकर उपाय निकाला, बुद्ध ने योग में पककर उपाय खोजा, किसी ने कहा कि बहस, बकझक, वाक्छल, बोली की चूक पकड़ने और कच्ची दलीलों की सीवन उधेड़ने में ही परम पुरुषार्थ है। यही शगल सही। किसी न किसी तरह कोई न कोई उपाय मिलता गया। कछुओं ने सोचा, चोर को क्या मारें, चोर की माँ को ही न मारें। न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। यह जीवन ही तो सारे दुखों की जड़ है। लगीं प्रार्थनाएँ होने –

'मा देहि राम! जननीजठरे निवासम्' 'ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी–गर्भेभकत्वं जनाः' और यह उस देश में जहाँ कि सूर्य का उदय होना इतना मनोहर था कि ऋषियों का यह कहते तालू सूखता था कि सौ बरस इसे हम उगता देखें, सौ बरस सुनें, सौ बरस से भी अधिक। भला जिस देश में बरस में दो ही महीने घूम–फिर सकते हों और समुद्र की मछलियाँ मारकर नमक लगाकर सुखाकर रखना पड़े कि दस महीने के शीत और अंधियारे में क्या खाएँगे, वहाँ जीवन में इतनी ग्लानि हो तो समझ में आ सकती है पर जहाँ राम के राज में 'अदृष्टपच्या पृथिवी पुटके पुटके मधु' बिना खेती के फसलें पक जाएँ और पत्ते पत्ते में शहद मिले, वहाँ इतना वैराग्य क्यों?

हयग्रीव या हिरण्याक्ष दोनों में से किसी एक दैत्य से देव बहुत तंग थे। कवि कहता है –

विनिर्गतं मन्दमात्ममंदिरादभवत्युपश्रुत्य यदृच्छयापि यम्।
ससंभ्रमेन्द्रद्रुतपाताताला निमीलिताक्षीवभियामरावती।।

महाशय यों ही मौज से घूमने निकले हैं। सुरपुर में अफवाह पहुँची। बस, इंद्र ने झटपट किवाड़ बंद कर दिए, आगल डाल दी। मानो अमरावती ने आँखें बंद कर लीं।

यह कछुआ–धरम का भाई शुतुर्मुर्ग–धरम है। कहते हैं कि शुतुर्मुर्ग का पीछा कीजिए तो वह बालू में सिर छिपा लेता है। समझता है कि मेरी आँखों से पीछा करने वाला नहीं दीखता तो उसे भी मैं नहीं दीखता। लंबा–चौड़ा शरीर चाहे बाहर रहे, आँखें और सिर तो छिपा लिया। कछुए ने हाथ–पाँव–सिर भीतर डाल लिया। इस लड़ाई में कम–से–कम पाँच लाख हिंदू आगे–पीछे समुद्र पर जा आए हैं। पर आज कोई पढ़ने के लिए विलायत जाने लगे तो हनोज रोज अव्वल अस्ता! अभी पहिला ही दिन है। सिर रेत में छिपा है।

❑❑❑

आलेख

हिंदी कहानी में चित्रित ग्रामीण समाज और उसकी समस्याएँ



डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन
सीनियर प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारतेंदु हरिश्चंद्र का कथन है–'भारत का स्वत्व और आत्मा गाँव है।' इसलिए भारत को जानने के लिए यहाँ के गाँवों को जानना आवश्यक है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय ग्रामीण जीवन की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में तीव्रता से परिवर्तन हुआ। सत्ता का विकेंद्रीकरण करने के लिए पंचायती राज की स्थापना हुई। आम जनता की आकांक्षाएँ और उम्मीदें बढ़ीं। राजनैतिक और आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ। गाँव के पिछड़े वर्गों में राजनीतिक चेतना का उदय हुआ। गाँव पहले की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से अधिक समृद्ध हुए, फिर भी गाँवों और किसानों में असंतोष बढ़ा। पंचवर्षीय योजनाएँ, सामुदायिक विकास योजनाएँ और कृषि योजनाएँ गाँवों के विकास में अच्छी तरह सहायक नहीं हो पाईं। इस कारण गाँव के व्यक्ति शहरों की ओर मजदूरी, शिक्षा व व्यवसाय के कारण आकर्षित हुए। गाँव में आज भी पुरानी परंपराएँ, रूढ़ियाँ और अंधविश्वास अपनी जड़ें जमाए हुए हैं।

कहानी की परंपरा मनुष्य के जन्म से ही जुड़ी हुई है। कहानी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति, अपने अनुभव एवं अपनी आपबीती को अन्य व्यक्तियों के सामने प्रस्तुत करती है। कुछ घटनाएँ अपनी अनुभूति के द्वारा शाब्दिक रूप में व्यक्त की जाती हैं, कुछ लिखित रूप में, ये कहानी के अलग–अलग रूप हैं। कहानी किसी घटना या विशेष परिस्थति से निर्मित होती है। साहित्य की गद्य विधाओं में कहानी लेखन की परंपरा बहुत लंबी रही है। आधुनिक हिंदी कहानी का प्रारंभ भारतेंदु काल से माना जाता है, किंतु उस समय कलात्मक कहानी का आरंभ नहीं हुआ था। आरंभिक कहानियाँ आत्मपरक या कहें, आत्मकथात्मक कहानियाँ हैं। सन् 1900 के आसपास, हिंदी कहानी लेखन शुरू हुआ। इन कहानियों में पं. किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इंदुमती' और बंग महिला कृत 'दुलाईवाली' जैसी कहानियों को विशेष ख्याति प्राप्त

हुई। वस्तुतः हिंदी कहानी को प्रतिष्ठित करने का कार्य जयशंकर प्रसाद ने किया था। मुंशी प्रेमचन्द ने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा साधारण मनुष्यों में भी उच्च मानवता के दर्शन कराए हैं। वस्तुतः ग्रामीण–जीवन का चित्रण सर्वप्रथम हमें प्रेमचन्द में मिलता है। प्रेमचंद ने कहानी गढ़ने के बजाय समाज में घटित यथार्थ घटनाओं को कथा में ढाल दिया।

वस्तुतः हिंदी कहानी में रूपात्मक वैविध्य स्वातंत्र्योत्तर काल में बहुत अधिक आया। कहानी के रूप को लेकर जितने प्रयोग स्वातंत्र्योत्तर काल में किए गए उतने पहले कभी नहीं किए गए। अचानक छठे दशक के प्रारंभ में कहानी साहित्यिक चर्चा–परिचर्चा का केंद्रीय विषय बन गई। दो कथा आंदोलन सामने आए– 'नई कहानी' और 'आंचलिक कहानी'। इनमें मोटा अंतर तो यह था कि एक का संबंध नगर के मध्यवर्गीय जीवन से था और दूसरे का संबंध ग्रामीण जीवन से। ''स्वातंत्र्योत्तर'' शब्द और इसकी अर्थबोधक स्थिति आधुनिक हिंदी कथा साहित्य के समीक्षा–संदर्भ में एक पुष्ट विभाजक बिंदु के रूप में व्याख्यायित है। भारतीय जीवन में इस शब्द का अर्थ है वह कालावधि जो 15 अगस्त सन् 1947 ई. के पश्चात् अभिमुक्त है और जिनमें आधुनिक मुक्त जीवन की समस्त संभावनाएँ और देशगत बहुविध विकसनशील वृत्तियों के प्रसार की कल्पनाएँ हैं।'[1]

भारत की स्वाधीनता के पश्चात् जो नई चेतना आई, कहानी के क्षेत्र में उसका प्रभाव सन् 1950 से दृष्टिगोचर होने लगा। ''1950–51 के आस–पास मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह आदि की जो ग्राम कथाएँ प्रकाशित हुईं और जिन्होंने अपनी ओर लोगों का ध्यान तुरंत आकर्षित कर लिया, उन्हीं से नई कहानी का प्रारंभ होता है। ये कहानियाँ प्रेमचंद की परंपरा में थीं किंतु उनसे भिन्न भी थीं। आगे चलकर उक्त दो कथाकारों के अतिरिक्त अमरकांत, शेखर जोशी, रांगेय राघव, हर्षनाथ, लक्ष्मीनारायण लाल, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, फणीश्वरनाथ रेणु, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, राजेंद्र अवस्थी 'तृषित' आदि ने गाँवों तथा अविकसित आदिम क्षेत्रों से कथानक चुनकर कहानियाँ लिखीं।''[2]

आज़ादी के बाद का ग्राम जीवन टूटता है, बिखरता है। लोकगीतों की जगह फ़िल्मी गाने गाए जाते हैं। गाँव की सामूहिकता भंग होती है। एक गाँव में एक पंचायत नहीं, बल्कि हर जाति की अपनी पंचायत और उस पंचायत के लिए अलग पंचलाइट। चिड़िया भी अब अपना गाना भूल रही है। लोक–कलाकार जो लोगों के हृदय में बसते थे, दाने–दाने को मुहताज मारे–मारे फिरते हैं। मजदूरों का खेतों से नाता टूट रहा है। वे शहर में रिक्शा चलाना या होटलों में प्लेट माँजना ज्यादा अच्छा समझते हैं। गाँव के लोगों में शहरों की तरफ़ का पलायन बढ़ता ही रहा है। जो गाँव में हैं, उनमें भी शहरी संस्कृति व्याप्त हो रही है। फिर एक ऐसा भी दौर शुरू होता है जब लोक–कला का एक बाज़ार बनता है और उसे भुनाने की कोशिश शुरू होती है। रेणु

की 'रसप्रिया', 'विघटन के क्षण', 'उच्चाटन', 'भित्तिचित्र की मयूरी' इन्हीं जीवन–स्थितियों से उपजी कहानियाँ हैं। 'रसप्रिया' कहानी में रेणु ग्रामीण समाज से ओझल होती लोक संस्कृति की परंपरा का चित्रण करते हैं। वे कहानी में मिरदंगिया के माध्यम से चिंता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि–"जेठ की चढ़ती दोपहरी में खेतों में काम करने वाले भी अब गीत नहीं गाते हैं।... कुछ दिनों के बाद कोयल भी कूकना भूल जाएगी क्या? ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे काम किया जाता है। पाँच साल पहले तक लोगों के दिल में हुलास बाकी था।"[3]

मार्कण्डेय स्वाधीन भारत के कथाकार थे लेकिन वे गहरे अर्थों में भारतीय सामाजिक चेतना के भी कथाकार रहे हैं। स्वाधीनता के तुरंत बाद जब हिंदी कहानी में आधुनिकता और नगरीय बोध एक चलन के रूप में स्वीकृत किया जा रहा था तब मार्कण्डेय ने अपनी कहानी का आरंभ वहीं से किया जहाँ प्रेमचंद ने कहानी को छोड़ा था। प्रेमचंद की तरह मार्कण्डेय भी मूलतः देशज संवेदना के कथाकार थे। 'गुलरा के बाबा' कहानी सामंती अकड़ और प्रतिरोधी चेतना के टकराव की कहानी हो सकती थी लेकिन मार्कण्डेय सामाजिक परिवर्तन की उतनी ही आहट दर्ज करते हैं जितनी वह यथार्थ जगत में थी, यानि यहाँ सामंतवाद के पराभव और प्रतिरोध की काल्पनिक विजयगाथा न होकर, चैतू अहीर की दबंग उपस्थिति के रूप में प्रतिरोध की आहट और गुलरा के बाबा के रूप में सामंती सदाशयता के व्यावहारिक वृत्तांत की सहज मानवीय कथा है। आरक्षण विरोध के चरम दौर में जब मंडल बनाम मंदिर की विभाजक रेखा खींच दी गई थी तब 'हलयोग' सरीखी कहानी का प्रकाशन लेखकीय पक्षधरता का विरल उदाहरण था।

'हलयोग' मात्र दलित यातना की कहानी न होकर हिंदू धर्म की उस वर्णाश्रमी–जातिवादी संरचना का विखंडन भी है जहाँ हाशिये के समाज की शिक्षा और संपत्ति के अधिकार पर कड़ा पहरा है। 'जूते' कहानी के मनोहर की यह चाहत कि "मैं बड़ा होकर एक जूता बनवाऊँगा। चाहे उसके लिए कितना ही काम क्यों न करना पड़े"[4] मेहनतकश दलित समुदाय की इच्छा–आकांक्षाओं पर सदियों से लगे अंकुश को बेपर्दा करती है। इसी तरह 'भूदान' कहानी में हलवाह रामजतन का अपने खेत के साथ–साथ आजीविका के साधन हलवाही तक का छिन जाना आज़ाद भारत में खेतिहर मज़दूर की बेबसी और शासकवर्ग की दुरभिसंधि का प्रभावी आख्यान बन सकी है। आज़ादी के तुरंत बाद ग्राम्यविकास की योजनाओं और मंसूबों को दबंग भूस्वामियों द्वारा किस तरह साधनविहीनों के विरुद्ध इस्तेमाल किया गया, इसकी एक बानगी 'दौने की पत्तियाँ' कहानी में अत्यंत प्रभावी रूप में देखी जा सकती है। भूमिहीन श्रमिक भोला को नहर निकालने के नाम पर मेहनत–मशक्कत से बनाए ज़मीन के टुकड़े से भी बेदखली पर कहानी के अंत में कहानीकार पाठक से संवाद करते हुए यह प्रश्न पूछता है–"भाग तो सकता था वह, पर भागा क्यों नहीं? यह आप खुद सोचिये?

भूमिहीन–श्रमजीवी भोला पुलिस, तिवारी जी, इंजीनियर और सरकार की हिरासत में हैं, इसलिए चोर अथवा खूनी कुछ भी कह सकते हैं उसे, क्योंकि गुलाबी (भोला की पत्नी) के पास तो अब दौने की पत्तियाँ भी नहीं रहीं।"[5]

शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कहानियों में ग्रामीण यथार्थ के विभिन्न पक्षों का अंकन किया है। इनमें परंपरागत ग्रामीण जीवन का आदर्श पहलू, स्त्री की पीड़ा, हाशिये के लोगों का जीवन आदि शामिल है। उन्होंने ग्रामीण समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं संकीर्णताओं पर भी कटाक्ष किया है। उन्होंने स्वयं कहा है, "मेरी ज़िंदगी में गाँव एक ऐसी हकीकत है जिसे मैं चाहकर भी काट नहीं सकता, गाँव की अछोर हरियाली में डूबे सीमांत, फसलों के रंग–बिरंगे गलीचे बिछाकर किसी अनागत की प्रतीक्षा में डूबी धरती, सरसों, जलकुंभी और झरबेरी के जंगली फूलों से मदहोश वातावरण के बीच अपनी सामान्य ज़िंदगी के लिए संघर्षरत किसान मेरी कहानियों के अविभाज्य अंग हैं। शहर के जीवन में जहाँ एक ओर आधुनिकताबोध को निरंतर तीव्र और सक्रिय बनाता है, वहीं गाँव के जीवन की धड़कनें जो अब भी सड़ी–गली परंपरा और कूटस्थ रूढ़ियों का कूड़ा–कचरा ढोती हुई कराह रही हैं मेरे जैसे कहानीकार के लिए सदा चुनौती रही हैं।"[6]

शिवप्रसाद सिंह अपनी कहानियों में आदर्श पात्र का निर्माण करते दिखाई देते हैं। 'कर्मनाशा की हार' में भैरो पाँडे अपने भाई कुलदीप की टीमल मल्लाह की विधवा लड़की फूलमत से प्रेम–संबंध को लेकर असहज है। फूलमत को जब बच्चा होता है, उन्हीं दिनों कर्मनाशा में बाढ़ आती है, पूरा गाँव फूलमत के बच्चे की बलि देना चाहता है, लेकिन तब भैरो पाँडे इन्कार कर देते हैं'...सुनो, कर्मनाशा की बाढ़ दूधमुँहे बच्चे और एक अबला की बलि देने से नहीं रुकेगी, उसके लिए तुम्हें पसीना बहाकर बाँधों को ठीक करना होगा...।"[7] ग्रामीण समाज की संकीर्णता एवं रूढ़ि शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में बार–बार आती है। 'रेती' कहानी में बच्चा न होने का सारा दोष स्त्री पर मढ़ देने की सामाजिक प्रवृत्ति को दर्शाया गया है।

मोहनदास नैमिशराय अपनी कहानियों के माध्यम से ग्रामीण अंचलों में जातिगत और ऊँची जाति के लोगों के सामंती दबदबे को उघाड़ने का काम करते हैं। इनकी कहानियों में जातिवाद और सामंतवाद एक ही सिक्के के दो पहलुओं के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। 'अपना गाँव' में सवर्णों की जातिगत और सामंती ज्यादतियाँ और अत्याचार केवल दलित पुरुषों तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि दलित स्त्रियों को भी अपनी जद में लेकर उनके साथ क्रूरता और निर्ममता की जाती है। इस कहानी में गाँव के ठाकुरों द्वारा दलित स्त्री कबूतरी पर जिस तरह से जुल्म और अत्याचार किया जाता है, वह केवल दलित समाज को नहीं, बल्कि पूरी मानवता को शर्मसार करने वाला है। 'आवाज़ें' कहानी की कथा में इतवारी और मेहतर समाज के लोग सामंतों की 'जूठन' और गंदगी उठाने से मना कर देते हैं। मेहतरों के इस निर्णय को अपनी शान पर

कुठाराघात मानते हुए सामंत औतार सिंह दलितों को सबक सिखाने के लिए रात को उनकी बस्ती में आग लगवा देता है।

शिवमूर्ति का कथा–साहित्य काफ़ी दृढ़ता से ग्रामीण जीवन और आधुनिक जीवन–मूल्यों के पक्ष में खड़ा नज़र आता है। उन्होंने शहरों में आधुनिकता के संकटों को देखने के स्थान पर गाँवों में आधुनिकता के अभाव को देखा। इसी तरह उन्होंने गाँवों को केवल खेतिहर किसान का पर्याय समझने के बजाय ग्रामीण संरचना में शामिल कई अन्य पक्षों जैसे स्त्री–जीवन, जातिवाद, सरकारी भ्रष्टाचार और आपसी ईर्ष्या आदि को कथानक का आधार बनाया। उन्होंने हितों के स्तर पर किसान–जमींदारों के ध्रुवीकरण को ही ग्रामीण जीवन का एकमात्र सत्य मानने के बजाय खुद किसानों–दलितों के आंतरिक पारिवारिक जीवन पर नज़र रखी और सबसे अधिक तो स्त्रियों के उत्पीड़ित जीवन को कई कोण से प्रस्तुत किया है। उनकी एक अति प्रसिद्ध कहानी 'तिरियाचरित्तर' में गाँव के जीवन का यथार्थ एक साहसी पर हर तरफ़ से लाचार स्त्री की दारुण पीड़ा के माध्यम से बयान किया गया है। इस कहानी की नायिका विमली पहले तो अपने गाँव में पुरुषों के बीच असुरक्षित होती है और फिर अपने ही ससुर के हाथों बलात्कार की शिकार होती है। गाँव में सज़ा सुनाए जाने पर वह विरोध में तनकर खड़ी होती है और कहती है–"मुझे पंच का फैसला मंजूर नहीं। पंच अंधा है। पंच बहरा है। पंच में भगवान का सत नहीं है। मैं ऐसे फैसले पर थूकती हूँ– आ–क्थू...! देखूँ कौन माई का लाल दागनी दागता है।"[8] इस कहानी की नायिका विमली अपने पैरों पर खड़ी तो होना चाहती है पर वह उसके उत्पीड़न पर घात लगाकर बैठे पुरुषों के चक्रव्यूह को भेदना नहीं जानती। पितृसत्ता की सफलता स्त्री को आत्मनिर्भर बनने से रोकने में होती है। शिवमूर्ति की कहानी 'केशर–कस्तूरी' अनमेल विवाह की समस्या की ओर इशारा करती है पर वह केवल वहीं तक सीमित नहीं रहती बल्कि उसके माध्यम से गाँवों के बड़े परिवारों के भीतर निरंतर गहराते संकट की झलक मिलती है।

हिंदी कहानी की विकास यात्रा में कई पड़ाव आए। कई आंदोलन जैसे नई कहानी, समांतर कहानी के क्रम में आधुनिक यथार्थवादी का दौर आया। लेकिन विषयवस्तु और सामाजिक ज़मीन एक ही थी। दलित विषयक कहानी तो प्रेमचंद, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', निराला इत्यादि के कथा साहित्य में आ चुकी थी। दलित साहित्य आने के बाद कहानी कहने वाले घीसू, माधव, होरी खुद अपनी कहानी लिखने लगे। दलित, आदिवासी और अति पिछड़े समाजों से कहानीकार आए। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के बाद बदले हुए ग्रामीण परिवेश का यथार्थपरक और नग्न चित्रण स्वातंत्र्योत्तर काल के कहानीकारों की कहानियों में देखने को मिलता है। इन कहानीकारों ने जब कथा लेखन में प्रवेश किया तब देश औद्योगिकीकरण, पंचवर्षीय योजना आदि तमाम विकासमान मूल्यों की तरफ़ गतिमान था। डॉ. अंबेडकर और

गांधी जी के प्रयास से दलितों में चेतना सुगबुगा रही थी। गाँव का सामाजिक ढाँचा टूट रहा था। इस तरह की स्थिति में गाँव का एक बदला हुआ परिदृश्य दिखाई दिया जिसे इन लेखकों ने अपनी कहानियों में रूपायित किया। इन कहानीकारों ने गाँव की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, जातिगत आदि विविध समस्याओं को अभिव्यक्त किया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में ग्रामीण समाज के हर पहलू को उजागर किया है जिसमें ग्रामीण समाज के भविष्य की चिंता, ग्रामीण समाज में जीवित आत्मीयता, स्त्री जीवन, रिश्तों में एकता का भाव, आपसी द्वेष, प्रेम प्रसंग, लोक–परंपरा का महत्त्व आदि सभी को देखा जा सकता है।

संदर्भ सूची :–

1. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा–साहित्य और ग्राम जीवन, विवेकी राय, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1974, इलाहाबाद, पृ.17
2. हिंदी कहानी परंपरा और प्रगति, डॉ. हरदयाल, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2017, नई दिल्ली, पृ.139
3. रेणु रचना संचयन, सं. भारत यायावर, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण, 1998, नई दिल्ली, पृ.162
4. संपूर्ण कहानियाँ, मार्कंडेय, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2018, दिल्ली, भूमिका
5. वही, भूमिका
6. शिवप्रसाद सिंह की लोकप्रिय कहानियाँ, शिवप्रसाद सिंह, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2022, दिल्ली, भूमिका
7. अंधकूप कहानी संग्रह, शिव प्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2003, नई दिल्ली, पृ.61
8. कहानी विचारधारा और यथार्थ, वैभव सिंह, वाणी प्रकाशन, पेपरबैक प्रथम संस्करण, 2020, नई दिल्ली, पृ.123–125

❑❑❑

भूमंडलीकरण के थपेड़े झेलतीं तीन स्त्रियाँ



डॉ. एलाङबम विजयलक्ष्मी
सहआचार्य, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय

आज हम चाहे अनचाहे ऐसे युग में जी रहे हैं जब सारा विश्व बाजार में तब्दील हो चुका है। पूंजीवाद की परिणति जिस रूप में हुई, उसे वृद्ध पूंजीवाद कहा गया जिसमें भूमंडलीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई। 19वीं शताब्दी को भूमंडलीकरण का काल कहा गया है। वर्तमान में इसे अनेक संभावनाओं के साथ ग्रहण किया जा रहा है। "भूमंडलीकरण का तात्पर्य कई अर्थों और प्रभावशाली एक परिघटना के रूप में समझा जाने लगा है। इसमें कई चीजों का समावेश रहता है। वित्तीय पूँजी का भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण, रोजगार की कमी, विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोश, विश्व व्यापार संगठन, तीसरी दुनिया पर हमला आदि।"[1] सैद्धांतिक अवधारणा की दृष्टि से ग्लोबलाइजेशन शब्द का प्रयोग अमरीका निवासी चार्ल्स ताजे रसेल ने किया जिन्होंने 1897 में एक प्रसंग में कॉर्पोरेट जाइंट शब्द का प्रयोग किया था। रसेल द्वारा प्रयुक्त यह शब्दावली जल्दी ही चर्चा के केंद्र में आ गई और ऐसा माना जा सकता है कि यहीं से भूमंडलीकरण की अवधारणा उत्पन्न हुई।

इस अवधारणा को स्पष्ट करते हुए "ग्लोबलाइजेशन शब्द का पहला प्रयोग थ्योडोर लेविट के द्वारा 1983 में प्रकाशित हारवर्ट बिसनेस रिव्यू में किया गया और बीस साल से भी कम समय में यह शब्द बौद्धिक जगत में सर्वाधिक प्रयोग किया जाने लगा।"[2] चाहे भूमंडलीकरण शब्दावली का प्रयोग बहुत पुराना न हो, पर इसने मानव जीवन के हर पक्ष को प्रभावित किया है। इसे उत्तराधुनिकता से प्रेरित एक परिघटना भी कहा जा सकता है। 'द कॉन्साइंस ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ करेंट इग्लिश' में ग्लोबलाइजेशन शब्द का अर्थ लिखा है– 'मेक ग्लोबल',[3] अर्थात् वैश्विक होने की प्रक्रिया को ही भूमंडलीकरण कहा जा सकता है। इस शब्द से संकीर्णता से ऊपर उठकर संपूर्ण विश्व के एक होने का अर्थ ध्वनित होता है। भूमंडलीकरण शब्द 'ग्लोबलाइजेशन' शब्द के आधार के रूप में अंग्रेजी से आया है जो एक आर्थिक और सामाजिक प्रणाली से संबंधित एक अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क के उभरने को संदर्भित करता है।"[4] विज्ञान और तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप संपूर्ण विश्व एक गाँव बन चुका

है। ऐसे में स्वाभाविक है एक देश के समाज–सांस्कृतिक, व्यापार वाणिज्य का प्रभाव दूसरे देश की स्थितियों पर पड़े। "थॉमस लारसन के अनुसार वैश्वीकरण दुनिया के सिकुड़ने, दूरियों को कम करने और चीजों की निकटता की प्रक्रिया है। यह दुनिया के एक हिस्से पर किसी भी व्यक्ति के बढ़ते हुए संबंधों की उपादेयता के लिए दुनिया के दूसरी तरफ पाए जाने वाले व्यक्ति को अनुमति देता है।"[5] भूमंडलीकरण शब्द को स्पष्ट करने के लिए जो भी विचार या मत प्रस्तुत किए गए हैं, उनसे विश्व भर के देशों में आपसी संबंधों में विस्तार के साथ संस्कृति, अर्थ–व्यवस्था, व्यापार वाणिज्य में प्रगति के लिए एक–दूसरे के विकास में सहयोग देने की बात की जाती है। परंतु ये अपेक्षाएँ कहाँ तक पूरी होंगी, यह एक बड़ा सवाल है क्योंकि "संसार को एक करने की इसकी दृष्टि पूरी तरह से एकआयामी है। यह सिर्फ व्यापार के लिए दुनिया को एक करना चाहती है, बाकी सारी बातें आनुषंगिक हैं।"[6] भूमंडलीकरण से संपूर्ण विश्व के हित और सबके सुख का जो अर्थ ध्वनित होता है, उसके विपरीत यह बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा पूंजीवादी प्रतिष्ठानों के हितों की रक्षा करता ज्यादा प्रतीत होता है।

वैश्वीकरण के परिणाम के रूप में अविकसित तथा विकासशील देश विकसित देशों के लिए कच्चे माल का भंडार और खुली मंडी के रूप में उपलब्ध हो जाते हैं। "जिस प्रकार के ग्लोबीय प्रभाव विकसित देशों की खुली मंडी में दाखिल होने से पड़ रहे हैं, ये और ज्यादा विस्तार पाएँगे, इन्हें आम आदमी भी रोक नहीं पाएगा पर सावधान उसे रहना होगा क्योंकि हमारे नेता अपने सियासी लाभ के लिए उच्च वर्ग से साँठ–गाँठ करेंगे और वे देश को गिरवी ही नहीं, बेचने तक भी आ सकते हैं। अतः आम आदमी को यह बात समझ में आनी चाहिए कि उसकी सारी कमाई 'खुली मंडी' के विकसित देश ठग लेंगे। ऐसी संभावना है कि भारत की आम जनता को जीने के लिए बुनियादी आवश्यकताएँ भी पूरी न हों और वह 'मरता क्या न करता' के अनुसार ग्लोबीय प्रभावों का ऐसा विरोध करें कि इतिहास की दिशा ही बदल जाए और कोई ऐसा अप्रत्याशित परिवर्तन आए कि देश अपने बलबूते अपनी प्रभुता स्थापित कर ले। यदि ऐसा कुछ नहीं होता तो जनता को गरीबी का नरक भोगना पड़ेगा। उसके सामने एक ही रास्ता होगा कि जनता विकसित देशों की तथा उच्च वर्ग की लूट खसोट से अपने खून–पसीने की कमाई को अपने लिए संभाल सके, चाहे उसके लिए उसे कितना ही संघर्ष क्यों न करना पड़े। इस संघर्ष के लिए उसके पास संकल्प और चेतना का होना आवश्यक है। इस प्रकार की जागृत चेतना के बिना संघर्ष बेमानी हो जाता है।"[7] बाजारवाद ने छोटे से लेकर बड़े राष्ट्रों तक की आर्थिक नीतियों को बदल डाला। विश्व की आर्थिक शक्तियों ने कमजोर देशों खासकर तीसरी दुनिया के देशों को अपने बाजारों के दरवाजे उनके उत्पादकों और व्यापारियों के लिए खोलने को मजबूर कर दिया। बहुराष्ट्रीय कंपनी और उद्योगों तथा व्यापार को सरकारी हाथों से निकालकर निजी हाथों में दिए जाने की घटना ने पूरे विश्व को एक नई आर्थिक प्रक्रिया का हिस्सा

बना दिया जिसने समाज को भी प्रभावित किया और साहित्य को भी। यह कहना गलत नहीं होगा कि "पिछले एक दशक में वैश्वीकरण नामक घटना के बारे में बढ़ती चिंता देखी गई है। यह अकादमिक दुनिया में चिंता का स्रोत बन गया है।"[8] प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के लिए भूमंडलीकरण चिंतन का विषय है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, साहित्य को भी इसने प्रभावित किया है। अतः साहित्य के क्षेत्र में भी इस विषय को आधार बनाकर अनेक रचनाएँ रची गईं जिनमें मानव जीवन और समाज पर भूमंडलीकरण की प्रक्रिया तथा इसके संभावित परिणामों की समीक्षा की गई है और इसका व्यक्ति जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया ।

रणेन्द्र द्वारा रचित 'ग्लोबल गाँव के देवता' एक ऐसा ही उपन्यास है, जिसमें भूमंडलीकरण और उसके प्रभाव से उत्पन्न स्थिति और विकास के अंतर्विरोध तथा उससे प्रभावित लोगों के जीवन–यथार्थ को व्यक्त किया गया है। इस उपन्यास में एक कथावाचक है जो अपना अनुभव बताते हुए सीधे पाठकों से वार्तालाप करता है। उपन्यासकार ने कीकट प्रदेश के बरवे जिले में रहने वाली जनजातियों को अपने उपन्यास का उपजीव्य बनाया है। इन जनजातियों को असुर नाम से जाना जाता है। जंगलों के साथ जनजातियों का एक अटूट संबंध होता है। इन असुरों का जीवनयापन भी जंगलों के सहारे ही होता है। ग्लोबल गाँव के देवतागणों की नजर ऐसी जगहों पर रहती है जहाँ प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हों और इसलिए ग्लोबल गाँव के ये देवता इस इलाके में पहुँच चुके हैं। जीवन के आधार जंगलों को आर्थिक विकास के नाम पर काटा जाता है। देशी–विदेशी कंपनियाँ प्राकृतिक संपदाओं का बेहिसाब दोहन करती हैं। विकास के नाम पर उन्हीं के क्षेत्र को खोखला किया जाता है, फिर भी उनमें इतनी समझ नहीं कि कुछ करें। इस स्थिति का वर्णन उपन्यास में बहुत मार्मिक ढंग से किया गया है। जब कथा वाचक भौरापाट नामक क्षेत्र को देखकर कहता है, "मीलों तक पसरे पहाड़ के ऊपर यह चौरस इलाका मन को और उचाट कर रहा था। छिटपुट जंगल बाकी खाली दूर–दूर तक फैले उजाड़–बंजर के खेत। बीच–बीच में बाक्साइट की खाली खदानें जहाँ से बाक्साइट निकाले जा चुके थे, वे गड्ढे भी मुँह बाये पड़े थे मानो धरती माँ के चेहरे पर चेचक के बड़े–बड़े धब्बे हों। कोई ढंग से बोलने बतियाने वाला नहीं। शाम होते ही सन्नाटा उतर आता।"[9] अपनी ही भूमि पर दूसरों के द्वारा अधिकार जमा लेने पर भी ये लोग कुछ नहीं कर पाते और खेतों–खलिहानों को बंजर होते ताकते रह जाते हैं। कुछ जनजातीय युवाओं द्वारा विद्रोह किए जाने पर या तो उन्हें सताया जाता है या फिर नक्सली करार देते हुए उनके विरोध को दबाने की कोशिश की जाती है। कुछ अवसरवादी चंद पैसों के लालच में अपने ही लोगों के शोषक बन जाते हैं। ऐसे समाज में स्वाभाविक है सबसे अधिक मुसीबतों का सामना स्त्री को ही करना पड़ेगा। इस उपन्यास के तीन स्त्री पात्रों के माध्यम से स्त्री पर पड़ने वाले भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के प्रभावों को दिखाया गया है।

उपन्यास का कथावाचक कोयलबीघा इलाके के सखुआपाट के एक स्कूल में मास्टर बनकर आता है। यहाँ आने के बाद वह असुर लोगों से मिलता है। तब उसे पता चलता है कि सदियों से किस तरह पूरा समुदाय अपने अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा है। वैदिक युग में आर्यों के साथ इस वर्ग का संघर्ष चलता रहा। इस संघर्ष में उन्हें बार–बार पराजित होना पड़ा। इतना ही नहीं, उन्हें मायावी और राक्षस का दर्जा दिया गया और लगातार जंगलों और पहाड़ों की ओर धकेल दिया जाता रहा। गणतांत्रिक शासन व्यवस्था अर्थात् जनता द्वारा, जनता के लिए और जनता के शासन में सर्वाधिकार जनता का ही होना चाहिए, पर विडंबना है कि इसी व्यवस्था में जनता का शोषण भी सबसे अधिक होता है। अपने अधिकारों के प्रति सचेत न होने से आम आदमी लगातार शोषण की चक्की में पिसने को अभिशप्त होता है। अतः "जनतंत्र का सबसे बड़ा आधार आम आदमी की जागृति है, वह हर ऐतिहासिक अनुभव से बढ़ेगी और इससे मानवीय मूल्य नए–नए रूपों में विकसित होते रहेंगे।"[10] इन मूल्यों को समझने और समाजानुकूल बनाए रखने के लिए जन चेतना की आवश्यकता है। ऐसा न होने पर व्यक्ति और समाज का विकास की ओर अग्रसर होना मुश्किल हो जाएगा।

समाज के विकास में सबसे बड़े बाधक कारक अशिक्षा, अज्ञानता और दरिद्रता को माना जा सकता है। पहाड़ों, जंगलों और गाँवों में रहने वाले अधिकांश लोगों के जीवन का एक सच दरिद्रता है। तमाम लोगों की अनिवार्य आवश्यकताएँ तक पूरी नहीं हो पातीं। आर्थिक स्रोतों पर जिन लोगों का अधिकार रहता है, उस पर काबिज़ रहने के लिए वे साम–दाम–दंड–भेद अपनाने से भी बाज़ नहीं आते। ऐसे में जो गरीब है, वह गरीब ही बना रह जाता है। किसी भी समाज में दरिद्रता या आर्थिक असमानता का कारण बताते हुए "प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने यह उल्लेख किया है कि अनाज की कमी से अकाल नहीं पड़ते बल्कि गोदामों में भरे हुए अनाज का वितरण न होने से सामाजिक व्यवस्था बिगड़ जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि बहुत सारे श्रमिक, दलित, किसान काल के गाल में समा जाते हैं इसलिए समयानुसार सभी को सुविधाएँ उपलब्ध कराने की व्यवस्था होनी चाहिए।"[11] यह तो हुई आदर्श की स्थिति, जो यथार्थ से बहुत दूर लगती है। वास्तविकता यह है कि अधिकारी और नेतागण के बीच ऐसी साँठ–गाँठ रहती है कि सरकारी माल पर वे अपना एकाधिकार समझने लगते हैं और जो वास्तव में जरूरतमंद हैं, उन तक कुछ पहुँचता ही नहीं है। कीकट प्रदेश के निवासी भी अधिकांश दरिद्र हैं। दरिद्रता के चलते तमाम परेशानियों से घिरे रहते हैं। जीवित रहना ही उनके जीवन का सबसे बड़ा सवाल है। ऐसा होते हुए भी बताया जाता है कि इस जनजाति की एक समाज–व्यवस्था हुआ करती थी जिसमें महिलाओं को विशेष स्थान दिया जाता था। श्रम विभाजन के अनुसार समाज में दायित्वों का निर्वाह होता था, परंतु भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप आर्थिक व्यवस्था में जो परिवर्तन

आया, उसने शहर ही नहीं, ग्रामीण परिवेश और समाज–सांस्कृतिक व्यवस्था को भी बदल दिया।

समाज के वर्तमान परिदृश्य को देखकर ऐसा लगता है जैसे "भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण का सिद्धांत उन लोगों को लाभान्वित कर रहा है, जो पहले से ही सुविधा संपन्न हैं। शेष समाज संघर्ष, कुंठा और रोष के रूप में इसकी कीमत चुका रहा है। इससे एक राष्ट्र–विशेष का पारिवारिक, जातीय एवं सामाजिक बोध भी प्रभावित हो रहा है।"[12] किसी भी विपरीत स्थिति में सर्वाधिक प्रभावित होने वाला वर्ग है–स्त्री और बच्चे। असुर समाज में भी पुरुष प्रधान अन्य समाजों की तरह स्त्रियाँ ही सबसे अधिक शोषण की शिकार होती हैं। कथावाचक गाँव वालों से सुनता है कि एक समय था जब "महिलाएँ इस समाज में सियानी कहलाती थीं, जनानी नहीं। जनानी शब्द कहीं न कहीं केवल जनन, जन्म देने की प्रक्रिया तक उन्हें संकुचित करता, जबकि सियानी शब्द उनकी विशेष समझदारी– सयानेपन को इंगित करता मालूम होता।"[13] मणिपुरी में एक कहावत है, 'फल तोड़ने से ज्यादा उसे सहेज–संभालकर रखना ज्यादा महत्वपूर्ण होता है'। भारतीय समाज में सदियों से यह काम स्त्रियाँ ही करती आ रही हैं। समय के साथ विज्ञान के तमाम आविष्कारों तथा तकनीकी विकास ने अनेक रहस्यों को खोला है तो समस्यापरक नई स्थितियों का भी सामना करवाया है।

भौतिक विकास के विभिन्न संसाधनों के साथ समाज व्यवस्था में परिवर्तन स्वाभाविक है। उपन्यास में दिखाया गया है कि कोयलबीघा इलाके को बाक्साइट के लिए खोदा जा रहा है। अवैध खनन जारी है। देशी–विदेशी कंपनियों के कार्यकर्ता और अधिकारी सभी बाहर से आए हैं। उनके घरों में काम करने वाली स्त्रियाँ असुर वर्ग की स्त्रियाँ हैं। ये दलालों और ठेकेदारों की वासनाओं का शिकार होने के लिए अभिशप्त हैं और दुःख की बात यह है कि इस समुदाय के पुरुष ही चंद रुपयों के लालच में ठेकेदारों के हाथों के खिलौने बनकर उनकी साध पूरी करते हैं "खदान में मेठ, मुंशी, क्लर्क, अफसरों के डेरों में खटने वाली असुर युवतियों के रंग–ढंग देखते ही देखते बदल जाते। स्नो–पावडर, रंग, आलता, नकली जेवर से सजने लगतीं। सखुआपाट के अंसारी ठेकेदार की रखनी रामरति अकेले नहीं थी। वह छुतवा रोग की तरह पूरे पाट में फैल रही थी।"[14] उपन्यासकार ने यहाँ जिस स्त्री–वर्ग को प्रस्तुत किया है वह असुर वर्ग की है, परंतु प्रचलित रूढ़ियों के कारण भारत के सामाजिक मन में जो धारणा बन गई है उसके अंतर्गत सारी स्त्रियों को असुर वर्ग में रखा जा सकता है क्योंकि स्त्री केवल स्त्री है, चाहे वह महानगर में रहने वाली हो, चाहे गाँव में या फिर किसी कस्बे में। तमाम विकास और उन्नति के बावजूद भारतीय समाज में आज भी स्त्रियों की नियति पूर्व स्थिति से ज्यादा भिन्न नहीं है। आलोच्य उपन्यास इस ओर सोचने पर मजबूर करता है क्योंकि पढ़–लिख लेने, नौकरी कर लेने या आर्थिक रूप से स्वाबलंबी होने से ही स्त्री शोषण से मुक्त हो जाती हो, ऐसा नहीं है। उपन्यास की सलोनी को देखकर ऐसा ही

लगता है। वह शिंडल्को कंपनी की मुख्य शाखा में कार्यरत थी, परंतु जब कोयलबीघा इलाके में विरोध शुरू हुआ और विद्रोहियों ने कंपनी का काम रोक दिया, तो उसे नियंत्रित करने के लिए सलोनी का स्थानांतरण सखुआपाट में करवा दिया। सलोनी को अपना परिवार चलाने के लिए नौकरी चाहिए थी और नौकरी में बने रहने के लिए बॉस का कहना मानना ही था इसलिए वह मैनेजर के हाथों का खिलौना बनकर रह जाती है।

एक कंपनी का मैनेजर किशन कन्हैया पाण्डे नाम के अनुरूप रसिक मिजाज़ वाला है जो कंपनी के नाम से जहाँ भी जाता है अपने मन की साध पूरी करने का मौका तलाश ही लेता है। एक प्रसंग में लिखा है, "सोवियत रूस के विघटन के बाद दिल्ली के सस्ते होटलों में अतिश्वेताओं की भरमार थी जिनके मोबाइल नंबर इनकी डायरी की शोभा बढ़ाया करते। दिल्ली से दो घंटे की फ्लाइट और राजधानी से चार घंटे की यात्रा। ग्लोबल गाँव की कृपा से सब कितना सुलभ।"[15]

इसी उपन्यास में स्त्री का एक भिन्न चित्र प्रस्तुत करने वाली पात्र है– बुधनी। कोयलबीघा इलाका जब बंजर हो गया तो वहाँ के अनेक लोग रोजगार की तलाश में वहाँ से बाहर चले जाने को विवश हो गए। ऐसे में बुधनी अपने पति को लेकर असम की ओर चली गई और शिवसागर या डिब्रूगढ़ के किसी चाय बगान के पास चाय की दुकान चलाने लगी। भले ही एक स्त्री का चाय की दुकान चलाना हमें नया न लगे, परंतु झारखंड जैसी जगह के एक गाँव की अनपढ़ स्त्री आर्थिक स्वाबलंबन की ओर बढ़ती है तो इसे स्त्री सशक्तिकरण का एक सकारात्मक पहलू माना जाना चाहिए।

आज स्त्री अपने अधिकारों, दायित्वों और समस्याओं के प्रति सजग हो रही है। आत्म–चेतना के कारण उसे जिम्मेदारियों का अहसास होने लगा है। इसी कारण वह एक प्रकार की मानसिक पीड़ा का भी अनुभव करती है इसलिए वह अपने आस–पास घटने वाली घटनाओं से आँखें मूँदकर मुँह नहीं फेर पाती, बल्कि प्रतिक्रिया करने पर उतर आती है। ऐसी ही युग की चेतना संपन्न असुर स्त्री है ललिता। पढ़ी–लिखी और समझदार, जो अपने समाज में फैले अंधविश्वास से दुःखी है। वह बाबा शिवदास द्वारा चलाए गए कंठी अभियान का विरोध करती है। कहती है, "असुर पुरुष क्यों दूसरों के झाँसे में आ जाते हैं, क्यों इतनी जल्दी बेवकूफ बन जाते हैं।"[16] यही ललिता कथावाचक मास्टर से दोस्ती की पहल भी करते हुए कहती है, "आपसे दोस्ती जमेगी, चलिए! हम लोग सहिया जोड़ लें' यह ललिता की घोषणा थी। सहिया जोड़ने, यानी दोस्ती की विधिवत घोषणा की अच्छी–खासी प्रक्रिया थी। लालचन दा सुनकर हँसने लगे। लड़का– लड़का और लड़की–लड़की का सहिया जोड़ाए तो देखते–सुनते आए। अब ललिता नया विधि–विधान, परंपरा शुरू कर रही है।"[17] स्त्री होने भर से वह अपने को पुरुषों से हीन नहीं मानती, बल्कि स्त्री को पुरुष के समानांतर अस्तित्व की स्वामिनी मानती है। इसी ललिता को अन्याय का विरोध करने के कारण अपनी जान बचाने के

लिए दर–ब–दर भागना पड़ता है। ललिता वास्तव में सजग होती जनजाति स्त्री की प्रतिनिधि है जिसे संघर्ष की एक लंबी यात्रा तय करनी है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में चित्रित उन सभी स्त्री पात्रों के माध्यम से हम देख सकते हैं कि स्त्री के हिस्से केवल निराशा, बेबसी और हार आती है। विकास के तमाम नारों के बावजूद स्त्री शोषण आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है लेकिन इससे स्त्री थककर, हारकर और सहमकर पीछे नहीं हटती। अपनी अस्मिता और अपने अस्तित्व को दृढ़ करने के लिए बढ़ाए गए उसके कदम अब न थमेंगे, न लौटेंगे और न भावी खतरों से घबराकर आगे बढ़ना छोड़ेंगे।

संघर्ष जैसे स्त्री जीवन का पर्याय बन गया है। आज हमारे सामने अनेक जीवंत प्रमाण मौजूद हैं जहाँ स्त्री संघर्ष की ज्वाला के तपिश को अपने अंदर समेटे शोषण और अत्याचार के खिलाफ दृढ़ता के साथ लड़ ही नहीं रही, बल्कि संघर्ष की प्रेरणा बनकर समाज को दिशा भी प्रदान कर रही है। "धरती भी स्त्री, प्रकृति भी स्त्री, सरना माई भी स्त्री और उसके लिए लड़ाई लड़ती सत्यभामा, इरोम शर्मिला, सी.के. जानू, सुरेखा दलवी और यहाँ पाट में बुधनी दी और सहिया ललिता भी स्त्री। शायद स्त्री ही स्त्री की व्यथा समझती है। सीता की तरह धरती की बेटियाँ–धरती में समाने को तैयार।"[18]

'ग्लोबल गाँव के देवता' में दिखाई गईं ये स्त्रियाँ वर्तमान स्त्री के भविष्य का नक्शा तैयार कर रही हैं। इस नक्शे में कटु यथार्थ भी है, निराशा भी। निराशा के विरुद्ध संघर्ष भी। अँधेरा भी, अँधेरे के खिलाफ लड़ाई भी और चंद सवाल भी। दरअसल 'ग्लोबल गाँव के देवता' में सुदूर जनजातीय क्षेत्रों में घटता हुआ जो कुछ दिखाया जा रहा है, वह सब विकास की भूमंडलीकरण प्रेरित धारणा के चलते घट रहा है और हम देखते हैं कि इसमें सबसे परेशान जो वर्ग है, वह स्त्रियों का है। तो क्या भूमंडलीकरण भी विकास के नाम पर अंततः स्त्री के विरोध में खड़ा होगा? इस सवाल का उत्तर भूमंडलीकरण की वर्तमान प्रक्रिया की परिणिति से मिलेगा। अर्थात् इस सवाल के उत्तर में अभी देरी है, लेकिन इतना जरूर है कि स्त्री को चाहे वह किसी भी वर्ग की हो, परंपरागत ठेकेदारों के साथ ही भूमंडलीकरण के देवताओं से भी सावधान रहना होगा।

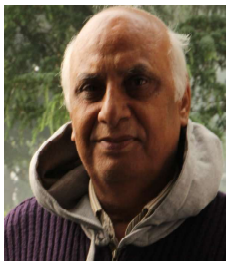
संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. उदारीकरण, भूमंडलीकरण एवं दलित, सं. अरुण कुमार रावत, पब्लिकेशंस, जयपुर, संस्करण 2009 ISBN : 81-316-0271-0, पृ-28
2. Globalization: Language Culture and Media, Editors- B.N. Patnaik- S. Imtiaz Hasnain, Chapter-2 page-no. 17] Indian Institute of Advanced Study, Shimla ISBN :81-7986-061-2
3. The Conscience Oxford Dictionary, 9th Edition, I Thomson Della, ISBN: 0-19-861320-2

4. The term globalization comes from English, as base of the word "globalization" which refers to the emerging of an international network, belonging to an economical and social system. Oxford English Dictionary Online. September 2009- http:èèdictionary.oed.com
5. "Globalization" is the process of the shrinking of the world, the shortening of distances and the closeness of things. It allows the increased interaction of any person on one part of the world to someone found on the other side of the world, in order to benefit". The Race to the Top: The Real Story of Globalization -Larsson, Thomas. Washington, D&C&: Cato Institute, 2001 p. 9. ISBN 978-1930865150
6. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली– डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2012, ISBN: 978–81–257–2207–5, पृ.358
7. हिंदी साहित्य इक्कीसवीं सदी चुनौतियाँ, सं–डॉ. कीर्ति केसर, नवजागरण प्रकाशन, दिल्ली–2002,पृ–31
8- The last decade or so has witnessed a growing concern about the phenomenon called globalization. It has become a source of anxiety in the academic world. Globalization language, culture - Media, Editor B-N- Paynaik, S Imtiaz Hasnain, page 1, Indian Institute of Advanced Study, Shimla-ISBN : 81-7986-061-2.
9. ग्लोबल गाँव के देवता– रणेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली– 2010, पृ–9, ISBN: 978–81–263–1905–3
10.हिंदी साहित्य इक्कीसवीं सदी चुनौतियाँ, सं–डॉ. कीर्ति केसर, नवजागरण प्रकाशन, दिल्ली–2002,पृ–32
11.उदारीकरण, भूमंडलीकरण एवं दलित–, सं. अरुण कुमार रावत, पब्लिकेशन्स, जयपुर–2009, पृ–157, ISBN : 81–316–0271–0
12.उदारीकरण, भूमंडलीकरण एवं दलित, सं. अरुण कुमार रावत, पब्लिकेशन्स जयपुर, संस्करण 2009, ISBN : 81–316–0271–0, पृ–59
13.ग्लोबल गाँव के देवता– रणेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली– 2010, पृ–25,
14. वही, पृ–39
15. वही, पृ–53
16. वही, पृ–57
17. वही, पृ–59
18. वही, पृ–92

❑❑❑

कस्मै देवाय हविषा विधेम



डॉ. राजेंद्र गौतम
पूर्व प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय

वेद–मंत्रों का विषय परम पिता परमात्मा की उपासना है। इनमें उस कर्त्ता ईश्वर का अनेक विशेषणों के माध्यम से मनुष्य से साक्षात्कार करवाया गया है। ऐसे मंत्रों में अनेक ऐसे संदेश निहित हैं जिनकी आज भी अत्यधिक प्रासंगिकता है, इसलिए इनकी विस्तृत व्याख्या भी उतनी ही प्रासंगिक है। यजुर्वेद का एक ऐसा ही मंत्र है।

ऊँ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

यह यजुर्वेद के पच्चीसवें अध्याय का तेरहवाँ मंत्र है। इसका अर्थ है– 'हे मनुष्यो, जो आत्मा को देने वाला है और जो बल को देने वाला है, जिसकी उत्तम शिक्षा की सब विद्वान लोग उपासना करते हैं, उसका सेवन करते हैं, जिसकी विश्व के सभी विद्वानों ने प्रशंसा की है, जिसके समीप से सब व्यवहार उत्पन्न होते हैं, जिसका आश्रय अमृत स्वरूप है, जिसकी आज्ञा का भंग या जिसकी विस्मृति मनुष्य के लिए मृत्यु स्वरूप है अर्थात् मृत्यु के समान दुःखदायी है, उस अत्यंत आनंदस्वरूप एवं स्तुति के योग्य परमात्मा के लिए हम सभी लोग हवन के उपयुक्त पदार्थों से सेवा अर्थात् भक्ति का विधान करें।"

इस अर्थ के वाहक शब्दों के अर्थों का विस्तार से किया गया विवेचन मंत्र के भाव को और स्पष्ट कर सकेगा। मंत्र का पहला शब्द है–"य'' जिसका अर्थ है – जो। यह "जो" कौन है जिसकी विशेषताएँ इस मंत्र में बताई गई हैं? वह है – परमात्मा अर्थात् ईश्वर। वह इतना ख्यात और ज्ञात है कि उसके किसी नाम को लिए बिना केवल "य" से उस परमात्मा की छवि ही हमारे मन में आती है। उसी एक का रूप हमारे प्रज्ञा–चक्षुओं के आगे उभरता है। उसी का ध्यान उपासक को होता है। दूसरा शब्द है–"आत्मदा"। प्रभु का मनुष्य पर असीम और अक्षय स्नेह है। उस परमात्मा ने ही हमें आत्मा प्रदान किया है, इसलिए वह आत्मदा है परंतु आत्मा तो सुगंध की तरह अमूर्त है, प्रकाश की तरह भाव–रूप है। भाव का एक धारक होता है। आत्मा का धारक यह

बल–युक्त शरीर है इसीलिए मंत्र का तीसरा शब्द "बलदा" उसी परमात्मा के विशेषण के रूप में आया है। "बल" धातु रूप में "प्राप्ति" अर्थ से संयुक्त हो बलयुक्त होने, जीवित रहने और धान्य को संचित करने का अर्थ देता है। ये क्रियाएँ भी अमूर्त आत्मा के आवास मूर्त शरीर से संबंधित हैं और यह बल शरीर का ही नहीं, आत्मा का भी है। बलवान आत्मा ही परमात्मा की उपासना में रत होता है। इस प्रकार यह सर्वांगीण बल का वाचक बनता है। मंत्र में आगे उसी परमात्मा के लिए "यस्य" शब्द आया है जिसका संबंध विश्व, देवा, उपासते और प्रशिष से है। विश्व क्या है? जिसमें हम सब प्रविष्ट होते हैं अर्थात् यह समस्त जगत। फिर इसके साथ आया है– "देवा"। इस शब्द का अर्थ है– दिव्य शक्ति वाले विद्वान या अप्रत्यक्ष रूप में पृथ्वी, अंतरिक्ष और स्थान में रहने वाले देवगण। "उपासते" का अर्थ है– उपासना करते हैं। उप का अर्थ है पास जाना। उपासना ईश्वर की आराधना की वह पद्धति है जो हमें उसके पास ले जाती है। इससे परमात्मा का सान्निध्य होता है।

मंत्र में आए शब्द "प्रशिषं" की दो अर्थगत दिशाएँ हैं। एक अर्थ है–प्रशंसा करना जिसके आधार पर मंत्र का अर्थ हुआ समस्त विश्व के दिव्य शक्ति वाले विद्वान एवं पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक के देवतागण जिसकी प्रशंसा करते हैं। 'प्रशिषं' का अर्थ प्रकृष्ट अथवा श्रेष्ठ, उत्तम शिक्षा भी है। इस अर्थ के आधार पर मंत्र और व्यापक होकर हमारे सम्मुख परमात्मा की विशेषताओं को रखता है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि समस्त विश्व के विद्वान उसकी उत्तम शिक्षा का सेवन करते हैं। मंत्र का अगला शब्द है– 'छायाऽमृतं'। छाया जो हमें आच्छादित करती है, सब ओर से आवृत्त कर लेती है, किसी भी विपत्ति का प्रवेश इस आच्छादन में नहीं होता अर्थात् जो हम सबका आश्रय है। निश्चित रूप से यह छाया सभी मृत्यु–कारकों का निवारण करती है, इसलिए अमृतमयी है, जीवन–दायिनी है। स्वयं जीवन का स्वरूप है, आनंद का स्वरूप है। ईश्वर के आश्रय से ही हम अमृतत्व प्राप्त करते हैं।

इसके बाद दो शब्द हैं–'यस्य मृत्युः'। ऊपर से आभासित होने वाला अर्थ है, जिससे मृत्यु का संबंध है। मृत्यु क्या है– विनाश, मरण के तुल्य, शोक या दुःख। कौन–सी स्थिति मृत्यु के समान है, दुःखमयी है अथवा विनाशवाचक है? ईश्वर की विस्मृति, उससे असंबद्ध होना, उसकी इच्छा अथवा आज्ञा के प्रतिकूल होना ही विनाशकारक, मृत्युवाचक है और दुःखदायी है अतएव 'यस्य मृत्युः' का अर्थ हुआ, जिससे विमुखता मरण समान दुःख को लाती है। इसके पश्चात् आया शब्द है – 'कस्मै'। यह शब्द भी व्यजंनामय है और बहुअर्थी भी। प्रश्नवाचक रूप में इसका अर्थ है– 'किसके लिए' परंतु 'कः' शब्द का अत्यंत आनंद का वाचक 'प्रभु' अर्थ भी है। इस मंत्र में कस्मै का अर्थ है–सुख रूप परमात्मा। इसी परमात्मा के विषय में एक और शब्द आया है–'देवाय', जिसका अर्थ है 'स्तुति के योग्य परमात्मा के लिए'। तदनंतर 'हविषा' शब्द है। हवन की सामग्री अथवा समिधा ही हविषा है। 'हु' धातु का अर्थ है,

देना या यज्ञ करना। हविषा क्या है ? अपनी आहुति है। यह एक समर्पण है। हार्दिक भावों का समर्पण है। श्रद्धा व प्रेम का अर्पण है। हविषा केवल पदार्थों का–द्रव्य का –'मैटर' का अर्पण नहीं है। यह तो परमात्मा के प्रति संपूर्ण हार्दिक समर्पण है इसीलिए मंत्र के अंत में आया है – विधेम। विधानपूर्वक, विधिपूर्वक पदार्थों के होमने की क्रिया का आदेशात्मक रूप है – विधेम। विधि धनात्मक शब्द है – इसका स्वरूप सकारात्मक है, रचनात्मक है, क्रियात्मक है। पूर्णता की ओर प्रस्थान है। इसलिए विधिपूर्वक यज्ञ की संपन्नता का अर्थ इस पूरे मंत्र में व्याप्त हो जाता है।

वेद–मंत्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें सदैव एक सत्य अर्थ की उपस्थिति रहती है। सत्य वह होता है जो कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा अर्थात् वह नित्य और शाश्वत होता है। इस मंत्र में भी ऐसा ही एक शाश्वत अर्थ है जिसका जीवन के हर क्षेत्र में महत्व है। चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो या साहित्य का या कोई अन्य। मंत्र कहता है कि हमें उस परमात्मा को आहुति देनी है, जो आत्मदा और बलदा है। शब्दों का क्रम ही बतलाता है कि मनुष्य के भीतर स्थित आत्मा का सर्वप्रथम स्थान है। शरीर या बल आत्मा का आवास है। इसलिए वह क्रम में बाद में आया है। कविता में शब्द प्रधान है या अर्थ? इसका निर्णय भी इसी धारणा से हो जाता है परंतु मनुष्य शरीर और आत्मा का समन्वित रूप है। जिस प्रकार शब्दार्थौ काव्य है, उसी प्रकार परमात्मा ने मनुष्य को आत्मा और बल दिया है। इस परमेश्वर का अस्तित्व ही जीवन की सबसे उत्तम शिक्षा का रूप है इसलिए 'प्रशिषं' के माध्यम से इस मंत्र में जीवन के लिए उत्तम शिक्षा के महत्व को भी बतलाया गया है। यों तो विद्यालयों में अनेक प्रकार की शिक्षा दी जाती है। पेट भरने के लिए उन शिक्षाओं का भी महत्व है पर वे जीवन की उच्चतम एवं आदर्श शिक्षाएँ नहीं हो सकतीं। हमें छात्रों को उस मूल तत्त्व का ज्ञान करवाना होगा जो आध्यात्मिक सत्य का उद्‌घाटन करते हैं। इस मंत्र का महत्व करुणा और दया की स्थापना में भी है। जीवन में करुणा का स्थान बहुत ऊँचा है और इस मंत्र में तीन संदर्भ ऐसे आए हैं जो प्रभु की, ईश्वर की करुणामयी मूर्ति को उभारते हैं। ईश्वर का जो रूप वेदों में निरूपित है, वह दया और ममता का तो है ही, मनुष्य के लिए ईश्वरत्व तक पहुँचने का जो मार्ग इनमें दिखलाया गया है, वह भी उन गुणों की प्राप्ति के द्वारा ही संभव है। मनुष्य को ईश्वर ने आत्मा और बल करुणा करने के लिए ही दिए हैं। अतएव उसका दाता रूप दयामय है, साथ ही वह 'छायाऽमृतं' है। ईश्वर अमृतरूपी आश्रय है। यहाँ भी ईश्वर की करुणा अभिव्यक्त हो रही है और दूसरे रूप में मनुष्य के आचरण को भी इतना ही ऊँचा उठाने की प्रेरणा दे रही है। करुण का तीसरा संकेत 'यस्य मृत्युः' में है। संसार में दुःख क्यों आते हैं? जीवन में क्लेश क्यों प्रधान बन जाता है? मनुष्य मनुष्य का शत्रु क्यों बनता है? हिंसा क्यों है? आतंकवाद का कलंक धरती पर क्यों है? रोग, शोक और महामारी क्यों है? इसका उत्तर भी इस मंत्र में है। हम सर्वसृष्टि में व्याप्त सभी आत्माओं के पिता

परमात्मा को जब भूल जाते हैं, जब उसके दिखलाए रास्ते पर चलने से मुँह मोड़ लेते हैं तो आदमी–आदमी के बीच भेद समझने लगते हैं। तब हमारे भीतर से करुणा का सागर सूख जाता है, हिंसा और घृणा तभी धरती के विनाश के कारण बनते हैं, जब हम उस ईश्वर की आज्ञा को भंग करते हैं। इसका तात्पर्य यही है कि जब हम परमात्मा तत्त्व को अनदेखा करते हैं, तभी संसार दुःखों का घर बनता है, पर जब मनुष्य आस्तिक सन्मार्ग पर चलता है, तब वह सुख एवं आनंदस्वरूप परमात्मा की स्तुति करता है। जीवन में भौतिक ज्ञान का महत्त्व है, मंत्र विद्या का अर्जन उपयोगी हो सकता है, परंतु यदि हम जीवन को मृत्युहीन अर्थात् दुःख–रहित बनाने की कामना करते हैं तो आओ, उस आत्मदा, बलदा, 'छायाऽमृतं' प्रशिषं परमात्मा को हवि देने का विधान करें। हम यदि पापमय आचरण करते हैं, यदि हम अपने ही सुख के बारे में सोचते हैं तो इसका एक कारण यह होता है कि हम जीवन की निरंतरता और शाश्वतता के प्रति आस्था खो देते हैं। यह मंत्र हमें ईश्वर के जिस रूप का दर्शन कराता है, उसकी एक विशेषता 'छायाऽमृतं' है। यहाँ अमृत का अर्थ शाश्वत भी है, कभी न समाप्त होने वाला भी है। जो कभी भी मृत नहीं होगा, वही अमृत है। यदि ईश्वर एक ऐसी अमृत छाया या आश्रय है तो पाप क्यों? हिंसा क्यों? परपीड़न क्यों? दुष्टता क्यों? क्यों न हम उस अमृत–छाया से आश्वस्त हो मानव–कल्याण के शाश्वत यज्ञ में आहुति डालें, समिधा अर्पित करें। साथ ही हम आत्मदा और बलदा के युग्मक सत्य को पहचानते हुए भाव और भाषा, पुष्प और गंध, ईश्वर और सृष्टि, सूर्य और प्रकाश, अग्नि और तेज, व्यक्ति और समाज के क्रमिक संबंध को जानें।

यजुर्वेद के अनेक मंत्रों में यज्ञ को सही ढंग से संपन्न करने का विधान है। ईश्वर की – उस ईश्वर की, जिसके गुण इसमें दर्शित हैं, उपासना करना ही हमारे जीवन को सार्थक बनाता है। अतएव यह मंत्र हमें यज्ञ से जोड़ता है। यज्ञ के वास्तविक रूप का उद्घाटन हमारे सामने करता है।

❑❑❑

भारतीय ज्ञान परंपरा और शिक्षा नीति



डॉ. एस.ए.मंजुनाथ
हिंदी विभागाध्यक्ष पोंपै कालेज, कर्नाटक

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम् ।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धन
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्धते ।।

ज्ञान अद्भुत धन है, ये आपको एक ऐसी अद्भुत खुशी देता है जो कभी समाप्त नहीं होती। जब कोई आपसे ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा लेकर आता है और आप उसकी मदद करते हैं तो आपका ज्ञान कई गुना बढ़ जाता है। शत्रु और आपको लूटने वाले भी इसे छीन नहीं पाएंगे, यहाँ तक कि यह इस दुनिया के समाप्त हो जाने पर भी ख़त्म नहीं होगी। ज्ञान (knowledge) का अर्थ जानना, अनुभव और बोध होना होता है। किसी चीज का रूप जैसा वह है, वैसा ही अनुभव होना ज्ञान है। ज्ञान एक तरह की मनोदशा है। जो जानने वाले के जेहन में होने वाली एक प्रकार की हलचल है। ज्ञान से चरित्र का निर्माण होता है। ज्ञान की वजह से हम अनुशासित होते हैं और ज्ञान अंधविश्वासों को दूर करता है। ज्ञानेंद्रियों से बौद्धिक अनुभव को ज्ञान कहते हैं। ज्ञान प्राप्ति के निमित्त बुद्धि का होना परम आवश्यक है। अतः स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष अनुभव, प्रायोगिक कौशल और जानकारी के द्वारा किसी तथ्य, तत्व अथवा वस्तु से परिचित होना ही ज्ञान है। पृथ्वी पर मनुष्य ही एकमात्र ऐसा चेतन प्राणी है, जो विचार, चिंतन, मनन, मंथन और अनुभव प्राप्त करने में समर्थ है जिसके आधार पर वह नए तथ्यों व तत्वों से अवगत होता है और ज्ञान प्राप्त करता है।

ज्ञान उत्पत्ति में दो प्रमुख पक्ष होते हैं–ज्ञाता और ज्ञेय। जब मनुष्य वस्तु एवं विचारों अर्थात् ज्ञातव्यों से परिचित हो जाता है तो ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ज्ञान ज्ञाता के ही इर्द–गिर्द घूमता है, अतः ज्ञाता के अभाव में ज्ञान का अस्तित्व संभव नहीं है। जब मनुष्य किसी वस्तु अथवा विचार को अनुभूति–बोध, विश्वास, तर्क और अनुभव के आधार पर स्वीकार कर लेता है तभी ज्ञान का सृजन होता है। इस क्रम के निरंतर चलते रहने से ज्ञान की वृद्धि होती है और नित्यप्रति ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नवीन

उपलब्धियाँ होती रहती हैं और उसी के साथ–साथ ज्ञान का विस्तार होता है। ज्ञान का विकास निरंतर होता रहता है। नवीन विचारों तथ्यों और सूचनाओं के आधार पर व्यावहारिक शोध का चक्र चलता रहता है, नवीन विषय क्षेत्रों का उदय होता है जो ज्ञान की उत्पत्ति में काफी सहायक होते हैं।

किसी चीज के बारे में सही और अच्छी जानकारी होना ज्ञान है। किसी भी विषय को पूर्ण रूप से समझना उसका अनुभव करना तथा वक्त आने पर उसका सही इस्तेमाल करना ही ज्ञान है। ज्ञान कहीं से भी, किसी से भी हासिल किया जा सकता है फिर चाहे सजीव से प्राप्त हो या निर्जीव से। किसी व्यक्ति का उचित ज्ञान ही उसे कामयाबी की राह तक ले जाता है। ज्ञानी बनने के लिए यह जरूरी नहीं कि कोई बड़ी डिग्री हो या आप महंगे स्कूल, कॉलेज में पढ़े हों। ज्ञान एक अवधारणा या सत्य के अलावा और कुछ नहीं है जिसकी सार्वभौमिक अपील है। जिस तरह से यह दुनिया भर में मौजूद है, इसमें मौजूदा अवधारणाओं को करने या लाने की एक जिम्मेदारी है। ज्ञान प्रासंगिक है और इसका पुनः उपयोग किया जा सकता है। इसे सीखने की प्रक्रियाओं के माध्यम से विकसित किया जाता है। स्मृति, पिछले अनुभव, विशेषज्ञता, ज्ञान हस्तांतरण तंत्र, अवसरों पर निर्भर करता है। ज्ञान उच्च शिक्षा को सक्षम बनाता है।

मनुष्य की जिंदगी में ज्ञान की बहुत अहमियत है। ज्ञान इंसान के लिए उसकी रीढ़ की हड्डी की तरह है। ज्ञान इंसान के लिए प्रकाश है जिसके बिना इंसान की जिंदगी में अंधकार ही अंधकार है। ज्ञान को इंसान की तीसरी आँख कहा जाता है। ज्ञान दौलत की तरह है जो जितना हासिल होता है उसे पाने की ख्वाहिश और होती है। ज्ञान की वजह से समाज को सुधारने में मदद मिलती है और अंधविश्वास दूर होता है। ज्ञान एक बहते दरिया के समान है। जिसको जितना खोजा जाता है उतना ही ज्यादा बढ़ता है जिसको जितना प्राप्त किया जाए, कम है। ज्ञान प्राप्ति की कोई सीमा नहीं है। लेकिन मनुष्य के ज्ञान को मुख्यतः तीन रूपों में बाँटा गया है।

प्रामाणिक ज्ञान

प्रामाणिक ज्ञान को science या matter का ज्ञान भी कहा जा सकता है जो physical matter के गुणों तथा विशेषताओं की बुनियाद पर होता है और इसकी सत्यता के प्रमाण मौजूद हैं। एक जैसी स्थिति में, एक जैसा काम एक ही जैसा परिणाम देता है।

आध्यात्मिक ज्ञान

इसके अंतर्गत मुख्यतः धार्मिक मान्यताएँ और भावनात्मक विषयों पर आधारित व्याख्याएँ सम्मिलित हैं। यह परिकल्पनाओं की बुनियाद पर होता है। यानि ऐसी बातें जिनका हकीकत में कोई भौतिक प्रमाण नहीं होता है, सिर्फ़ लक्षणों की बुनियाद पर होता है।

व्यावहारिक ज्ञान

व्यावहारिक ज्ञान खास तौर पर अनुभवों की बुनियाद पर होता है। इसकी बुनियाद पर परिस्थितियों और वक्त बीतने के साथ–साथ अलग–अलग स्रोतों से हासिल ज्ञान अलग–अलग तरह का होता है।

इंद्रिय अनुभव (Sense Experience), तर्क (Reasoning), तर्क बुद्धि (Rational Intelligence), शब्द या आप्तवचन (Verbal Testimony or Authority), श्रुति (Revelation, अंतः प्रज्ञा (Intuition), आस्था (Faith), प्रकृति (Nature) ये सभी ज्ञान के स्रोत हैं।

ज्ञान का लक्ष्य सूचना पाना ही नहीं होता। ज्ञान, विज्ञान और दर्शन में विश्व कल्याण की प्रतिभूति है। स्थूल और अति सूक्ष्म पदार्थों के अणुओं का अध्ययन प्राचीन काल से होता आया है। व्यक्त जगत के साथ अव्यक्त का ज्ञान भी पूर्वजों का प्रिय विषय रहा है । भारत में ऋग्वेद के रचना काल के पूर्व से ही लोकमंगल हितैषी ज्ञान परंपरा है। ऋग्वेद के ज्ञान सूक्त (10.71) में इसी परिस्थिति का उल्लेख मिलता है, 'प्रारंभिक दशा में पदार्थों का नाम रखा जाता है। यह ज्ञान का पहला चरण है। इनका दोष रहित ज्ञान पदार्थों का गुण, धर्म आदि अनुभूति की गुफा में छुपा रहता है और अंतः प्रेरणा से ही उद्भूत होता है।'

भारत में वैदिक काल ज्ञान–दर्शन का आरंभ काल है। जिज्ञासा और प्रश्न सशक्त ज्ञान उपकरण हैं। ज्ञान दर्शन की परंपरा को ऋग्वेद सहित चार वैदिक संहिताओं में विश्व की पहली ज्ञान सारिणी माना जाता है। फिर उत्तर वैदिक काल में उपनिषद दर्शन है। फिर 6 प्राचीन दर्शनों में जिज्ञासा व तर्क के साथ सत्य दर्शन है। यही ज्ञान परंपरा बुद्ध व जैन दर्शनों में सम्माननीय है।

ज्ञान प्रकट करने का प्रथम उपकरण है वाणी। वाणी का अनुशासन व्याकरण है। ज्ञान की इसी परंपरा में पाणिनि ने दुनिया का पहला व्याकरण लिखा है। यास्क द्वारा वैदिक भाषा के अनुशासन पर निरुक्त लिखा गया है। पतंजलि योगसूत्र व भाषा अनुशासन लिखते हैं। योग विज्ञान अंतरराष्ट्रीय है। लंदन के विद्वान एल. बाशम ने 'दि वंडर दैट वाज इंडिया' में भारतीय योग विज्ञान का विशेष उल्लेख किया था। कौटिल्य ने दुनिया का पहला अर्थशास्त्र लिखा है। आचार्य वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' लिखा।

भरतमुनि ने पहला नाट्यशास्त्र लिखा। इसी ज्ञान परंपरा में 'चरक' और 'सुश्रुत' संहिताएं आयुर्विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हुईं । पाणिनि, पतंजलि, कौटिल्य, वात्स्यायन, भरतमुनि, चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर आदि सभी विद्वान अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख करते हैं। वे अपने कथन को प्राचीन ज्ञान परंपरा से जोड़ते हैं। विज्ञान के विकास के लिए गणित का विशेष महत्व होता है। 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' में कहा गया है कि शून्य के अंक का आविष्कार संभवतः भारत ने किया था। शून्य और शून्य के स्थानगत मूल्यों की जानकारी वैदिक काल में थी। विवाह संस्था का

जन्म वैदिक काल में ही हुआ। प्राचीन काल में गीत, संगीत, चित्रकला और स्थापत्य सहित सभी ज्ञान–अनुशासन फल फूल रहे थे, लेकिन काल और परिस्थिति के प्रवाह में यह ज्ञान परंपरा टूट गई।

भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में नाटक को विश्व के लिए उपयोगी बताया था, 'यह नाट्य संसार में वेदों, विद्याओं और इतिहास की गाथाओं की परिकल्पना करने वाला लोगों के मनोविनोद का भी कर्त्ता होगा।' 'नाट्यशास्त्र' परिपूर्ण कला है। भरतमुनि ने कहा है कि इस नाट्य में समस्त लोकों का अनुकीर्तन होता है। भरतमुनि ने नाटक के अभिनय पक्ष की प्रशंसा की। यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने नाटक के अभिनय पक्ष पर ध्यान नहीं दिया। भरतमुनि ने संगीत और नृत्य परंपरा का भी उल्लेख किया है। यहाँ गीत संगीत आदि कलाओं के साथ नृत्य की भी परंपरा रही है।

'महाभारत' और 'रामायण' विश्व के प्रतिष्ठित महाकाव्य हैं। 'महाभारत' में अर्जुन अज्ञातवास के समय गीत, संगीत और नृत्य सीखते हैं। श्रीकृष्ण जैसा बांसुरी वादक देवता दुनिया की किसी भी सभ्यता–संस्कृति में नहीं मिलता। 'वाल्मीकि रामायण' में किष्किंधा नगरी में नृत्य का उल्लेख है। वैदिक काल से प्रारंभ ज्ञान परंपरा 'महाभारत', 'रामायण' में भी सांस्कृतिक निरंतरता में है। वैदिक काल में भारत में सभी कलाओं का विस्तार हो चुका था। भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में लिखा है कि नाटक में पाठ्य अंश 'ऋग्वेद' से आया है। गीतवाला अंश 'सामवेद' से व रसों को 'अथर्ववेद' से लिया गया है।

'नाट्यशास्त्र' में नारद व स्वाति के नाम हैं। स्वाति के विषय में लिखा है कि 'कमलपत्रों पर वर्षा की बूंदों से होने वाली धुन को सुनकर उनके मन में वाद्य निर्माण का विचार आया था।' भरत ने नाट्य और संगीत से जुड़े तमाम यंत्रों का उल्लेख किया है। गीत संगीत की चर्चा है। यह सब यूनानी दर्शन में नहीं मिलता। ऋषि सूर्योदय के पहले उषा देखते हैं। कहते हैं, 'उषाएँ शोभा और सौंदर्य प्रकट करती हैं। यह नित्य नवीन होती हैं।' भारतीय दर्शन में जो सुंदर है, वह सत्य है और जो सत्य है, वह शिव है। दार्शनिक प्लाटिनस ने सौंदर्य को रहस्यपूर्ण बताया था। योगी अरविंद ने यूरोपीय और भारतीय कला का भेद बताते हुए लिखा था, 'पश्चिमी मानस रूप के आकर्षण जाल में है। वह रूप सौंदर्य के कारण उसके प्रति आसक्त रहता है। भारतीय दृष्टि में रूप आत्मा का सृजन है।' सौंदर्य की भावना एकाग्रता लाती है। अभिनव गुप्त ने इसे बीत विघ्ना प्रतीति कहा। सुकरात ने सुंदर और शिव को एक बताया था। प्लेटो ने कहा कि सुंदर परम और पूर्ण है। सुंदर का नैतिक होना आवश्यक है।

हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली ने व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर ध्यान केंद्रित किया तथा विनम्रता, सच्चाई, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सम्मान जैसे मूल्यों पर बल दिया। यह प्रणाली वेदों और उपनिषदों के सिद्धांतों का पालन करते हुए तथा स्वयं, परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों को पूरा करते हुए शिक्षण एवं अधिगम जीवन के

सभी पहलुओं को शामिल करती है। भारत में शिक्षा का स्वरूप व्यावहारिकता को प्राप्त करने योग्य और जीवन में सहायक है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने प्राचीन भारत के गौरवशाली अतीत को मान्यता दी है। प्राचीन भारत के विद्वानों जैसे–चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, मैत्रेयी, गार्गी आदि के विचारों एवं कार्यों को वर्तमान पाठ्यक्रम में प्री–स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक शामिल करने की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। छात्र एवं शिक्षक शिक्षा व्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण अंग होते हैं, शायद यही कारण है कि एन.ई.पी. 2020 के आधारभूत सिद्धांतों में कहा गया है कि शैक्षिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इंसानों का विकास करना है जो तर्कसंगत विचार और कार्य करने में सक्षम हों, जिनमें करुणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मक कल्पनाशक्ति, नैतिक मूल्य और आधार हों। इसका उद्देश्य ऐसे उत्पादक लोगों को तैयार करना है जो कि अपने संविधान द्वारा परिकल्पित समावेशी और बहुलतावादी समाज के निर्माण में बेहतर तरीके से योगदान करें। अंग्रेजों एवं आक्रांताओं ने कई बार हमारे इस सुदृढ़ इतिहास को मिटाने एवं खंडित करने की कोशिश की, लेकिन हमारी बुनियाद इतनी मजबूत है कि हम आज भी सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास, सबका प्रयास विचारधारा को लेकर ही आगे बढ़ रहे हैं।

शिक्षक को समाज में पुनः प्रतिस्थापित करने के लिये एन.ई.पी.– 2020 में उल्लेख है कि शिक्षा की नई नीति को निश्चित तौर पर हर स्तर पर शिक्षकों को समाज के सर्वाधिक सम्मानीय और अनिवार्य सदस्य के रूप में पुनःस्थान देने में सहायता करनी होगी, क्योंकि शिक्षक ही नागरिकों की हमारी, अगली पीढ़ी को सही मायने में आकार देते हैं। व्यास, पाणिनि, पतंजलि, वाल्मीकि, कौटिल्य, वात्स्यायन, भरतमुनि, चरक, कालिदास, भर्तृहरि, भवभूति, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य, रामानंद, कबीर, सूर, तुलसी, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद जैसे विद्वानों के योगदान का अध्ययन हमें यह एहसास कराता है कि ज्ञान के क्षेत्र में भारत ने दुनिया को बहुत कुछ दिया है। मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में– संसार को पहले हमीं ने ज्ञान भिक्षा दान की, आचार की, व्यवहार की, व्यापार की, विज्ञान की। भारतीय ज्ञान परंपरा में ऐसी मूल्यपरक शिक्षा पर जोर दिया गया है जिसमें नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों के साथ मनुष्य का सर्वांगीण विकास हो सके।

संपूर्ण वैदिक–वाङ्मय, 'रामायण', 'महाभारत', 'पुराण', 'स्मृतिग्रंथ', 'दर्शन', धर्मग्रंथ, काव्य, नाटक, व्याकरण तथा ज्योतिष शास्त्र संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध होकर इनकी महिमा को बढ़ाते हैं जो भारतीय सभ्यता, संस्कृति की रक्षा करने में पूर्णतः सहायक सिद्ध होते हैं जिससे हमारी आने वाली पीढ़ियाँ भारतीय ज्ञान परंपरा की सुदृढ़ नींव पर उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकेंगी अर्थात् हमारी शिक्षा व्यवस्था में हमारे भारतीय मूल्यों और ज्ञान की स्पष्ट झलक दिखाई दे सकेगी। इसी उपक्रम में राष्ट्रीय मुक्त

विद्यालयी शिक्षा संस्थान (राष्ट्रीय बोर्डों में से एक) लगातार विभिन्न माध्यमों से ललित कला और संस्कृति की शिक्षा में निरंतर प्रयासरत है। यह कला एकीकरण को विभिन्न कार्यक्रमों में पाठ्येतर शैक्षणिक उपागम के रूप में प्रस्तुत करता है।

बदलते सामाजिक परिवेश और भारतीय मूल्यों के अंतर्द्वंद्व में हमारी शिक्षा व्यवस्था को समावेशी बनाना अत्यावश्यक है। यह समावेशी व्यवस्था भारतीय प्राचीन ज्ञान परंपरा को लिए बिना नहीं चल सकती क्योंकि एक तरफ तो हम आधुनिकता की दौड़ में सरपट भागे जा रहे हैं लेकिन अपनी संस्कृति में निहित ज्ञान विज्ञान परंपरा को भूलते जा रहे हैं।

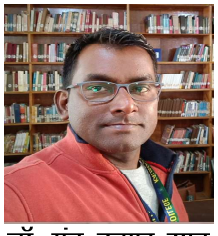
पाठ्यक्रमों में रामायण–महाकाव्यादि कथाएँ, भगवद्गीता, पाणिनि द्वारा प्रतिपादित माहेश्वरसूत्र, समरसलोक संग्रह, वैदिक भजन, विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र, शिक्षावल्ली, ब्रह्मवल्ली, भृगुवल्ली, ललितासहस्रनाम स्तोत्र आदि जैसे विषय शामिल हैं। इन विषयों का उद्देश्य शिक्षार्थियों को हमारी समृद्ध भारतीय संस्कृति के प्रति जागृत करना है। योग के विषय में पतंजलि योग सूत्र, सूर्य नमस्कार, आसन, प्राणायाम, क्रोध प्रबंधन अभ्यास, एकाग्रता और स्मृति विकास विषयक अभ्यास शामिल हैं। शिक्षार्थियों के समग्र विकास के साथ–साथ सभी के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए ये अभ्यास बहुत महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा के क्षेत्र में नवीन पाठ्यक्रमों के विकास के लिए विभिन्न गुरुकुलों/संस्थानों से प्रस्ताव भी आमंत्रित किए हैं। इन पाठ्यक्रमों का उद्देश्य शिक्षार्थियों को हमारी समृद्ध भारतीय संस्कृति से अवगत कराना और मूल्यों का विकास करना है। हमारे शिक्षार्थियों को 'योगः कर्मसु कौशलम' के दर्शन का ज्ञान देने के लिए योग विषय का पाठ्यक्रम भी उपलब्ध है। योग मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए प्रभावी है, क्योंकि यह 'विद्या' और 'अविद्या' के बीच स्पष्ट अंतर करते हुए निषेधात्मक मानसिक प्रवृत्ति से दूर करने तथा कर्म पर बल देता है। इस प्रकार हमारे देश के भविष्य का निर्माण करने वाली भावी पीढ़ी हेतु ये अभ्यास बहुत महत्वपूर्ण हैं।

भारत की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखना देश के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे देश की पहचान बनती है। अंतरराष्ट्रीय मंच पर इसके महत्व को समझते हुए तथा विदेश के साथ सांस्कृतिक संबंध विकसित करने के लिए एनआईओएस ने प्रवासी अध्ययन केंद्र स्थापित किया है। इसका लक्ष्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के आलोक में शांति, बहुलता और सार्वभौमिक बंधुत्व को बढ़ावा देना है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा को एक गत्यात्मक तथा व्यापक जीवन प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करते हुए भारत की गौरवशाली संस्कृति और परंपरा को स्थापित करेगा।

❑❑❑

उषाकिरण खान की कहानियाँ : लोक, समाज और संघर्ष



डॉ. मंटू कुमार साव
हिंदी विभाग, कलिंगपोंग कॉलेज

मैथिली और हिंदी भाषा–संस्कृति में समान विद्वत्ता और जुड़ाव रखने वाली वरिष्ठ कहानीकार उषाकिरण खान की रचनाशीलता ऐसे संक्रमण काल में सृजित होती हैं जब आधुनिकता के उतरोत्तर काल के आतंक से कहानी की भावभूमि में ग्रामीणता, देहातीपन और लोकगंध की अवधारणा गायब होनी शुरू हो गई थी। यहाँ तक कि कहानी की लोकधर्मिता में जनमन के अस्तित्व पर खतरा मंडराने लगा था। मनुष्यता के सारे मानदंड एक सिरे से ध्वस्त किए जाने लगे थे। स्वाधीन भारत में जीते हुए निचले तबके के लोग धर्म और जाति के चक्कर में पड़कर जंगली जीवन जीने के लिए मजबूर हो गए थे। ऐसे समय में उषाकिरण खान जी समाज के समसामयिक परिप्रेक्ष्यों को अपनी रचनाओं में प्रश्नों के साथ चिह्नित करती हैं। एक तरह से कहा जाए तो ग्रामीण लेखन के क्रम में रेणु–नागार्जुन के बाद उषाकिरण खान रचनाओं में एक नए ढंग से लिखने का दायित्व उठाती हैं। अपने समाज और देश से जुड़ाव के साथ उनकी समस्याओं को आत्मसात करके लेखन के माध्यम से अपनी आवाज को प्रशासन तक पहुँचाने का काम करती हैं। वास्तव में, इनकी कहानियों में मानवीय मूल्यों का संरक्षण, जीवनी शक्ति और सामाजिक–सांस्कृतिक नवनिर्माण की उत्कट हलचल है। इस विषय पर नागार्जुन लिखते हैं– "लिखो, तो लिखने लगी। बाबा ने लिखने का आदेश देने के साथ–साथ यह अच्छे से समझा दिया कि लेखक और उसके पात्रों की भाषा अलग–अलग होनी चाहिए। लेखक जब लिखे तो हिंदी में लिखे, पात्र अपनी भाषा बोले। पात्र अपने परिवेश और वातावरण के हिसाब से बोलेगा। उषा जी ने इस सीख को गाँठ बाँध लिया और अपने कथा लोक में इसका निर्वाह किया।" उषाकिरण जी ने अपनी लेखनी का लोकपथ चुना और उसी पथ पर आजीवन सृजन–कार्य करती रहीं।

उषा जी के यहाँ लोक के अनेक रंग हैं। ग्रामीण संवेदना का एक ऊर्जात्मक स्वरूप है। वह लोक की धड़कन को सुनती हैं, उसी क्रम में शब्दों को बुनती हैं। शब्दों के लहजे में सुख–दुःख बाँटती हैं। उनकी कहानियों में एक अलग किस्म की

वैचारिकी है जो लोक–जीवन के बनते–बिगड़ते संबंध, नर–नारी–मन की व्यथा और देहाती जीवन का ताना–बाना रेखांकित करती है। उनकी रचनाएँ जीवन–संघर्ष और जीवन–द्वंद्व की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है। अपनी कहानियों में प्रकृति के बदलाव के साथ मानवीय जीवन के बदलते घटनाक्रमों को बहुत ही सुंदर तरीके से शब्दों में पिरोती हैं। एक वाक्य में कहा जाए तो उनकी कहानियाँ मैथिल समाज की जनश्रुतियों का वह हिस्सा है जहाँ कहानियों में समाज की विविध कड़ियाँ दिखाई देती हैं जहाँ वह अपने साहित्य कर्म के लिए लेखन–संसाधन तैयार करती हैं। वास्तव में उनका लेखन उस भारतीय लोक परंपरा की अगली कड़ी है जहाँ का समाज गुलाम भारतीय समाज से लेकर आजाद भारत की परंपरा को लेकर आगे बढ़ता दिखता है। सच कहा जाए तो अंचल, देहात और लोक को एक साथ जोड़कर सृजन कर्म से जुड़ी उषा जी पहली महिला कहानीकार हैं जिनकी रचनाओं में कोशी के कच्छार से लेकर नगरीय जीवन के समस्त व्यथा–संघर्ष शामिल है।

उषाकिरण जी की कहानियों को बारीकी से समझने की कोशिश करेंगे तो आपको उनकी कहानियों में परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व दिखाई देगा। अपनी कहानियों में परंपराओं से विमुख हो रही संस्कृति के बीच परंपरा और यथार्थ के द्वंद्व और फिर परंपरा और यथार्थ की संस्कृति को एक रास्ते पर लाने की कोशिश भी है। आस्था और विश्वास, लक्ष्य और मूल्य, साधन और क्रिया में अतीत से वर्तमान तक चली आई निरंतरता की धाराओं को हम जिसे परंपरा कहते हैं, उसकी उपादेयता और उपयोगिता ही समय की परंपरा को परिलक्षित करती है। यह परंपरा ही है जो समाज की पहचान को जीवित रखती है। यही कारण है कि आज विकास की असफलताओं और आधुनिकीकरण की विकृतियों ने हमें अपनी जड़ों की ओर लौटने पर मजबूर किया है। इनकी एक कहानी 'अम्मां मेरे भैया को भेजो री, कि सावन आया' में रजिया एक डॉक्टर है और शहर में डॉक्टरी करती है लेकिन गाँव की यादें शहर की चकाचौंध और मुखौटे वाले जीवन में उनके लिए अमृत का काम करती हैं। मन में गाँव लौट जाने की इच्छा जागृत होती रहती है परंतु गाँव ने अब परिवर्तन की आँधी में अपनी सुंदरता को खो दिया है। अब खेतों से निकला हुआ अनाज पोलीथिन और डिब्बे में बंद होकर शहर के बड़े–बड़े मॉल में सजने लगा है। स्वार्थ ने गाँव को केवल उगाही का केंद्र बनाकर रख दिया है। जितना शोषण हो, किया जाने लगा है। जितना निचोड़ा जाए, उससे ज्यादा निचोड़ा जाने लगा है। आज नेता ही नहीं बल्कि आम जन भी गाँव की कीचड़ में दुर्गंध देखने लगे हैं। आज गाँव सिर्फ कागज में विकसित हुआ है। अकाल और बाढ़ गाँव के लिए उसकी नियति बन गई है। कोशी नदी हर बार अपनी विनाश लीला से सबको निगलने को आतुर रहती है। सिर्फ सड़कें बना देने से बाढ़ की विभीषिका को दूर नहीं किया जा सकता है। गाँव के लोग जब पढ़–लिख लेते हैं तो वो गाँव में रहना नहीं चाहते हैं और न ही गाँव की उन्नति के बारे में सोचते हैं कि

गाँव को गाँव की ही शक्ल में उन्नत कैसे किया जाए। आज मनुष्य कितना ही आधुनिक क्यों न हो जाए, मशीनी संस्कृति में कितना भी सुख तलाश ले, पर सुकून उनको अपनी जड़ से जुड़कर ही मिलता है। आज मोबाइल संस्कृति ने 'नानी की कहानी' वाली संस्कृति को खा लिया है। 'संस्कृति का कल्पतरु' आज बड़ी–बड़ी अट्टालिकाओं ने छिपा लिया हैं। 'आँखें स्निग्ध तरल और बहुरंगी मन' चमचमाते शॉपिंग मॉल में गुम हो गया है। आज 'रतनारे नयन' की मासूमियत को ब्यूटी पार्लर का ग्रहण लग गया है। यही कारण है उनकी कहानियाँ हमें शहर से गाँव की ओर जाने के लिए बाध्य करती हैं। उनकी आंचलिक कहानियाँ हमारे अंदर प्रेम, परंपरा और समर्पण की सोंधी खुशबू से मन को स्पंदित करती हैं।

आज का समय व्यक्तिनिष्ठता और स्वार्थपरता का है। यह प्रवृत्ति केवल शहर में ही नहीं बल्कि गाँव–गाँव में भी अपना पैर पसार चुकी है। खोखलापन, अमानवीयता और संवेदनारहित समाज आज शून्यता, यांत्रिकता का शिकार बन बैठा है। यह तर्कहीन समाज आज जातिगत भेदभाव, आपसी वैमनस्य और सांप्रदायिक–सामुदायिक प्रपंच में फंसकर रह गया है। आज गाँव इस प्रपंच से बच नहीं पा रहा है। ऐसे समय में उषाकिरण खान अपनी कहानियों में भारतीय समाज विशेषकर मिथिलांचलीय समाज का वह दर्पण पेश करती हैं जहाँ मध्यकालीन समय से लेकर 21वीं सदी के समाज के विविध पक्षों का चित्रण है। उनकी कहानियों में एक तरफ पीड़ा है तो दूसरी तरफ संघर्ष का सौंदर्य है। एक तरफ समाज की स्वार्थपरता है, वहीं उससे बचने के लिए मानवता की उच्चतम पराकाष्ठा भी है। एक तरफ शोषण–शोषित का विकराल रूप है तो दूसरी तरफ ग्राम–जीवन, माटी–पानी, श्रम से लिप्त सपने, जीवन से जुड़ी मान्यताएँ–परंपराएँ भी हैं जो उषा जी की कहानियों में एक तरह से संवेदनात्मक ज्ञान का विस्तार करती नजर आती हैं। "अंचल के प्रति प्रेम और विश्वास ही उषा की कहानियों में आस्था का रसायन है और यह बाबा नागार्जुन के सान्निध्य का ही परिणाम है। यह सच है कि मिथिला में उषा जी की आत्मा निवास करती है, जिसकी परिणति कथा के रूप में होती है। उनके यहाँ मैथिल संस्कृति ही विस्तृत होकर लोक–संस्कृति का हिस्सा बन जाती है।"[2] उनकी पहली कहानी 1978 में 'आँखें स्निग्ध तरल और बहुरंगी मन' नाम से प्रकाशित हुई थी। उसके बाद आईं 'जलकुम्भी', 'नीलकंठ', 'कुमुदिनी' आदि असंख्य कहानियाँ जो मिथिला की प्रकृति और संस्कृति से जुड़ी हुई हैं। उनकी एक कहानी है– 'गाँव को गाँव ही रहने दो'। इस कहानी के अंत में कहती हैं कि 'परिवर्तन हो पर गाँव को गाँव ही रहने देना'। वास्तव में आज हम जो भौगोलिक परिवर्तन देख रहे हैं। इस परिवर्तन में व्यक्तिनिष्ठा और स्वार्थपरता का मुलम्मा चढ़ा हुआ है जहाँ सिर्फ मुनाफा देखा जाता है। आज इस परिवर्तन की अंधी आँधी के कारण उषा जी के कई गंवई सपने टूटते दिख रहे हैं। मुनाफे की होड़, वोट की राजनीति और नगरीकरण की सभ्यता ने अनगिनत गाँवों की आहुति दे डाली

है। वास्तव में, मूल्यहीनता, अमानवीयता के बीच मानवता के प्रति अटूट आस्था को बचाने की ललक उषा जी की कहानियों में पल रही लोकभूमि का अभिन्न अंग है।

उषाकिरण खान किसानी–ग्रामवासी मानसिकता वाली कहानीकार हैं। उनकी कहानियों में मुख्य रूप से ग्रामीण जीवन के दुख–सुख, इच्छा–आकांक्षा, श्रम–संघर्ष, गीत–व्यवहार बहुत ही सुंदर तरीके से देख सकते हैं। उनकी सबसे बड़ी खासियत यही है कि वे ग्रामीण जीवन के प्रत्येक पड़ाव को बारीकी से देखते–समझती हैं और उसको लेखनी में जगह देती हैं। वास्तव में नागार्जुन–रेणु की तरह ही उषा जी के मन में एक गाँव बसता है, साथ ही साथ वे एक तरह से गाँव के दर्द, बेचैनी और संघर्ष की साक्षी भी रही हैं। 'दूब–धान' कहानी में उषा जी की ग्रामीण संवेदना उभरकर सामने आती है। इस कहानी की प्रमुख पात्र केतकी के माध्यम से लेखिका ग्रामीण–देहाती स्मृतियों को टटोलने का प्रयास करती हैं। इस कहानी में एक तरफ जहाँ सामूहिक जीवन–दर्शन के प्रति समर्पण का भाव है, वहीं दूसरी तरफ गाँव की माटी की सोंधी खुशबू के प्रति आकर्षण भी है। इस कहानी में केतकी गाँव और शहर के बीच बढ़ रही दूरी को कम करना चाहती है क्योंकि आज जिस तरह से लोग विस्थापित होकर शहर में समाते जा रहे हैं, गाँव की सारी लोकधर्मिता शहरी सभ्यता में तब्दील होती जा रही है। ऐसे समय में केतकी गाँव की प्रकृति और संस्कृति को बचाए रखने के अथक प्रयास में लगी रहती है। केतकी बार–बार अपनी भाभी से कहती रहती है– "भाभी गाँव में कोई समारोह करिए, काफी दिन हो गए। तो भाभी ने उत्तर दिया था– गाँव में सड़कें बन रही हैं, घर तैयार हो रहे हैं। फिर देखूंगी।"[3] शहरी मानवकृत नीति के आगे गाँव की दीवानी केतकी का हर प्रयास विफल हो जाता है। आज वैश्विक गाँव की चमकती दुनिया में कितनी ही केतकी ने अपने गाँव को तिलांजलि दे दी है, कहा नहीं जा सकता। आज गाँव से पलायन और शहर में बसना एक फैशन–सा बन गया है। आज गाँव की सामाजिकता, सामूहिकता को शहर के एकाकीपन ने निगल लिया है और आमजन इसलिए खुश भी है, वो शहरी बनते जा रहे हैं। यही कारण है कि केतकी बच्चों की छुट्टियों में भले ही दुनिया घूम लेती है परंतु संतोष का अनुभव नहीं कर पाती। आज केतकी कंक्रीट सभ्यता में रहते हुए कोशी की मिटटी, पानी, कोर–कछार को अपने जेहन से निकाल नहीं पाती। इसी कहानी में आगे के क्रम में जब केतकी भाभी के बेटे के जनेऊ में शामिल होने गाँव जाती है तो उसे गाँव का सारा सौंदर्य बेरंग सा लगता है। गाँव की भाषा–बोलियों, गीत और लोककथाओं में आधुनिकता की सेंधमारी हो चुकी है। संवेदनाओं में खोखलापन जान पड़ रहा था। इस रूप को देखकर स्तब्ध रह जाती है और मांगलिक कार्यक्रम के खत्म होने और शहर लौट जाने के लिए आतुर हो जाती है। निराशा हाथ में लेकर लौटती केतकी के चेहरे पर आशा की किरण तब फूटती है जब एक मुस्लिम स्त्री सबुजनी बड़ी आत्मीयता से केतकी का स्वागत एक ब्याही बेटी की माँ की तरह

करती है– "अच्छा हुआ! ग्राम समाज को देखने आ गई। तू बिना माँ की बेटी हम सबकी बेटी। अरे कहाँ गई सुलेमान की कनिया, जरा सोना–सिंदूर ले आ, केतकी की मांग भरे। एक चुटकी धान–दूब ले आ, खोइंछा भर दे।"[4] यह दृश्य केतकी के आँखों से भावनात्मक आँसू को आह्लादित करने के लिए काफी था। इस कहानी की दोनों पात्र–सबुजनी और केतकी समाज के जाति–भेद और सांप्रदायिक कुरीतियों पर मनुष्यता की भावभूमि को स्थापित करती है जो लोक परंपरा का अभिन्न अंग है।

उषाकिरण खान की कहानियों में वर्ग–संघर्ष ज्यादा देखने को मिलता है। 'मौसम का दर्द' कहानी इस संघर्ष को बहुत ही सुंदर तरीके से उभारने का प्रयास करती हैं। आधुनिकता की आँधी ने आज गाँव में पूंजीवादी संस्कृति को ला दिया है। इस संस्कृति ने मानवता के स्थान पर स्वार्थ की संस्कृति को ज्यादा प्रश्रय दिया है। अब गाँव में हर जाति अपने अधीनस्थ एक निचली जाति खोज लेती है और अपने को वर्चस्ववादी नजरिये से देखना शुरू कर लेती है। यहीं से वर्ग–संघर्ष की तांडव लीला शुरू हो जाती है जो गाँव की सामाजिकता को नष्ट कर वर्चस्ववादी शक्तियों पर बल देने लगती है। इस कहानी के नायक इंजीनियर बाबू और नायिका आड़हुलिया के बीच जन्म ले रहा प्रेम इसी संघर्ष का शिकार बन जाता है। उषा जी की कहानियों पर लिखते हुए रामचंद्र तिवारी लक्षित करते हैं– "आपकी कहानियों में वर्ग–संघर्ष के साथ आंचलिकता का स्पर्श अवश्य है, किंतु इस आंचलिकता की लोक–गंध ने आपको आधुनिक जीवन की अंधी अमानवीय व्यावसायिक दौड़ से जूझने और मनुष्यता के कोमल तत्वों को बचाए रखने की शक्ति प्रदान की है।"[5] आधुनिक मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त अमानवीयता और मूल्यहीनता के इस दौर में मनुष्यता के प्रति अटूट आस्था ही उषाकिरण खान की विशिष्ट पहचान और शक्ति है। विशिष्ट पहचान इसलिए भी है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में शिक्षित–अशिक्षित, सभी जातियों, वर्ग और धर्म के लोगों की त्रासदी और संघर्ष की जीवंत गाथा की प्रस्तुति की है। 'मौसम का दर्द' कहानी की तर्ज पर उनकी एक कहानी है– 'विषतंतु'। यहाँ लेखिका कहती हैं कि "आधुनिक समाज तब तक इतना उदार न हो पाया था कि किसी स्त्री को उस हद तक स्वीकार करता।"[6] आज भी स्त्रियाँ अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए संघर्ष करती नजर आती हैं। आज समाज जिस तरह पाश्विकता के चंगुल में फँसकर मानवता को नष्ट करने पर तुला है। ऐसे समय में 'विषतंतु' की नायिका सुलोचना आगे बढ़कर अपने संकल्प के लिए संघर्ष करती नजर आती है। उषा जी अपनी कहानी में अपने विचार को रखते हुए कहती हैं कि 'सुलोचना; जिसका आश्रम खोलने के बाद समाज को एक सही दिशा में लाना ही एकमात्र उद्देश्य नहीं था बल्कि वह समाज में ही मानवीयता और पाश्विकता के बीच बढ़ रहे फाँक को भी बखूबी दिखाने का प्रयास करती हैं।'

स्त्री अस्मिता की कसौटी में उषा जी की कहानियों को देखेंगे तो पाएँगे कि वे कितने संतुलित और भावपूर्ण पात्रों के माध्यम से स्त्री संघर्ष और अपने आप को बचाने की जद्दोजहद को रेखांकित करती हैं। उनके स्त्री पात्रों में न तो बुद्धिवाद का अतिक्रमण है और न ही संवेदनात्मक मूर्खता। 'स्त्री को समाज में किस नजरिये से देखा जाता है और समाज एक स्त्री के प्रति किस तरह से दायित्व का निर्वाह करता है, आदि प्रश्नों को सामने रखकर उषा जी समाज से जवाब माँगती हैं कि "अकेली स्त्रियों की समाज में क्या व्यवस्था है, उनका क्या मूल्य है? यह प्रश्न शाश्वत है। तलाकशुदा, अविवाहित और विधवा स्त्री प्रश्न–चिन्ह है।"[8] उषा जी इस प्रश्न के खिलाफ अपनी कहानी 'पाथर मन' में स्त्री के विद्रोहात्मक स्वर को बुलंद करती हैं। भले ही कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो स्त्री आर्थिक रूप से स्वावलंबन की आस न ही रखती है और न ही आर्थिक बंटवारे की बात करती है परंतु जब पितृसत्ता और मर्दवाद उनके ऊपर हावी होने लगता है तब वह अपनी इज्जत, स्वावलंबन और आत्मसम्मान के कारण विद्रोह करना अपना नैतिक कर्म बना लेती है। वास्तव में हिंदी साहित्य में महिलाओं को अब तक समानता का अधिकार नहीं मिला है, जबकि रचना जगत में महिलाएँ लगातार अपने सृजनकर्म से अपनी उपस्थिति दर्ज कर रही हैं। उषा जी दुखी मन से कहती हैं कि "समय पर महिला कभी भी स्थिर नहीं रहती, जैसे 'विषतंतु' कहानी में पात्र सुलोचना कहती है मेरी प्रतिष्ठा दाँव पर है।"[9] 'पाखंड पर्व' और 'उमा महेश' जैसी कई कहानियाँ हैं जहाँ एक वृद्ध पात्र 'रुकिया' पंचायत में अपने बुलंद सत्य–साहसी उपस्थिति से परिवार के प्रति अपने उत्कट समर्पण को दिखाती है और अपने बेटे और पतोहू को समाज के कुकर्म जाल से बचाने का प्रयास भी करती है। वह भले ही शारीरिक रूप से वृद्ध है परंतु मानसिक रूप से अपने परिवार के लिए दृढ़ता से डटी रहती है। वह कहती है– "मार–डाल, बेटा को सिखा–पढ़ाकर चोर–उचक्का बना दिया। पतोहू को सब मिलकर भोग लगाते हो। नहीं–नहीं मैंने किसी समय सुंदर बाबू को अपने घर–आंगन में नहीं देखा"।[10] आज भले ही हमारी नजरों में एक वृद्ध का जीवन लाचारगी और बेबसी भरा हो, परंतु जीवन की तमाम कुरूपताओं और विद्रूपताओं से संघर्ष करती हुई उषा जी की कहानियों में जो वृद्ध पात्र आए हैं, वे सब के सब जिजीविषा के उत्तुंग साहस से भरे हुए हैं। वहीं दूसरी तरफ उमा पति के बगैर अपने परिवार का दृढ़ता से भरण पोषण पूर्ण करने की सक्षमता प्रदर्शित करती है। भले ही बार–बार बेटी जन्म देने के कारण उसका शराबी पति बाल खींचकर पिटाई करता है–" चुड़ैल, कमीनी, मादर ... तरह तरह की गाली देता है। ... कहता है कि मादर ... तुम एक बेटा नहीं जन्मा सकती, ... कौन यह समझाए कि किस संपत्ति का वारिस पैदा होना है, इसी मजदूरी और शराब की लत का? समझाने बैठा है कौन? उमा की चौथी संतान बेटा हुआ। महेश ने बड़ा जश्न किया। कर्ज लेकर पार्टी की। साल भर भी नहीं गुजरा कि एक और बेटी आ गई।"[11] समाज में

उमा–महेश जैसे पात्र भरे पड़े हैं जिनका यथार्थ चित्रण उषा जी की कहानियों में देखने को मिलता है। जहाँ परिवार का मर्द निष्क्रिय हो जाता है वहाँ स्त्री दृढ़ता के साथ अपने दायित्व का पालन करती नजर आती है। उषा जी अपने स्त्री पात्रों के माध्यम से यह दिखाने पर बल देती हैं कि यह भ्रम न पालें कि स्त्रियाँ सिर्फ बच्चे जन्म देने भर की मशीन हैं। वास्तव में, उषा जी की कहानियों में स्त्री की शक्ति और सामर्थ्य की अद्‌भुत पड़ताल की गई है। उनकी अपनी मान्यता है कि 'भारतीय समाज को बचाना है, समाज को स्वस्थ और संवेदनशील बनाना है तो हमें स्त्रियों को अधिक से अधिक शिक्षित और सक्षम बनाना होगा।' इनकी कहानियों में भारतीय ग्रामीण समाज की शक्तिशाली स्त्रियों से हमारा साक्षात्कार होता है जो बाकी दलित–दमित स्त्रियों के लिए एक मॉडल तैयार करती हैं।

उषा जी की कहानियाँ गाँव में पल रही रूढ़ियों, अंधविश्वासों और कुरीतियों से लड़ती हुई एक आदर्श और नैतिक समाज के निर्माण की पक्षधरता पर बात करती हैं। साहित्य और समाज का अविच्छिन्न संबंध होने के कारण समाज में जो भी घटनाएँ घटती हैं वे सभी साहित्य में अंकित होती हैं। साहित्य का स्तंभ सामाजिक वातावरण की नींव पर खड़ा है। समकालीन समाज के सारे रीति–नीति–कर्म–धर्म समाज की लोकधर्मिता को निर्धारित करते हैं। 'रामचरितमानस' इसका सफल उदाहरण है जो आज भी अंधकार में डूबे लोगों को पथ प्रदर्शक का काम करती है। 'कौस्तुभ स्तंभ, 'बाकी का काम अख़बार वाले कर देते हैं' जैसी कहानियों में राजनेता और मीडिया वाले समाज में आपसी सौहार्द को सांप्रदायिकता में तब्दील करने में लगे रहते हैं। ऐसे समय में उषा जी धार्मिक सहिष्णुतास्वरूप मिथिला परंपरा को सामने लाते हुए कहानी में लिखती हैं कि "याद आता है कि कैसे इस्लाम धर्म मानते हुए सबुजनी जितिया और छठ करती थी।"[12] वास्तव में उषा जी आज ऐसे समाज की परिकल्पना पर जोर देती हैं जहाँ हिंदू हो या मुस्लिम, दोनों एक दूसरे के पर्व–त्योहार में स्वच्छ मन से शरीक हों, धर्म विशेष से ऊपर उठाकर मनुष्य मात्र को जीवन का अभिन्न अंग बनाकर चले। आदर्श समाज की परिकल्पना के दर्ज पर उषा जी 'आकाँक्षाओं के दीप' कहानी में गाँव–समाज को समावेशिक समाज बनाने पर बल देती हैं जहाँ सभी धर्म–जाति–भाषा के लोग सभी के सुख–दुःख में सम्मिलित हों और सभी के मन में सभी के प्रति समर्पण का भाव रहे।

अंततः उषाकिरण खान जी अपनी कहानियों में सबसे महत्वपूर्ण बल मानवता की संस्कृति पर देती हैं। भावप्रवणता और संवेदना इनकी कहानियों में चित्रित मानवतावादी दृष्टिकोण की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी हैं। मिथिला में जन्मी उषा जी की कहानियों में मिथिला की मिट्‌टी की सुगंध व्याप्त है। उनका जड़ से जुड़ाव ही कहानी में आत्मीयता की जमीन को तैयार करने के लिए बल देता है। आज के संवेदनहीन समाज में उषाकिरण खान की कहानियों का महत्व और प्रासंगिकता और भी ज्यादा

बढ़ गई है क्योंकि आज जब बाजार द्वारा चलाए गए विघटनवादी, स्वार्थपरायण समाज में इंसान की मासूमियत को बचाना एक संकट–सा बन गया है, ऐसे समय में उषा जी जीवन के कई प्रसंगों को अपनी कहानियों में समाहित कर उसकी सार्थकता को तलाश करती नजर आती हैं। वास्तव में उनकी कहानियों में संस्कार है जो हमें अपनी परंपरा के प्रति समर्पण की भावना को जिंदा रखने में बल देता है।

संदर्भ–

1. गीताश्री, उषाकिरण खान–किस्सों की खान, प्रलेक प्रकाशन, मुंबई, 2020, पृष्ठ–5
2. कुमार वरुण सं, उषा हिंडोला– उषाकिरण खान का रचना संसार, अमन प्रकाशन, कानपुर–2019, पृष्ठ–12
3. वही, पृष्ठ–50
4. गोपाल राय, उषाकिरण खान की संकलित कहानियाँ, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ– 59
5. कुमार वरुण सं, उषा हिंडोला– उषाकिरण खान का रचना संसार, अमन प्रकाशन, कानपुर–2019, पृष्ठ–162
6. उषाकिरण खान, उषाकिरण खान की लोकप्रिय कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ–13
7. गोपाल राय, उषाकिरण खान की संकलित कहानियाँ, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–73
8. छबिल मेहेर कुमार, उषाकिरण खान, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृष्ठ–21
9. गोपाल राय, उषाकिरण खान की संकलित कहानियाँ, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–3
10. उषाकिरण खान, उषाकिरण खान की लोकप्रिय कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ–17
11. वही, पृष्ठ–53

❑❑❑

ब्रिटिश उपनिवेशवाद और प्रेस नियंत्रण कानून



डॉ. गजेंद्र पाठक
प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय



डॉ. वर्षा कुमारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय

यह एक आकस्मिक संयोग मात्र नहीं है कि भारत के पहले समाचार पत्र को ही ईस्ट इंडिया कंपनी के क्रूर दमन चक्र का शिकार होना पड़ा था। वह भी तब, जब उस पत्र के संपादक स्वयं आयरिश थे। 29 जनवरी 1780 ई. को जेम्स ऑगस्टस हिकी ने 'बंगाल गजट' की शुरुआत की थी। इस साप्ताहिक अखबार के संदर्भ में हिकी ने स्वयं स्वीकार किया था कि "मुझे अखबार छापने का विशेष चाव नहीं है न मुझमें इसकी योग्यता है। कठिन परिश्रम करना मेरे स्वभाव में नहीं है। तब भी मुझे अपने शरीर को कष्ट देना स्वीकार है ताकि मैं मन और आत्मा की स्वाधीनता प्राप्त कर सकूँ।"[1]

मन और आत्मा की स्वाधीनता के जिस मंगलाचरण के साथ जेम्स ऑगस्टस हिकी ने भारत में पत्रकारिता की आधारशिला रखी, वह गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स को रास नहीं आई जिसकी वजह से इस अखबार पर तरह–तरह के हथकंडों द्वारा संपादक को प्रताड़ित किया गया और अंततः प्रकाशन के दो साल पूरा होने से पहले ही उसे बंद करने के लिए मजबूर किया गया। भारत में पत्रकारिता की ऐसी शुरुआत इस बात का साक्ष्य है कि आगे चलकर पत्रकारिता का जिस प्रकार से विकास और विस्तार हुआ, उसे ब्रिटिश शासन के कड़े कानूनों का सामना करना पड़ा। 13 मई 1799 को लॉर्ड वेलेजली ने समाचार पत्रों के प्रसार और प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए एक कानून पारित किया था। इस कानून के अनुसार–

1. प्रत्येक समाचार पत्र के मुद्रक के लिए पत्र के अंत में अपना नाम प्रकाशित करना अनिवार्य होगा।
2. संपादक तथा संचालक के लिए अपने नाम और पते की सूचना सरकार के सचिव को देना अनिवार्य होगा।
3. रविवार को कोई पत्र प्रकाशित नहीं होगा।

4. जब तक सरकार का सचिव निरीक्षण न कर ले तब तक कोई पत्र प्रकाशित नहीं किया जाएगा।
5. जो उपरोक्त नियमों की अवहेलना करेगा उसे तत्काल देश से निष्कासित कर दिया जाएगा।''[2]

कलकत्ता जर्नल' के संपादक डॉ. जेम्स ब्राइस के द्वारा प्रतिबंध के कानूनों का कड़ा विरोध करने के कारण लॉर्ड हेस्टिंग्स ने 1818 ई. में सेंसरशिप कानूनों को शिथिल कर दिया था। इसके बावजूद ब्रिटिश सरकार के नीतिगत फैसलों के खिलाफ कुछ भी प्रकाशित करने की मनाही थी। सन् 1823 ई. में जब कार्यवाहक गवर्नर जनरल के रूप में जॉन एडम भारत आए तो उन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता को कंपनी के शासन के लिए एक बहुत बड़े खतरे के रूप में देखा। अखबार और प्रेस के लिए लाइसेंस की अनिवार्यता की गई। जॉन एडम मद्रास के गवर्नर टामस मुनरो के उस विचार से प्रेरित और प्रभावित थे जो स्वतंत्र प्रेस को प्रथमतः और अंततः कंपनी और ब्रिटिश हितों के प्रतिकूल मानते थे। टामस मुनरो का यह मानना था कि, "भारतीयों को प्रेस की आजादी देना खतरनाक है। विदेशी शासन और समाचारपत्रों की स्वतंत्रता दोनों एक साथ नहीं चल सकते। स्वतंत्र प्रेस का पहला कर्तव्य क्या होगा? यही न कि देश को विदेशी चंगुल से स्वतंत्र कराया जाए? इसलिए अगर भारत में प्रेस को स्वतंत्रता दे दी गई तो इसका जो फल होगा, वह दिखाई दे रहा है। आंग्ल शासक सदैव भारत को अंधकार में रखना चाहते थे।''[3]

कठोर प्रेस सेंसरशिप के इस वातावरण में द्वारकानाथ टैगोर, प्रसून कुमार टैगोर, हूरचंदर घोष और राजा राममोहन राय ने ईस्ट इंडिया कंपनी के हुक्मरानों के समक्ष एक याचिका दाखिल की जिसे भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में 'ऐरियोपैगिटिका'[4] के नाम से जाना जाता है। स्वाभाविक था कि यह याचिका अस्वीकृत होनी थी और हुई भी। इसके प्रत्युत्तर में राजा राममोहन राय की अपील थी कि ''यदि इस देश की विशेष परिस्थितियों से निकाले गए इन निष्कर्षों से यह तर्क उपस्थित किया जाए कि किसी उपनिवेश या दूरवर्ती अधीन प्रदेश को कभी प्रेस स्वातंत्र्य नहीं दिया जा सकता तथा इसीलिए बंगाल के निवासियों को उन विशेष अधिकारों के प्रयोग की अनुमति नहीं दी जा सकती जिनका उपयोग वे अब तक कर रहे थे, तो दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है उनसे यह कहना होगा कि उन्हें निरंतर उत्पीड़न एवं अपमान सहन करने का ऐसा शाप दिया गया है जिससे मुक्त होने की वे तब तक आशा नहीं कर सकते जब तक यहाँ ब्रिटिश शासन मौजूद है। यदि श्रीमान की राजभक्त प्रजा क्षण भर के लिए यह भी सोचे कि ब्रिटिश राष्ट्र केवल स्वार्थपूर्ण नीति से प्रेरित होकर, भारत को एकमात्र बहुमूल्य संपत्ति समझता है तथा उस पर अधिकार जमाए रखने एवं उससे पूरा लाभ उठाने के सर्वोत्तम साधनों के अलावा और किसी चीज की परवाह नहीं करता, तब भी

उसके नौकरों द्वारा उसकी भली प्रकार देखभाल होना आवश्यक है। इसीलिए शासक और शासित दोनों के लिए स्वतंत्र प्रेस की सत्ता भी उतनी ही आवश्यक है।"[5]

राजा राममोहन राय की यह अपील भी कंपनी के हुकूमत को रास नहीं आई और उनके द्वारा प्रकाशित 'मिरात–उल–अख़बार'[6] को प्रतिबंधित कर दिया गया। इस अखबार के अंतिम संस्करण में राजा राममोहन राय ने जो पत्र लिखा था, वह भी प्रेस प्रतिबंध के सिलसिले में एक यादगार टिप्पणी है ''जो परिस्थिति उत्पन्न हो गई है उसमें पत्र का प्रकाशन रोक देना ही एकमात्र मार्ग रह गया है। जो नियम बने हैं उनके अनुसार किसी यूरोपियन सज्जन के लिए, जिनकी पहुँच सरकार के चीफ सेक्रेटरी तक सरलता से हो जाती है, सरकार से लाइसेंस लेकर पत्र निकाल देना आसान है पर भारत के किसी निवासी के लिए जो सरकारी भवन की देहरी लाँघने में भी समर्थ नहीं हो पाता, पत्र–प्रकाशन के लिए सरकारी आज्ञा प्राप्त करना दुष्कर कार्य हो गया है। फिर खुली अदालत में हलफनामा दाखिल करना भी कम अपमानजनक नहीं है। लाइसेंस के लिए जान का खतरा भी सदा सिर पर झूला करता है। ऐसी दशा में पत्र का प्रकाशन रोक देना ही उचित है।''[7]

भारतीय पत्रकारिता पर ईस्ट इंडिया कंपनी की पहरेदारी सिर्फ इन्हीं कानूनों तक सीमित नहीं रही बल्कि 1823 के जॉन एडम्स के कानून के बाद 1835 में गवर्नर जनरल मेटकाफ़ ने भी एक अध्यादेश जारी किया। 1857 के विद्रोह के दमन के लिए जैसे क्रूरतापूर्वक कदम उठाए गए, उसकी आग और धुएँ से ही नहीं हवा से भी भय हो गया। पत्रकारिता संबंधी लाइसेंस परवर्ती कठोरतम नियम इसी पृष्ठभूमि की देन हैं।

ईस्ट इंडिया कंपनी को स्वतंत्र प्रेस से जिस प्रकार का भय था वह महारानी विक्टोरिया के ब्रिटेन में भी कम नहीं हुआ बल्कि बढ़ गया। 1867 का प्रेस पंजीकरण अधिनियम, 1878 का वर्नाकुलर प्रेस अधिनियम, 1908 का Incitement of offences (Newspaper) और 1910 का भारतीय प्रेस कानून इस बात का प्रमाण है। भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों पर ब्रिटिश सरकार की क्रूर दृष्टि 1857 के विद्रोह के बाद से ही पड़ी हुई थी। जिन भारतीय भाषाओं को लॉर्ड मैकाले अजायबघर की वस्तु समझते थे, उन्हीं भारतीय भाषाओं में काम करने वाले लेखकों– संपादकों ने ब्रिटिश हुक्मरानों की नींद उड़ा दी थी। इसलिए 1878 के वर्नाकुलर प्रेस अधिनियम के द्वारा जिलाधिकारी को अखबार के मुद्रक और प्रकाशक को न सिर्फ नियंत्रित करने के असीमित अधिकार दिए गए बल्कि उन्हें प्रताड़ित, अपमानित और जब चाहे प्रतिबंधित करने के तुगलकी अधिकार दे दिए गए। ऊपर से इस बात का भी प्रावधान किया गया कि जिलाधिकारी के आदेश को किसी अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती थी। 1908 का जो कानून था उसके अनुसार किसी भी दंडाधिकारी को यह अधिकार था कि आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित करने के आरोप में वह किसी भी मुद्रक और

प्रकाशक की संपत्ति जब्त कर सकता था, और उस पर हत्या, हिंसा और राष्ट्रद्रोही गतिविधि में शामिल होने की सजा सुना सकता था। 1910 के भारतीय प्रेस कानून के तहत 1878 के वर्नाकुलर प्रेस कानून को दोबारा मजबूती प्रदान करते हुए हर अखबार और पत्रिका के संपादक–मुद्रक से एक बांड के जरिए यह सुनिश्चित करने का प्रावधान किया गया कि सभी प्रकाशनों की न्यूनतम दो प्रतियाँ स्थानीय प्रशासन को अनिवार्य रूप से उपलब्ध करानी होंगी।

प्रेस की स्थापना

अगर देखा जाए तो भारत में पत्रकारिता पर शासकीय अंकुश और दबाव पत्रकारिता के जन्म के साथ–साथ ही प्रारंभ हो गया था। शुरू में इन विदेशी शासकों के कृत्यों का शिकार बनते सबसे पहले विदेशियों द्वारा प्रकाशित पत्र–पत्रिकाओं को ही देखा गया। इसी कारण स्वतंत्र भारतीय प्रेस को अंग्रेजों ने अपने लिए और भी खतरनाक समझा और उसे खत्म करने के लिए एक विशेष कानून पारित किया।

भारत में ईसाई मिशनरियों ने प्रेस की स्थापना की थी, परंतु मुगल दरबारों में नियुक्त कातिबों द्वारा प्रेस के विकास का विरोध किया गया।[8] पत्रकारिता के इतिहासकार डॉ. एन. कृष्णमूर्ति के अनुसार छपाई कला का श्री गणेश 6 सितंबर 1556 को गोवा में किया गया और 1557 में भारत में पहली पुस्तक 'दौत्रिना क्राइस्टा'(Doutrina Christa) का प्रकाशन ईसाई मिशनरियों द्वारा किया गया। इसके लेखक सेंट फ्रांसिस जेवियर थे। इसी पुस्तक का 1578 में तमिल में प्रकाशन किया गया था।

प्रेस के लिए सरकारी कानून

सेंसरशिप प्रेस अधिनियम, 1799 ई.

लॉर्ड वेलेजली द्वारा अधिनियमित यह अधिनियम 1799 में पारित किया गया था। इस अधिनियम के दौरान पूर्व–सेंसरशिप सहित युद्धकालीन प्रतिबंध लगाए गए थे। फ्रांसीसी आक्रमण के भय से लार्ड वेलेजली ने इसे लागू किया था तथा सभी समाचार–पत्रों पर सेंसर लगा दिया गया था। इस अधिनियम के द्वारा सभी समाचार–पत्रों के लिए यह आवश्यक कर दिया गया था कि वे अपने स्वामी, संपादक और मुद्रक का नाम स्पष्ट रूप से समाचार–पत्र में अंकित करें। इसके अतिरिक्त प्रकाशन के पूर्व सरकार के सचिव के पास पूर्व–पत्रेक्षण के लिए समाचार–पत्रों को भेजना अनिवार्य बना दिया गया।

लाइसेंसिंग विनियम, 1823 ई.

प्रतिक्रियावादी गवर्नर–जनरल जॉन एडम्स ने 1823 ई. में इन नियमों को लागू किया। इस नियम के अनुसार बिना अनुज्ञप्ति लिए प्रेस की स्थापना या उसका उपयोग दंडनीय अपराध माना गया। ये नियम मुख्यतः उन समाचार–पत्रों के विरुद्ध आरोपित किए गए थे जो या तो भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होते थे या जिनके स्वामी भारतीय

थे। इस नियम के तहत ही राजा राममोहन राय की पत्रिका 'मिरात–उल–अखबार' का प्रकाशन बंद करना पड़ा।

इस विनियम के अनुसार बिना लाइसेंस के प्रेस संचालित करना दंडनीय अपराध था। यह प्रतिबंध भारतीय भाषा के समाचार पत्रों तथा भारतीयों द्वारा संपादित समाचार पत्रों के लिए था।

प्रेस या मेटकाफ अधिनियम, 1835 ई.

कार्यवाहक गवर्नर–जनरल चार्ल्स मेटकॉफ ने भारतीय प्रेस के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया था तथा 1823 ई. के कुत्सित अनुज्ञप्ति नियमों को रद्द कर दिया। इस प्रयास के लिए ही मेटकॉफ को भारतीय समाचार–पत्रों के मुक्तिदाता की संज्ञा दी गयी थी। 1835 ई. के इस नए प्रेस अधिनियम के अनुसार, प्रकाशक या मुद्रक को केवल प्रकाशन के स्थान की निश्चित सूचना ही सरकार को देनी थी और वह आसानी से अपना कार्य कर सकता था। यह कानून 1856 ई. तक चलता रहा तथा इस अवधि में देश में समाचार–पत्रों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

लाइसेंस अधिनियम, 1857 ई.

1857 ई. के विद्रोह से उत्पन्न हुई आपातकालीन स्थिति से निपटने के लिए 1857 ई. के अनुज्ञप्ति अधिनियम से अनुज्ञप्ति व्यवस्था पुनः लागू कर दी गई। इस अधिनियम के तहत बिना अनुज्ञप्ति के मुद्रणालय रखना और उसका प्रयोग करना अवैध घोषित कर दिया गया। सरकार को यह अधिकार दे दिया गया कि वह किसी समाचार–पत्र को किसी समय अनुज्ञप्ति दे सकती थी या उसकी अनुज्ञप्ति को रद्द कर सकती थी। अधिनियम द्वारा सरकार को यह अधिकार भी दिया गया कि वह समाचार–पत्र के साथ ही किसी पुस्तक, पत्रिका, जर्नल या अन्य प्रकाशित सामग्री पर प्रतिबंध लगा सकती थी। यद्यपि यह एक संकटकालीन अधिनियम था तथा इसकी अवधि केवल एक वर्ष थी।

पंजीकरण अधिनियम, 1867 ई.

कोई भी समाचार पत्र या पुस्तक इसके प्रावधानों का पालन किए बिना मुद्रित या प्रकाशित नहीं की जा सकती। इसके साथ ही यह अनिवार्य है कि समाचार पत्र प्रकाशित करने से पहले क्षेत्रीय जिलाधीश, प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट या सबडिवीजन मजिस्ट्रेट के सामने घोषणा–पत्र प्रस्तुत किया जाए। इनमें से किसी संबद्ध अधिकारी द्वारा अधिप्रमाणित किए जाने के बगैर आरंभ नहीं किया जा सकता है और यदि प्रकाशन इस कानून के अनुसार नहीं किया गया तो घोषणा पत्र को रद्द किया जाएगा। यह अधिनियम भारत का सबसे प्राचीन कानून है जिसमें समय–समय पर परिस्थिति अनुसार इसे संशोधित किया जा सकता है। इस अधिनियम के प्रावधानों को हम यहाँ देख लेते हैं।

1. यह अधिनियम विधि स्थानीय विस्तार अधिनियम 1874 (1874का 15) की धारा 3 द्वारा अनुसूचित जिलों के अलावा भारत के सभी प्रदेशों में लागू किए जाने के लिए घोषित किया गया। 1962 के विनियम सं.12 की धारा 3 के अंतर्गत और अनुसूची के माध्यम से गोवा, दमन और दीव को 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा (1/7/1965)से दादरा व नागर हवेली को और 1963 की विनियम सं. 7 की धारा 3 और अनुसूची 1 द्वारा (1/10/1963 से) पांडिचेरी पर इसका विस्तार किया गया।
2. 1951 की अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची 1 द्वारा भाग ख राज्यों के सिवाय पूरे भारत के स्थान पर प्रतिस्थापित।
3. 1955 के अधिनियम सं.55 की धारा 2 द्वारा (1/7/1956) अंतः स्थापित।[10]

प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1867 अपने वर्तमान रूप में पाँच भागों में विभाजित है। प्रथम भाग परिचयात्मक है जिसमें विभिन्न पद नामों की परिभाषाएँ दी गई हैं। द्वितीय भाग में छापेखानों और समाचार पत्रों के संबंध में उपबंध हैं। तृतीय भाग में कानून के उल्लंघन पर दिए जाने वाले दंड का उल्लेख है। चौथा भाग पुस्तकों के और पाँचवाँ समाचार पत्रों के पंजीकरण की व्यवस्था से संबद्ध है।[11]

वर्नाकुलर प्रेस एक्ट, 1878 ई.

1878 ई. में वर्नाकुलर प्रेस एक्ट बना जो भारतीय भाषाओं के समाचार–पत्रों में प्रकाशित विद्रोह पूर्ण लेखन को रोकने तथा दंडात्मक नियमों से संबंधित था। इसी के माध्यम से सरकार को न्यायालय की स्वीकृति के बिना छापेखाने में प्रवेश एवं उनकी जांच के लिए वारंट प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो गया। कोई प्रकाशक या मुद्रक जिसके विरुद्ध ऐसी कार्यवाही की गई है वह मामले को न्यायालय में नहीं ले जा सकता था। 1881 ई. में इसे व्यापक विरोध के पश्चात समाप्त कर दिया गया था।[12] इस अधिनियम के अंतर्गत सैकड़ों पत्र–पत्रिकाओं को जब्त किया गया। प्रेसों में ताले लटका दिए गए। इसके मुख्य प्रावधान थे –

1. जिला दंडनायकों (District magistrate) को यह अधिकार दिया गया था कि वे स्थानीय सरकार की आज्ञानुसार किसी भी भारतीय भाषा के समाचार–पत्र के प्रकाशक या मुद्रक को बुलाकर बंधन–पत्र (Bond) पर हस्ताक्षर करने के लिये कह सकते हैं। इस बंधन–पत्र में यह प्रावधान था कि ये प्रकाशक या मुद्रक ऐसी कोई भी सामग्री प्रकाशित नहीं करेंगे जिससे सरकार के विरुद्ध असंतोष भड़केगा।
2. दंडनायक का निर्णय अंतिम होगा तथा उसके विरुद्ध किसी प्रकार की अपील की अनुमति नहीं होगी।
3. देशी भाषा का कोई समाचार–पत्र यदि इस अधिनियम की कार्यवाही से बचना चाहे तो उसे पहले से अपने पत्र की एक प्रमाण प्रति सरकारी पत्रेक्षण को देनी होगी।

इस अधिनियम का सबसे घृणित पक्ष यह था कि–

• इसके द्वारा अंग्रेजी एवं देशी भाषा के समाचार–पत्रों के मध्य भेदभाव किया गया था।

• इसमें अपील करने का कोई अधिकार नहीं था।

भारतीय प्रेस अधिनियम, 1910 ई.

इस अधिनियम को उपद्रवों से निपटने के लिए लागू किया गया था। इसके अंतर्गत मुद्रक से 1000 से लेकर ₹10000 तक जमानत देने के लिए कहा गया था। इस राशि को लेने का अधिकार सिर्फ मजिस्ट्रेट को था। प्रेस द्वारा किसी भी आपत्तिजनक सामग्री की छपाई के कारण पंजीकरण को रद्द किया जा सकता था। इस अधिनियम के तहत 355 समाचार पत्रों या मुद्रणालयों को चेतावनी दी गई थी और लगभग 300 पत्रों से 40,000 पाउंड की राशि जमानत के रूप में वसूली गई थी। डॉ. सुशीला अग्रवाल के सर्वेक्षण के अनुसार हम देख सकते हैं कि पत्रों पर इतने प्रहार होने के बाद भी सामाजिक, राजनीतिक जागरण के फलस्वरूप पत्रकारिता में तीव्र गति से वृद्धि हुई थी। "1891 में पंजाब से 74 पत्र निकलते थे जबकि 1911 में उनकी संख्या 229 हो गई। उत्तर प्रदेश में पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन में प्रगति हुई। 1901 में जहाँ उर्दू के 71 पत्र थे वे एक दशक में ही 122 हो गए। 1911 में हिंदी की 87 पत्र–पत्रिकाएँ थीं जबकि 1901 में मात्र 26 थी।[13]

इंडियन प्रेस एक्ट, 1931

इस अधिनियम के द्वारा भारत सरकार ने सविनय अवज्ञा आंदोलन के प्रचार और प्रसार को दबाने के लिए प्रांतीय सरकारों को विशेष संकटकालीन शक्तियाँ प्रदान कीं। द्वितीय विश्व युद्ध में, 1931 में भारतीय प्रेस अधिनियम के तहत पूर्व–सेंसरशिप को सुदृढ़ और संशोधित किया गया था। इस अधिनियम की धारा 4 के अनुसार वे सभी गतिविधियाँ प्रतिबंधित कर दी गईं जिनसे सरकार की प्रभुसत्ता को हानि पहुँचाई जा सकती थी। इस अधिनियम के तहत कांग्रेस और उसकी गतिविधियों को अवैध घोषित किया गया था।

प्रो. एन. जेराल्ड बैरियर ने ब्रिटिश भारत में बने प्रेस कानूनों और उनके दूरगामी परिणामों पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने इस बात को रेखांकित किया है कि किस प्रकार स्वयं ब्रिटिश ब्यूरोक्रेसी के अंदर इन कानूनों को लागू करने को लेकर अनेक प्रकार के अंतर्विरोध थे और सबसे बड़ी चिंता इस बात को लेकर थी कि सरकार की छवि स्थानीय जनता के बीच किस तरह से दिखाई जाए और इस छवि की प्रतिछाया लंदन में किस तरह से प्रस्तुत हो। अखबारों, पत्रिकाओं और साहित्य को प्रतिबंधित करने की पूरी कवायद साफ–सुथरी छवि निर्मित करने की थी और यह एक कमजोर रस्सी पर एक कलाकार के संतुलन के जोख़िम जैसा था। 'भारत में अंग्रेजी राज' नामक पंडित सुंदरलाल की किताब को जिस तरह से प्रतिबंधित किया गया, उसके

बारे में यह बात प्रसिद्ध है कि कोर्ट में जब वकील ने किताब के पक्ष में बहस करते हुए यह कहा कि इसमें एक भी बात असत्य नहीं है तब अंग्रेज न्यायाधीश ने जो टिप्पणी की थी वह यही थी कि दरअसल यही कारण है कि इस किताब को प्रतिबंधित किया जा रहा है। ब्रिटिश हुक्मरान समकालीन कटु सत्य का गला घोटने के लिए किस तरह बेचैन थे, उस बेचैनी के हजारों साक्ष्य प्रतिबंधित पत्रकारिता के अध्ययन के सिलसिले में दिखाई पड़ते हैं। सच बोलना और उस सच के पक्ष में जान की कुर्बानी देकर भी खड़ा रहना औपनिवेशिक काल की प्रतिबंधित पत्रकारिता का वह पक्ष है जो भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में सदैव मशाल की तरह मार्गदर्शक की भूमिका निभाएगा।

संदर्भ सूची :–

1. अर्जुन तिवारी– हिंदी पत्रकारिता का बृहद् इतिहास, पृ–69
2. अर्जुन तिवारी– हिंदी पत्रकारिता का बृहद् इतिहास, पृ–70
3. हेमेंद्र प्रसाद घोष : द न्यूज पेपर इन इंडिया, पृ–38
4. 'एरियोपैगिटिका' भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के सिद्धांत के इतिहास के सबसे प्रभावशाली और भावपूर्ण दार्शनिक बचावों में से एक है जो लाइसेंसिंग और सेंसरशिप के विरोध में लिखा गया था। इसे प्रेस की स्वतंत्रता की अब तक लिखी गई सबसे स्पष्ट रक्षाओं में से एक माना जाता है क्योंकि इसके कई व्यक्त सिद्धांत उस अधिकार के आधुनिक औचित्य का आधार बनते हैं।
5. सौम्येन्द्रनाथ ठाकुर– राजा राममोहन राय, पृ–134
6. हिंदी शीर्षक– समाचार का दर्पण
7. अर्जुन तिवारी– हिंदी पत्रकारिता का बृहद् इतिहास, पृ–74
8. एस. नटराजन, ए हिस्ट्री आफ दी प्रेस इन इंडियाः एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, अध्याय1, पृ–3
9. डॉ. नादिग, इंडियन जर्नलिज्म, पृ–9–10
10. ऋतेश अनुपम, पत्रकारिता एवं प्रेस कानून, पृ–112
11. नन्दकिशोर त्रिखा–प्रेस विधि, पृ–16
12. ऋतेश अनुपम, पत्रकारिता एवं प्रेस कानून, पृ–26
13. अर्जुन तिवारी, हिंदी पत्रकारिता का बृहद् इतिहास,–पृ–143
14. N- Gerald Barrier & Banned Controversial Literature and Political Control In British India 1907-1947, Manohar Publication, New Delhi

❑❑❑

पृथ्वीराज रासो में कनवज्ज समय के षट्ऋतु वर्णन का औचित्य



डॉ. उषा शर्मा

प्रवक्ता, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

कनवज्ज समय पृथ्वीराज रासो का वह समय दर्शाता है जहाँ पर महाकवि की वाणी शत–सहस्र भावधाराओं में फूट कर द्विगुणित रूप से प्रवाहित हुई है। यहाँ पर प्रेम, आलाप, सुख, विलास की वह मनोरम झाँकी देखने को मिलती है जो संयोग, वियोग, शृंगार की मादकता को प्रकट करती है तो दूसरी ओर आगे चलकर करुण रस की व्यंजना को घनीभूत करती है। इस प्रकार कनवज्ज समय विविध भाव–सरणियों और विचारधाराओं का उद्‌गम बिंदु है। कनवज्ज समय का प्रारंभ पृथ्वीराज की श्रोतानुराग से उत्पन्न विरह दशा द्वारा किया गया है। कन्नौज प्रस्थान से पूर्व राजन अपने परम मित्र व राजकवि चंदबरदाई से मंत्रणा करते हैं कि वे क्या विधि अपनाएँ जिससे कन्नौज की राजकुमारी संयोगिता का वरण कर सके। तत्पश्चात् कवि द्वारा उनको एक साधारण मनुष्य की तरह राजकुमारी संयोगिता के नगर जाने की युक्ति सुझाई गई। तब महाराज अपनी पूर्व रानियों से प्रस्थान की अनुमति प्राप्त करना चाहते हैं तो रानियों द्वारा ऋतुओं का सहारा लेकर अपनी विरह वेदना का बखान किया जाता है। रानियाँ छह ऋतुओं के माध्यम से राजा का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करती हैं।

'पृथ्वीराज रासो' के अतिरिक्त भी अनेकों महाकाव्यों और रचनाओं में ऋतुओं का वर्णन किया गया है। प्रकृति प्रेम तथा प्रकृति के माध्यम से प्रिया और प्रियतम द्वारा अपने अरमानों और अभिलाषाओं को व्यक्त करना ही भारतीय साहित्यकारों का उद्‌देश्य रहा है। प्रकृति वर्णन में अक्सर विभिन्न ऋतुओं का वर्णन देखने को मिलता है। भारत तो ऋतुओं का देश कहा जाता है। भारत में ग्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु, शरद ऋतु, हेमंत ऋतु, शिशिर ऋतु व वसंत ऋतु मिलाकर कुल छह ऋतुएँ होती हैं। इन ऋतुओं का समय दो–दो महीने होता है। हिंदी तिथि के अनुसार वैशाख व जेठ का महीना ग्रीष्म ऋतु कहलाता है। वर्षा ऋतु का आषाढ़ व सावन का महीना होता है। शरद ऋतु का भाद्र व आश्विन का महीना होता है। हेमंत ऋतु कार्तिक व अगहन तथा

शिशिर का महीना पूस व माघ का महीना होता है। फाल्गुन व चैत्र का महीना वसंत ऋतु का महीना होता है।

ग्रीष्म ऋतु अपने नाम के अनुसार गर्म व तपन से भरी हुई मानी जाती है। इस ऋतु में रातें छोटी तथा दिन लंबे होते हैं। ग्रीष्म ऋतु के समाप्त होते ही वर्षा ऋतु अपनी बौछारों के साथ प्रवेश करती है। वर्षा की बौछारें धरती माँ को शीतलता प्रदान करती हैं। यह ऋतु प्रेमियों के लिए मस्ती भरी होती है। वहीं किसानों और खेतों के लिए खुशहाली लाती है। यह ऋतु प्रेम व रस की अभिव्यक्ति के लिए अच्छी मानी जाती है। वर्षा ऋतु के जाते–जाते शरद ऋतु अपना प्रभाव दिखाना प्रारंभ कर देती है। करवा चौथ, नवरात्रि, दशहरा, दीपावली आदि त्यौहारों का तांता लग जाता है। इस ऋतु में दिन छोटे होने लगते हैं। शरद ऋतु के तुरंत बाद ही हेमंत ऋतु अपना रूप दिखाती है। सर्दी बढ़ने लगती है और दिन और छोटे होने लगते हैं। हेमंत ऋतु के समाप्त होने पर शिशिर ऋतु का प्रकोप आरंभ हो जाता है। कड़ाके की ठंड पड़ने लगती है। लोगों की सुबह–शाम की दिनचर्या प्रभावित होने लगती है। अत्यधिक ठंड से जन जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। परंतु धूप का असली आनंद इसी ऋतु में आता है। शिशिर ऋतु के जाते ही सबके दरवाजों पर वसंत ऋतु दस्तक देने लगती है। इस ऋतु का वातावरण मोहक, रमणीय होता है। यह ऋतु रसिकों की ऋतु कहलाती है। प्राकृतिक आभा इसी ऋतु में अपने चरम सौंदर्य पर देखी जा सकती है अर्थात् भारत की छह ऋतुएँ अपनी–अपनी विशेषता रखते हुए मन मोहने का प्रयत्न करती रहती हैं। इसी कारण से कवियों और साहित्यकारों की इन ऋतुओं में विशेष रुचि रहती है। इनको माध्यम बना मनुष्य ही नहीं, पशु–पक्षियों के चरित्र का भी रचनाकार लुभावना दृश्य प्रस्तुत करते हैं। महाकवि चंदबरदाई ने भी अपने महाग्रंथ पृथ्वीराज रासो में कनवज्ज समय का उल्लेख करते हुए षट्ऋतुओं का बड़ा ही आकर्षक व दिल मोहने वाला तथा रानियों की विरह व्यथा को व्यक्त करने वाला एक मंजर दिखाया है जो कि बरबस ही महाराज तथा अन्य रानियों को प्रभावित कर जाता है।

कनवज्ज समय 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य का एक विरह संवेदना और प्रणययुक्त महत्वपूर्ण अंश है। इसमें जयचंद की पुत्री संयोगिता और पृथ्वीराज के प्रति उनके प्रणय और पृथ्वीराज के कन्नौज प्रस्थान की और संयोगिता के हरण की कथा आई है। कनवज्ज समय में कवि ने शृंगार, युद्ध तथा प्रकृति का सुंदर वर्णन किया है। पृथ्वीराज रासो एक चरित महाकाव्य है जिसमें पृथ्वीराज चौहान के विवाह, युद्ध, शब्दभेदी बाण से लेकर मृत्यु तक का वर्णन किया गया है। पृथ्वीराज रासो में कनवज्ज समय का वर्णन अत्यधिक महत्व रखता है क्योंकि यह उस युग के ऐतिहासिक संदर्भ और सांस्कृतिक महत्व को बहुमूल्य अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य है जिसमें कनवज्ज समय का विस्तृत व भावपूर्ण वर्णन किया गया है।

कवि चंदबरदाई प्रकृति वर्णन में महारथ रखते हैं। कनवज्ज समय के षट्–ऋतु का वर्णन बहुत ही सुंदर तरीके से प्रस्तुत किया गया है। वे प्रकृति का ऐसा चित्रण करते हैं कि उससे पात्रों की तत्कालीन मनःस्थिति का चित्रण स्वतः हो जाता है। कैमास अंधेरी रात में कर्णाती के साथ केली–विलास में निमग्न है, घोर अंधकार है, अंधकारपूर्ण रात में पृथ्वी घनघोर वर्षा से नहा गई है। इस प्रकार के कनवज्ज काल में अनेक मार्मिक प्रसंग आए हैं, परंतु षट्–ऋतु वर्णन हिंदी साहित्य की अनुपम धरोहर है। कवि ने उस युग की समृद्ध नगरी कान्यकुब्ज के सौंदर्य का वर्णन विस्तार से किया है। काव्यात्मक भाषा का उपयोग विचारोत्तेजक माहौल बनाने में मदद करता है जो श्रोताओं को महाकाव्य की अद्वितीय दुनिया में ले जाता है। यह कलात्मक चित्रण कथा की भावात्मक सौंदर्यवादी अपील को बढ़ाता है।

'संयोगिता–हरण' प्रसंग पृथ्वीराज रासो का सुमेरू है। यह वह स्थल है जहाँ रासो का कथा प्रवाह चरमसीमा पर पहुँचकर तीव्र गति से कथावसान की ओर अग्रसर हुआ है। यह वह अवस्था है जहाँ परम पराक्रमी पृथ्वीराज का प्रतापदीप निर्वाण से पूर्व अंतिम बार प्रखर रूप से चमक उठा है। यहाँ जिस अविस्मरणीय युद्ध कौशल का प्रदर्शन हुआ है, वह जहाँ एक ओर राजपूती आनबान शान का द्योतक है वहीं दूसरी ओर तत्कालीन सामंती व्यवस्था के पतन की ओर भी संकेत करता है। इस प्रकार विविध भाव–सरणियों और विचारधाराओं का उद्गम बिंदु यह प्रसंग कनवज्ज समय का मूलाधार है जो पृथ्वीराज की श्रोतानुराग से उत्पन्न विरह दशा द्वारा किया गया है। गंधर्व द्वारा कन्नौज की राजकुमारी संयोगिता के गुण श्रवण कर पृथ्वीराज उसे प्राप्त करने को लालायित हो गया। संयोगिता विवाह–प्रसंग को कवि ने अत्यंत मर्मस्पर्शी प्राकृतिक पृष्ठभूमि पर नियोजित कर उसे एक विशिष्ट अपूर्वता प्रदान की है। ऋतुओं का वर्णन करने के लिए चंद ने एक बहुत ही मनोहर योजना की कल्पना की है। महाराजा पृथ्वीराज कन्नौज जाना चाहते थे। अपने गमन की अनुमति लेने के लिए वे बारी–बारी से अपनी छह रानियों के पास जाते हैं और छहों रानियाँ एक–एक ऋतु का वर्णन करके महाराजा पृथ्वीराज को रोकती है। षट्ऋतु वर्णन द्वारा कवि ने रानियों की विरह व्यथा का प्रकृति के माध्यम से बड़ा ही मनमोहक वर्णन किया है। पृथ्वीराज की पटरानी इच्छनी थी। सर्वप्रथम महाराज अपनी पटरानी से अनुमति लेने जाते हैं, तब वसंत ऋतु प्रकृति को मोहक बना रही थी।

इन रिति सुन चहुआन वर चलन कहे जिन जीउ।

हों जानू पहिं लै चलै, प्रान प्रयान की पीउ।।

पटरानी महाराज से कहती हैं– हे श्रेष्ठ चौहान! इस वसंत ऋतु में आपको विदाई देने के लिए जी नहीं चाहता है, मैं समझती हूँ कि आपके कन्नौज प्रस्थान करने

के पूर्व ही मेरे प्राण चले जाएँगे। कविराज रानी के मुख से वसंत ऋतु का सुंदर वर्णन कराते हैं।

वसंत ऋतु–

कवित्त

मवरि अंब फुल्लिग कदंब रयनिदय दिध दीस।
भँवर भाव भुल्ले भ्रमंत, मकरंदव सींस।।
बहुत बाउ उज्झलति मौर, अति विरह अगनिकिय।
कुहकहंत कलकंठ, पत्त–राखस रति अत्तिय।।

वसंत अपने पूर्ण यौवन पर था, अतः वह कहती है कि आम्र मंजरित है। कदंब पुष्प की श्यामलता दीर्घ यामिनी से भी अधिक घनी है, मकरंद के वशीभूत होकर भ्रमर भ्रमित होकर भ्रमण कर रहे हैं। पवन द्वारा संचालित मंजरियाँ झूमती हैं और विरह प्रज्वलित कर रही हैं। कोकिलाएँ पंचम स्वर में गा रही हैं। राकापति (चंद्रमा) भी दांपत्य प्रेम में वृद्धि कर रहा है। इसलिए हे प्राणनाथ! मैं आपसे चरण छूकर विनय करती हूँ कि मेरे विशेष स्नेह को चित्त में स्थान दीजिए क्योंकि यौवन की अवधि दिनों–दिन कम होती जा रही है। स्वामी, वसंत ऋतु में गमन मत कीजिए। रानी इच्छनी की बातें श्रवण कर महाराज मुस्कुराते हैं तो रानी इच्छनी वसंत ऋतु की लुभावनी छवि राजा के समक्ष प्रस्तुत करने लगती हैं।

साटक

स्वामंग कलधूत सिखर, मधूरे मधू वेष्टिता।
वाते सीत सुगंधि मद सरसा, आलोल संचेष्टिता।।
कंठी कंठ कुलाहले मुकलया, कामस्य उद्दीपने।
रत्ते रत्त वसंत मत्त सरसा, संजोग भोगायते।।

रानी महाराज से वार्तालाप करती हुई अपनी विरह–व्यथा व राजन के प्यार व सान्निध्य को पाने के लिए कहती है– महाराज, गिरि–शिखर नूतन पल्लवों के कारण श्याम और स्वर्णिम वर्ण युक्त हो रहे हैं और मधुर मधु से वन और उपवन आवेष्टित हैं। शीतल मंद और सुगंधित समीर सरसता का अनुभव कराता हुआ मंद–मंद बहता है। अर्थात् धीमी गति से चलने वाली पवन मुझे व्याकुल करती, कोकिला कामोद्दीपन कराती है। इस रंगीली वसंत ऋतु में सभी मतवाले रसिक दंपति अनुरक्त होकर संयोग सुख प्राप्त करते हैं। रानी इच्छनी की बातें सुन राजन की आँखें चंचल हो उठती हैं।

अतः पटरानी और ऋतुराज वसंत दोनों का संगम देखकर राजा ने उस ऋतु में पटरानी इच्छनी के महल में ही निवास किया।

ग्रीष्म ऋतु–

ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर साक्षात कामस्वरूप होकर राजा पृथ्वीराज रानी पुंडीरनी के महल पहुँचे और रानी से बोले– मैं कन्नौज देखना और वहाँ के सामंतों को परखना चाहता हूँ। तो रानी पुंडरिनी ने यह कहकर निषेध किया कि अब तो दिन बड़ा और रात्रि छोटी होने लगी है, पृथ्वी पर आग बरस रही है। पवन भी अग्नि के समान हो गया है। सरोवर का जल सूख जाने से मछलियाँ तड़फड़ा रही हैं, तरुलताओं के पत्ते झड़ गए हैं, ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो तरुलता दिगंबर होकर सुरति सुख भोग रहे हैं। अतः हे प्रियतम, आप ऐसे समय में गमन मत कीजिए।

कवित्त

पवन त्रिविध गति मुक्कि, सेन भय पत्ति जूथ चलि।
विरहि जामबर कदन, मदन मैमंत पील हलि।।
पथिक बधू संभरै, आस आवन चंदाननि।
जो चाले चहुआन (तौ), मरै उर फट्टि वरंननि।।
मन भुअन आन दैतो फिरै प्रिय आगम गज्जे मयन।
कंता न मुक्कि वर कित्ति गर, कहूँ सुनौ सोनिय बयन।।

रानी पुंडीरनी ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए अपनी विरह–वेदना को बताने का प्रयास करती हैं। वह कहती है कि मंद, सामान्य और तीव्रगति के अतिरिक्त भी विशेष गति प्राप्त कर पवन चलता हुआ ऐसा दिखाई देता है मानो किसी बलवान राजा की सेना का युद्ध चल रहा हो। रानी कहती है कि ग्रीष्म ऋतु में विरहीजनों के लिए ये रानियाँ इस प्रकार दिखाई पड़ती हैं, मानो कामदेव का मदमस्त हाथी उनके बल नाश के लिए बढ़ रहा हो। राहगीरों द्वारा चंद्रवदनी, नववधुएँ उनके पति के आने की चर्चा सुनकर उनके घर आने की आशा में लगी हुई हैं। ऐसे समय में अगर आप विदा लेंगे तो मेरा हृदय फट जाएगा और मैं मृत्यु को प्राप्त होऊँगी। अतः रानी के अत्यधिक अनुरोध पर राजा ने ग्रीष्म ऋतु उसके महल में ही बिताई। वर्षा के आगमन पर महाराज इंद्रावती के महल में पहुँचे। पति के मुख को देखकर रानी इंद्रावती समझ गई कि महाराज विदा लेने आए हैं तो वह अश्रु वर्षा कर उन्हें विदाई के लिए निषेध करती है।

पीय वदन सो प्रिय परखि, हरख न भय सुनि गौन।
आँसू मिसि असु उप्पटे, देय सलोन।।

वर्षा ऋतु–

रानी इंद्रावती कहती हैं कि महाराज, वर्षा ऋतु है। ऐसे में आप मुझे छोड़कर ना जाएँ। रानी वर्षा ऋतु का मनोरम दृश्य राजा के समक्ष प्रस्तुत करती हैं जिसे सुन राजा उसके पास ही रुक जाएँ। वह कहती है कि–

कवित्त

मग सज्जल सुझ्झेन दिसा धंधरी सघन करि।
रति पहँवी किय चरित, लता तरु वीटे सुमन भरि।।
आलिंगन धर अंभ, मान माननि ललचावत।
बर भद्धव कद्दव मचंत कद्दव विरुझावत।।

जलभर जाने से मार्ग अवरुद्ध हो गए हैं। घने बादलों के छाए रहने से दिशाएँ भी धुंधली हो गई हैं और पृथ्वी बादलों से रति–क्रीड़ा करती ऐसी दिखाई दे रही है मानो लताएँ पुष्पिता हो वृक्षों से आलिंगन कर रही हों। इस प्रकार के प्राकृतिक दृश्य को देखकर मानिनी स्त्रियाँ भी अपना मान त्याग देती हैं। अतः हे स्वामी, ऐसी ऋतु में रमणी अपने रमण का साथ चाहती है। ऐसे समय में तो पतिविहीन स्त्री ईश्वर–विहीन हो जाती है। अतः आप मुझे छोड़कर प्रस्थान ना करें।

रानी इंद्रावती वर्षा ऋतु में रमणी के तन मन में होने वाले परिवर्तन और असहनीय पीड़ा जो वर्षा ऋतु के कारण होती है, उसका उल्लेख करती हुई कहती है–

कवित्त

घन गरजै घरहरै, पलक निस रेन न घट्टे।
सज्जल सरोर पिक्खि, हियौ ततछन धन फट्टै।।
जल बद्दल बरखत, पेम पल्हरै निरंतर।
कोकिल सुर उच्चरै, अंग पसरंग पंचसर।।
दादुरह मोर दामिनि दसय, अरि चमथ्थ चातक रटय।
पावस प्रवास वालम न चलि, विरह अगनि तनतप थटय।।

उमड़–घुमड़ कर बादल गरजते हैं जिससे विरह की मारी रमणियों की पलकों के सामने रात्रि छा जाती है और रात्रि व्यतीत करना मुश्किल हो जाता है। सजल तालाबों को देखकर हृदय विशेष रूप से फटने लग जाता है। बादलों से जल बरसता देखकर दंपत्ति निरंतर प्रेम लीला में लिप्त हो जाते हैं, कोकिला की स्वर ध्वनि से शरीर में कामदेव प्रसार पाता है। दादुर, मोर और दामिनी कलेजे को काटती है। चारों ओर पपीहे पीपी रटते हैं। हे प्राणनाथ प्रिये! ऐसी पावस ऋतु में आप प्रवास ना कीजिए

क्योंकि विरह की अग्नि शरीर को संतप्त कर उसका नाश कर देती है। रानी तिरछी चितवन से देखते हुए कह रही हैं–

साटक

जे बिज्जुझ्झल फुट्टि तुट्टि तिमिर, पुनं धनं दुस्सहं।
बुंद घोर तरं सहंत असहं, बरखा रसं सं भरं।।
बिरहीनं दिन दुष्ट दारुन भरं, भोगीसरं सोभनं।
मा मुक्के प्रिय गोरियं च अबलं, प्रीतं तया तुच्छया।।

जो बिजली बार–बार चमक कर अंधेरे को तोड़–फोड़ कर नष्ट कर देती है, उसे देखना स्त्री के लिए दुखदायी होता है। आकाश से बादल घनघोर बूंदें बरसाता है, उसे सहन करना विरह की मारी के लिए असहनीय हो जाता है। यह वर्षा तालाबों को ही नहीं अपितु सभी को रस से परिपूर्ण कर देती है। विरहीजनों को वर्षा ऋतु में दिन बहुत कठिन और बहुत ही दुखदायी महसूस होते हैं, जबकि यही दिन संयोगी पुरुषों को शोभा लिए प्रतीत होते हैं। ऐसे समय में हे महान राजन, मुझ अबला गोरी को, हे प्रियतम प्यारे, छोड़कर न जाएँ। यदि आप प्रस्थान करेंगे तो मैं समझूँगी कि आपकी मेरे प्रति प्रीत बहुत ही तुच्छ है। इस मोहक ऋतु में मेरे ही समीप रहें ऐसा आग्रह रानी इंद्रावती अपने पति महाराज पृथ्वीराज से करती हैं जिसे सुन महाराज वर्षा ऋतु में रानी के कक्ष में ही निवास करते हैं।

शरद ऋतु–

वर्षा ऋतु समाप्त होती है और शरद ऋतु प्रारंभ होती है। शरद ऋतु में महाराज अपनी अगली रानी हंसावती के महल में पधारते हैं और उनसे अपने कन्नौज गमन का प्रस्ताव रखते हैं तो रानी हंसावती बड़ी ही चतुराई से राजा के समक्ष शरद ऋतु का वर्णन करती हैं और कहती है–

दिख्खि बदन प्रिय पोमिनी, फुनि जंपै फिरि बाल।
सरद रवन्नो चंद निसि कित लंभे छुटि काल।।

रानी हंसावती ने कमलिनी की तरफ देखा और फिर वह बोली– शरद की रात्रि में रमणीक चंद्रमा के सामने कौन बच सकता है और यमराज से मुक्त होकर कौन जीवन प्राप्त कर सकता है। अर्थात् रानी राजा से कहना चाहती हैं कि शरद ऋतु में चंद्रमा मोहक विरह प्रदान न करें वरना मैं निर्जीव हो जाऊँगी। रानी हंसावती शरद ऋतु में बिछड़ने वाले प्रिया प्रियतम की स्थिति बताते हुए कहती हैं कि–

कवित्त

पिख्खि रयनि निम्मलिय, फूल फूलंत अमर धर।
श्रवन सबद नहिं सुनै, हंस कुरलंत मान सर।।

कवल कद्रव विगसंत तिनह हिमकर परजारै।
तुमहि चलत परदेस, नहीं कोई सरन उबारे।।
निग्रहन स्त भर पंचसर, आरि अनंग अंगै बहै।
जौ कंत गवन सरदह कैर, तौ विरहनी सिखि ह्वै दहै।।

महाराज निर्मल रात्रि को देखकर आकाश और पृथ्वी पर सुमन पंक्ति विकसित होती है। मानसरोवर पर शरद ऋतु में मराल समूह की आवाज के आगे अन्य कोई भी शब्द सुनाई नहीं देता है। ऐसी ऋतु में अगर आप विदेश गमन करेंगे तो हमारी रक्षा कौन करेगा। शरद ऋतु में तो वीर भी पुष्प के पाँच शर रखने वाले अनंग के सामने पराजित होते देखे गए हैं। शरद ऋतु में जिस स्त्री का पति प्रवास करता है तो वह विरह के मारे मयूर की तरह अपने शरीर को जलाती रहती है। रानी शरद ऋतु का प्रफुल्लित वर्णन करती हुई अपनी विरह पीड़ा को उजागर करती हुई कहती हैं कि–

कवित्त

द्रप्पन सम आकाश, श्रवत जल अमृत हिमकर।
उज्जल जल सलिता सु सिद्धि सुंदर सरोज सर।।
प्रफुल्लित लतित लतानि करत गुंजारव भंमर।
उदत्ति सित्त निसि नूर, अंगि अति उमगि अंग बर।।
तलफंत प्रान निस भवन तन देखत दुति रति मुख जरद।
वन करहु गवन नन भवन तजि, कंत दुसह दारुन सरद।।

महाराज, शरद ऋतु में आकाश स्वच्छ दिखाई देता है और चंद्रमा तो अमृत बरसाता है, सरिताओं का जल स्वच्छ हो जाता है। तालाबों में कमल और लताएँ खिल जाती हैं, उन पर भँवरे गुंजार करते हैं और रात्रि का नूर लिए हुए चंद्रमा उज्ज्वलता लाता है। उसको देखकर अंग में कामदेव उमंग फैला देते हैं। अगर प्रियतम ना हो तो रात्रि में विरहणियों के शरीर और प्राण तड़फने लगते हैं तथा शरद प्रभा देखकर उनके मुख पीले पड़ जाते हैं। अतः स्वामी, शरद ऋतु में आप मुझे असहाय करके मत जाइए।

रानी की इन मोहक बातों को सुनकर राजा शरद ऋतु में उन्हीं के पास प्रवास करता है और हेमंत ऋतु आने पर वहाँ से प्रस्थान करता है तथा रानी कुरम्मी के महल में उससे विदा माँगने जाता है।

हेमंत ऋतु–

रानी कुरम्मी राजा को रोकने के लिए हेमंत ऋतु का सुहावना व आकर्षक वर्णन करती है और कहती है कि हे राजन–

साटक

छीने वासर सीत दिघ्घ निसया, सीतं जनेतं वने।
सज्ज संजर वान–यौवनतया आनंग आनंगने।।
यो बाला तरुनी वियोग पतन, नलिनि दहंते हिमं।
मा मुक्के हिमवतं मंत गमने, प्रमदा निरालंबन।।

हेमंत ऋतु में दिन छोटे और रात्रि लंबी हो गई है। पाला अधिक पड़ने लगा है। हे राजन जिनके पति पास में है, ऐसी युवा प्रमदायें अच्छे ढंग से शैय्या सजाकर कामदेव के वश में होती हुई प्यारे का आलिंगन करती है। वियोगिनी बाला–तरुणियों का पतन इस प्रकार हो जाता है जिस प्रकार हेमंत में पाले के कारण कमलिनियाँ जल जाती हैं, इसलिए हे प्यारे! प्रवास करने की सोचकर इस हेमंत ऋतु में आप हमें छोड़कर मत जाएँ क्योंकि पतिविहीन प्रमदा ऐसे समय में निराधार कही गई हैं।

कवि चंदबरदाई बड़ी ही खूबसूरती से प्रकृति का आधार लेते हुए रानी के विरह का सजीव वर्णन करते हैं। रानी द्वारा की गई करुण विनती से राजा रानी कुरम्मी के शयन कक्ष में ही हेमंत ऋतु बिताते हैं। हेमंत ऋतु के बीतने पर राजा पृथ्वीराज ने हम्मीरनी के महल की सुध ली और रानी हम्मीरनी से राजा बोले हे प्यारी, विकट शत्रुओं पर विजय पाने की इच्छा से तुम्हारा प्यारा चौहान कन्नौज जाने के लिए उत्सुक है। राजन की बात सुनकर रानी हम्मीरनी शिशिर ऋतु का उलाहना देते हुए राजा से विनती करती हुई कहती हैं–

शिशिर ऋतु–

साटक

रोमावलि वन नीर निहध रचयो, गिरदंग नारायते।
पव्वय पीन कुचानि जानि मलवा फुंकार झुंकारए।।
सिसिरे सर्वरि वारुनी च विरहा मम हृद् विद्दारये।
मा कंते मृगवध्ध सिंघ गमने, किं दैव उव्वारए।।

हे राजन! फगुआ के खिलाड़ियों के लिए रोमावली ही वन, नीर वर्षा (पिचकारी से छोड़ा गया जल) समुद्र, पैने कुंच ही मलयाद्रि और वाद्यों की झंकार ही पोगर की फुत्कार है। (हाथी की सूँड़ द्वारा पानी फेंकना।) ऐसे शिशिर का रात्रिरूपी हाथी विरह रूपी मस्ती से विरही जनों को मार देता है। अतः हे मेरे सिंह स्वरूपी प्यारे। इस ऋतु में आप हमसे विदा ना लें। अपनी रक्षा के लिए हम किस देवता को पुकारेंगी। रानी राजा को रिझाते हुए कहती हैं–

कवित्त

आगम फाग अवंत, कंति सुनि मित्त सनेही।
सीत अंत तप तुच्छ होइ आनंद मन ग्रेही।।
नर नारी दिन रैनि, मेंन मदमाते डुल्लै।
सुनौ कंत सुभ चिंत करि, रयनि गवन किम किज्जिये।
कहि नारि पीय बिन कामिनी, रीति सिसरह किम जिज्जये।।

हे प्यारे! सुनो, फगुए के आगमन पर जिन पति–पत्नियों में तुच्छ स्नेह होता है, उनके पति भी घर आते हैं। जाड़े का अंत हो जाता है। स्त्री–पुरुष इस शिशिर ऋतु में दिन रात कामांध होकर फिरते रहते हैं। एक क्षण के लिए भी उन्हें संकोच नहीं होता। वे आपस में मनमाने वचन बोलते हैं। हे प्यारे, सुनो! आप अपनी और हमारी कुशलता का चिंतन कीजिए और ऐसी शिशिर रात्रि में गमन मत कीजिए। आप ही कहिए, पति–विहीन स्त्रियाँ इस शिशिर ऋतु में कैसे जी सकती हैं?

चंदबरदाई ने कवि कथा के इस प्रसंग का बहाना लेकर परंपरागत संस्कृत काव्य–शैली के आधार पर षट्ऋतु वर्णन में अपनी काव्य–कला का चरम सौंदर्य प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह वर्णन स्पष्टतः उद्दीपन को आधार बनाकर चला है। फिर भी कवि ने प्राकृतिक सुषमा के साथ ही अपनी वर्णन–कुशलता से सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण और ऋतुओं का मानवीय क्रियाकलापों पर प्रभाव को भी अंकित किया है। राजा केवल रानियों के अनुरोध और प्रणय–निवेदन से ही वर्षभर अपना कार्यक्रम स्थगित नहीं करता है, अपितु वह अपने रतिमुग्ध हृदय के आग्रह से ही ठहरता है। कवि ने ऋतुओं का तो नाम मात्र लिया है। उसका प्रमुख लक्ष्य तो कामोद्दीपन की भावना को जाग्रत करना और उसके ताप और विरह को मूर्त रूप देना है। कहना सही होगा कि कवि अपने इस उद्देश्य में पूरी तरह सफल हुआ है। कनवज्ज समय का यह ऋतु–वर्णन परिस्थिति के अनुरोध और अनुभूति की तीव्रता की दृष्टि से रासो के मार्मिक प्रसंगों में ही नहीं, अपितु हिंदी के श्रेष्ठ षट्ऋतु वर्णनों में अपना स्थान रखता है। रासो के इस षट्ऋतु वर्णन की यह विशेषता रही है कि वह कृत्रिम और आरोपित दिखाई नहीं देता अपितु आगे चलकर कथा–प्रवाह में एक रोचक मोड़ भी उपस्थित कर देता है। पृथ्वीराज रासो में चंदबरदाई कवि ने छह प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार पृथ्वीराज रासो में अपभ्रंश की बहुलता पाई जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज रासो' चंदबरदाई का वह महाकाव्य है जिसमें पृथ्वीराज चौहान की वीरता के साथ–साथ एक प्रियतम की मनोहरी छवि को भी दर्शाया गया है।

निष्कर्ष–

'पृथ्वीराज रासो' चंदबरदाई कृत वह महाकाव्य है जो कि महाकवि चंदबरदाई ने अपने सखा तथा दिल्ली के अंतिम हिंदू शासक पृथ्वीराज के यश व वीरता तथा उनके युद्ध कौशल का वर्णन करने के लिए लिखा था। इसलिए इसे एक चरित्र काव्य भी कहा जाता है। इस महाकाव्य में महाराज पृथ्वीराज के शासन काल में घटित प्रमुख घटनाओं तथा सामंतों के प्रभावों को बताया गया है। साथ ही महाराज के व्यक्तिगत जीवन व राजसी जीवन का भी उल्लेख किया है। 'पृथ्वीराज रासो' का एक मुख्य प्रसंग कनवज्ज समय है जिसमें राजा और संयोगिता के प्रेम–प्रसंग को दर्शाया गया है। किसी गुप्तचर द्वारा राजा पृथ्वीराज के शासन तक यह संदेश पहुँचता है कि महाराज पृथ्वीराज के कट्टर शत्रु राजा जयचंद की सुपुत्री संयोगिता महाराज पृथ्वीराज से प्रेम करती है और उनको वरन करना चाहती है। यह सूचना राजकवि चंदबरदाई स्वयं महाराज पृथ्वीराज को सुनाते हैं–

तिहि पुत्तिय सुनि गन इतउ तात वचन तजि काज।
कइ वहि गगहिं संचरउं कइ पानि गहउं पृथ्वीराज।।
सुनत राइ अचरिज भयउ हियइ मन्यउ अनुराउ।
नृप वर अनि उर अंगमइ दैवहि अवर स भाउ।।

चंदबरदाई पृथ्वीराज से कहता है कि उस जयचंद की पुत्री के संबंध में मैंने सुना है कि संयोगिता स्वयंवर का परित्याग कर देगी जो जयचंद ने उसके विवाह के लिए आयोजित किया है। वह सिर्फ महाराज पृथ्वीराज का ही वरण करना चाहती है। यह वचन सुनकर महाराज पृथ्वीराज भी संयोगिता का वरण करने का निश्चय करते हैं तो किसी विशाल सेना का सहारा ना लेकर एक सामान्य पुरुष की तरह कन्नौज प्रस्थान करना चाहते हैं। इसलिए चंदबरदाई के सुझाव को मानते हुए वह अपनी छह रानियों पटरानी–इच्छनी, रानी पुंडीरनी, रानी इंद्रावती, रानी हंसावती, रानी कुरम्मी तथा रानी हम्मीरनी से कन्नौज प्रस्थान की इजाजत माँगने जाते हैं तब रानियाँ षट्ऋतु वर्णन करके ऋतुओं के महत्व को तो बताती ही हैं साथ ही उन ऋतुओं के कारण होने वाली विरह–पीड़ा का वर्णन करती हैं तथा उसके कारण उनके मन–मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभाव का भी वर्णन करती हैं। ये षट्ऋतु वर्णन रानियों की ही नहीं बल्कि महाराज पृथ्वीराज की रसिकता तथा नारी के प्रति आकर्षण को भी दर्शाता है। महाराज सिर्फ रानियों के मिन्नत करने पर उनके महल में निवास नहीं करते वरन् वह स्वयं भी उन मोहक ऋतुओं का अपनी रानियों के साथ आनंद प्राप्त करना चाहते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि कनवज्ज काल का षट्ऋतु वर्णन महाराज की वीरता के साथ–साथ उनकी रसिकता और उनके प्रियतम रूप को भी दर्शाता है।

संदर्भः

1. राणावत मनोहर सिंह, मोहनसिंह कविराज (संपादक), महाकवि चंदबरदाई कृत, 'पृथ्वीराज रासो' (खंड-IV) (2013), इंस्टीट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, पृष्ठ संख्या– 9, 10, 11, 12, 73, 75, 81, 82, 83, 84, 85, 87, 88
2. सिंह, नामवर, पृथ्वीराज रासोः भाषा और साहित्य (चौथी आवृत्ति) (2014), राधा कृष्णन प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–8, 141
3. कुमारी पूनम, रासो काव्य और स्त्री (2023), अनंग प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्याः 50, आई.एस.बी.एन. 978–93–80845–35–7.
4. पृथ्वीराज रासो विकिपीडिया https.èèhim.wikipedia.orgèwiki
5. https.èèseemamahatoblog.comzign
6. https:èèhindishri.com, prithvirajraso
7. https:èèbyjus.comèquestion-answerèbhaart-men-rtuon-kaa-ckr-btaale-aur-unke-lkssnn-likhieè
8. Rathore. Virendra Singh (2023-09-22). Prithviraj Chauhan- a Light on the Mist in History.

❑❑❑

मोहन राकेश के नाटकों का समकालीन परिप्रेक्ष्य



डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति
पूर्व विभागाध्यक्ष, प. सुंदरलाल शर्मा विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़

''उस लड़के का परिचय केवल इतना ही है कि वह शाम के वक्त चौपाटी के मैदान में जमा होने वाली भीड़ में घूम रहा था। चौपाटी का मैदान काफी खुला है और जब समुद्र भाटे पर हो, तो और खुल जाता है।''

ये पंक्तियाँ मोहन राकेश की कहानी 'मवाली' की हैं। यह अपरिचित–सा लड़का मोहन राकेश के तीनों नाटकों– 'आषाढ़ का एक दिन' (1958 ई.), 'लहरों के राजहंस' (1963 ई.) तथा 'आधे–अधूरे' (1968 ई.) में भी निरंतर चल रहा है। यद्यपि तीनों नाटकों में विषयवस्तु काल की दृष्टि से ऐतिहासिक है। 'आषाढ़ का एक दिन' गुप्तकाल; (1000–500 ई.पूर्व तक), 'लहरों के राजहंस' बौद्धकाल (563–483 ई.पूर्व) तथा 'आधे–अधूरे' आधुनिक काल (19वीं सदी व उसके बाद) के तत्कालीन परिवेश को जोड़ता चलता है। या कहें, मोहन राकेश के नाटकों में मुख्य भूमिका निभाने वाला यह अनजान व्यक्ति कोई अलक्षित पथिक बनकर बढ़ता चला जा रहा है, लगातार। यह उसका विचलन है या कुछ और? इसे समझने की जरूरत हैं। हाँ, यह भी सच है कि इसे मोहन राकेश परिवेश व समय के अनुरूप एक नए रूप में सुसज्जित कर प्रस्तुत कर देते हैं। यह भी सच है कि मोहन राकेश के नाटकों में यह 'चलना' क्रिया से आगे बढ़कर अद्‌भुत कलात्मक अभिव्यंजना है और उनके रचनाकर्म का केंद्रीभूत तत्व भी। रचनाकार के नाटकों में यह आभासी, अनजान व्यक्तित्व बहुत महत्वपूर्ण है जो तीनों नाटकों में अलग–अलग लिबास ओढ़े हुए है। उसकी आकांक्षा और मनोदशा कुछ इस तरह की है कि वह हमेशा से कुछ ढूँढ़ता आया है और अब भी कुछ ढूँढ़ रहा है– एक मनोविश्लेषक राही और सजग अन्वेषक बनकर। उसका यह यायावरी या अन्वेषणात्मक स्वरूप सामाजिक परंपराओं और कुछ हद तक सामाजिक लोगों के सिमटे दृष्टिकोण को अस्वीकारता है और स्वच्छंद होने की कोशिश कर रहा है। रूढ़ सामाजिक दीवारों के विरुद्ध अपनी एक नई और मजबूत दीवार बनाना चाह रहा है जैसे मध्यकाल में कृष्णभक्तिन मीरा सामाजिक सीमाओं को लाँघकर उन्मुक्तता के लिए कशमकश

करती है। फर्क सिर्फ इतना कि मीरा कृष्णभक्तिन कहलाई और मोहन राकेश के नाटकों में यह अदृश्य व्यक्तित्व अपने में से पार जाना चाहता है, अपने में खो जाना चाहता है, यह उसके आत्मान्वेषण का क्षण है। नाटकों का यह व्यक्तित्व सधा हुआ बढ़ते जा रहा है अपने पथ पर जैसे सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की 'असाध्य वीणा' का प्रियंवद अपने को साध लेता है, अपने आप को अपने में के परत्पर से।

समीक्षकों ने नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में इस 'अपरिचित' को 'कुमारसंभवम्', 'मेघदूतम्', ऋतु संहार', 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'रघुवंशम्' के रचनाकार और महान कवि कालिदास के बने–बनाए फ्रेम में कसने का प्रयास किया, और इतना कसा कि वह 'आषाढ़ का एक दिन' के तीसरे अंक तक ऐसा लगा कि वह दुर्बल हो गया है या दुर्बल घोषित कर दिया गया है। इन समीक्षकों का कहना कुछ हद तक ठीक भी है क्योंकि इस नाटक के आरंभ में तो कालिदास ठीक है और लगता है कि वह 'मेघदूत' के रचनाकार कालिदास के व्यक्तित्व का अक्षरशः अनुपालन कर रहा है, उसके विचार, संवाद तथा कार्य में साम्यता है। वह मल्लिका से कहता है– मैं अनुभव करता हूँ कि यह ग्राम–प्रांतर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और ये मेघ हैं, यहाँ की हरियाली है, हिरणों के बच्चे हैं पशुपाल हैं।.....यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊँगा।'' (आषाढ़ का एक दिन, पृ.46) वह ग्राम–प्रांतर की जमीनी हकीकत से अटल, स्थिर जुड़ा हुआ है, उसका भाव व्यापार ग्राम–प्रांतर से ही स्पंदित होता है। उसका कथन ''मैं राजकीय मुद्राओं में क्रीत होने के लिए नहीं हूँ'' (आषाढ़ का एक दिन पृ. 28) उस ग्राम–प्रांतर के व्यक्ति का तटस्थ, विवेकशील, स्वाभिमानी होना ही दर्शाता है। संभवतः इसलिए वह राजकीय सम्मान को स्वीकारना नहीं चाहता। यह उसके आत्मविश्लेषण का पहला और सफल कदम है। लेकिन, आगे कुछ वर्षों बाद जब कालिदास कश्मीर छोड़ पुनः उज्जयिनी चला आता है, तब कालिदास अस्थिर, अंतर्द्वंद्व में उलझा व्यक्ति है।

वस्तुतः कालिदास की यह अस्थिर अंतर्द्वंद्वयुक्त मनोदशा की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति ही नाटककार के समक्ष मुख्य प्रश्न है। यद्यपि इसके लिए नाटककार व्यक्ति के अंतर्निहित भावों को इस तरह व्यक्त करता है कि वे अंतर्भाव मात्र कालिदास और मल्लिका भर के अंतर्भाव नहीं रह जाते बल्कि पाठक (दृष्टा एवं श्रोता) के भाव उद्दीपन का कारण बन जाते हैं। इस तरह इस नाटक में आलंबन कालिदास और मल्लिका हो जाते हैं। ये अच्छे नाटक की विशेषता और रसानुभूति के लिए आवश्यक तत्व स्वीकारे जाने चाहिए। इसमें वातावरण और परिस्थितियों की अनुकूलता दोनों (मल्लिका व कालिदास) के रागात्मक–प्रेम एवं भाव सामंजस्य को व्यक्त करने में सहायक है। इसे नाटककार ने इस तरह व्यक्त करने में सफलता पाई है:

कालिदास घायल हरिणशावक को ले जाने लगता है तब की स्थिति को नाटककार इस तरह व्यक्त करता है –

''दंतुल : और राजपुरुष दंतुल तुम्हें ले जाते देखता रहेगा!

कालिदास : यह उस राजपुरुष की रुचि–अरुचि पर निर्भर करता है।

बिना उसकी ओर देखे ड्योढ़ी में चला जाता है।

दंतुल : राजपुरुष की रुचि–अरुचि क्या होती है, संभवतः इसका परिचय तुम्हें देना आवश्यक होगा।

कालिदास बाहर चला जाता है। केवल उसका शब्द ही सुनाई देता है।

कालिदास : संभवतः।

दंतुल : संभवतः?

तलवार की मूठ पर हाथ रखे वह पीछे जाना चाहता है।

मल्लिका शीघ्रता से द्वार के सामने खड़ी हो जाती है।

मल्लिका : ठहरो, राजपुरुष! हरिणशावक के लिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए प्रश्न अधिकार का है उनके लिए संवेदना का, कालिदास निःशस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिंता नहीं करेंगे।"

यद्यपि ऐसी स्थिति में कालिदास के लिए आत्मान्वेषण, संघर्ष, अंतर्द्वंद्व को अभिव्यक्त करने के लिए अवकाश नहीं, किंतु यह परिवेश और व्यक्ति के बीच के भाव–संचरण की सूक्ष्म कड़ी अवश्य है। यहाँ घायल हरिणशावक की वेदना का स्पर्श कालिदास की अनुभूति के उच्च्तम स्तर पर है। यहाँ एक और बात कि भाव संचरण का उच्च बिंदु होने के बावजूद घायल हरिणशावक को अपने पास रखने की जिद है तो दूसरी ओर कालिदास अपने विवेक के आधार पर दंतुल से संघर्ष नहीं चाहेगा। लेकिन, हरिणशावक से सघन भावनात्मक जुड़ाव के कारण हरिणशावक को अपने से दूर करने वाली किसी भी स्थिति के लिए कालिदास तैयार है।

नाटककार की इस नाटक में एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसने संवेदनात्मक अनुभूति की तीव्रता में भी अपने पर काबू रखा है जो स्वच्छंदतावादी नाटकों में भी नाटककार की मर्यादित अभिव्यक्ति को दर्शाता है। यही कारण है कि नाटककार ने कालिदास के माध्यम से व्यक्ति की तीव्र वेदना को क्रांतिकारी स्वरूप धारण करने के पूर्व ही नियंत्रित कर लिया है। इसलिए कालिदास विलोम के व्यंग्य भरे शब्दों में अपने पर काबू रखता है जिसे नाटककार इस तरह व्यक्त कर पाने में सफल होता है –

''विलोम : सुना है राजधानी से निमंत्रण आया है।

कालिदास : सुना मैंने भी है। तुम्हें दुःख हुआ।

विलोम : दुःख? हाँ–हाँ बहुत। एक मित्र के बिछुड़ने का किसे दुःख नहीं होता?

..... कल ब्रह्ममुहूर्त्त में ही चले जाओगे?

कालिदास : मैं नहीं जानता।

(आषाढ़ का एक दिन पृ. 39)

हालाँकि 'मैं नहीं जानता' कहना उसकी अनिर्णयात्मकता को प्रदर्शित करता है और ऐसी स्थिति इस पूरे नाटक में विद्यमान है। यही कारण है कि कालिदास के तटस्थ स्वभाव से 'मैं' का भाव बौना पड़ जाता है।

उज्जयिनी जाने के पूर्व तक कालिदास के सामने अनिर्णय की स्थिति है। वह अपनी इस स्थिति से उबरने के लिए अध्यात्म का सहारा भी लेता है, जब वह जगदंबा के मंदिर में बैठा होता है। यह तब जब उज्जयिनी से लेने उसे आचार्य आए हैं। वहीं मल्लिका इस अंतर्द्वंद्व में भी सहिष्णु, प्रगतिशील, आस्थावान नारी है। उज्जयिनी जाने के संबंध में कालिदास और मल्लिका के बीच हुए संवादों में इसे देखा जा सकता है–

''कालिदास : मुझे जाने के लिए कह रही हो?

मल्लिका : हाँ! देखना, मैं तुम्हारे पीछे प्रसन्न रहूँगी, बहुत घूमूँगी और हर संध्या को जगदंबा के मंदिर में सूर्यास्त देखने जाया करूँगी.....।

कालिदास : इसका अर्थ है तुमसे विदा लूँ?

मल्लिका : नहीं! विदा तुम्हें नहीं दूँगी। जा रहे हो, इसलिए केवल प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारा पथ प्रशस्त हो।

(आषाढ़ का एक दिन पृ. 48)

कुछ वर्षों बाद कालिदास कश्मीर (कश्मीर) का भावी शासक बन ग्राम–प्रांतर के रास्ते कश्मीर जाता है, तब वह कुछ घंटे अपने ग्राम–प्रांतर रुकता है परंतु वह मल्लिका से मिलता नहीं है क्योंकि मल्लिका को उत्तर देने के लिए उसके पास शब्द नहीं। इस स्थिति में राजमहिषी वंश–दुहिता विदुषी प्रियंगुमंजरी मल्लिका से मिलती है और उसके घर का परिसंस्कार करने को कहती है, साथ ही उसे संगिनी बनाए जाने का प्रस्ताव भी मल्लिका के समक्ष रखती है। इस वक्त मल्लिका को जितनी पीड़ा हुई, उसका चित्रण नाटककार चाहकर भी नहीं कर सका है क्योंकि वह नारी के सहिष्णु रूप को ही स्वीकारता आया है। इधर मल्लिका के अंतस् में यह पीड़ा इसलिए है क्योंकि कालिदास ही उसके लिए सब कुछ रहा है। मल्लिका द्वारा प्रियंगुमंजरी के इन प्रस्तावों का अस्वीकारना एक सहज मानवीय प्रतिक्रिया है और यह सहनशीलता, सहिष्णुता आस्था को प्रतिध्वनित करती है जिसे नाटककार ने इस तरह अभिव्यक्त किया है–

''प्रियंगुमंजरीः ..... तुम भी हमारे साथ क्यों नहीं चलती।

मल्लिका विमूढ़–सी उसकी ओर देखती रहती है।

मल्लिका : मैं?

प्रियंगु पास आकर उसके कंधे पर हाथ रख देती है।

प्रियंगुमंजरी : हाँ, इसमें बाधा क्या है? यहाँ तुम किसी ऐसे सूत्र से तो बँधी नहीं हो कि.....

मल्लिका : मेरी माँ यहाँ हैं।

प्रियंगुमंजरी : यह कोई बाधा नहीं है। तुम्हारी माँ के भी साथ चलने की व्यवस्था हो सकती है। हमारे पति इस घर का परिसंस्कार करते रहेंगे, तुम वहाँ मेरे साथ मेरी संगिनी के रूप में रहोगी।

मल्लिका के चेहरे पर आहत अभिमान की रेखाएँ प्रकट होती हैं। परंतु वह अपने को दबाए रखती है।

मल्लिका : क्षमा चाहती हूँ। मैं अपने को ऐसे गौरव की अधिकारिणी नहीं समझती।

प्रियंगुमंजरी : परंतु मै तुम्हें इससे कहीं अधिक की अधिकारिणी समझती हूँ..... मेरे आने से पहले राज्य के दो अधिकारी यहाँ आए थे।

होंठों पर फिर विदग्ध मुस्कान आ जाती है।

मैंने उन्हें औपचारिकता के लिए ही नहीं भेजा था। तुमने उन दोनों को देखा है? मल्लिका उसका अर्थ समझने की कोशिश करती हुई अनिश्चित–सी उसकी ओर देखती रहती है।

मल्लिका : देखा है।

प्रियंगुमंजरी : तुम उनमें से जिसे भी अपने योग्य समझो, उसी के साथ तुम्हारे विवाह का प्रबंध किया जा सकता है। दोनों योग्य अधिकारी हैं।

मल्लिका : देवी!

भोजपत्रों को वक्ष से सटाए कुछ पग आसन की ओर हट जाती है। प्रियंगुमंजरी उसे सीधी दृष्टि से देखती हुई धीरे–धीरे उसके पास चली जाती है।''

(आषाढ़ का एक दिन पृ. 73–74)

जब कालिदास (कश्मीर का शासक का दायित्व निभाते समय मातृगुप्त के नाम से जाना जाता है) द्वारा कश्मीर के शासक पद–त्याग और सन्यास लेने की बात ग्राम–प्रांतर में फैलती है तब मातुल कालिदास के व्यक्तित्व का जो विश्लेषण करता है, वह कालिदास के मानसिक विचलन को बता रहा है। मातुल मल्लिका से कहता है– ''एक राजनीतिक जीवन, दूसरे कालिदास। मैं आज तक दोनों में से किसी की भी धुरी नहीं पहचान पाया। मैं समझता हूँ कि जो कुछ मैं समझ पाता हूँ, सत्य सदा उसके विपरीत होता है। और मैं जब उस विपरीत से विपरीत तक पहुँचने लगता हूँ, तो सत्य उस विपरीत से विपरीत हो जाता है। अतः मैं जो कुछ समझ पाता हूँ, वह

सदा झूठ होता है'' (आषाढ़ का एक दिन, पृ. 91–92) यही नहीं कालिदास जब पुनः ग्राम–प्रांतर वापस आता है और मल्लिका के सम्मुख होता है तब वह भीषण अंतर्द्वंद्व में है। उसके मुख से निकले शब्द हैं– ''सच कहूँ तो वह व्यक्ति हूँ जिसे मैं स्वयं नहीं पहचानता।'' (आषाढ़ का एक दिन, पृ. 102) यहाँ पर भी कालिदास के पास आत्मशोधन का वक्त नहीं और न ही अपने आप को पहचनाने की स्मृति ही शेष है। वह अंतर्द्वंद्व से भरा हुआ व्यक्ति है। इस क्षण का कालिदास विचलित मनोवृत्ति वाला अस्थिर जीवन के प्रति वितृष्णा से भरा हुआ कालिदास है।

कालिदास की यह वितृष्णा आखिर किसके लिए है? वस्तुतः यह वितृष्णा उसे अपने जीवन के प्रति और वर्तमान के प्रति हुई है। वह कहता भी है– मुझे अपने से वितृष्णा हुई। उनसे भी वितृष्णा हुई जिन्होंने मेरे आने के दिन को उत्सव की तरह माना। तब पहली बार मेरा मन मुक्ति के लिए व्याकुल हुआ था। परंतु उस समय मुक्त होना संभव नहीं था। मैं तब तुमसे मिलने के लिए नहीं आया क्योंकि भय था तुम्हारी आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी। (आषाढ़ का एक दिन, पृ.101) यह भावोत्पादन तथा भावाभिव्यक्ति मल्लिका में भी पहले अंक से लेकर तीसरे अंक के अंत तक क्रमशः आवेश, हताशा, कठोरता के बाद करुणा के सोपानों को पार करते हुए व्यक्त हुई है।

नाटककार का यह कथन कि– ''कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है। नाटक में वह प्रतीक उस अंतर्द्वंद्व को संकेतित करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आंदोलित करता है।'' (लहरों के राजहंस पृ.19) सच है। नाटककार का आगे कहना कि– ''आषाढ़ का एक दिन का कालिदास दुर्बल नहीं है, कोमल, अस्थिर और अंतर्द्वंद्व से पीड़ित है।'' (लहरों के राजहंस, पृ.19) यह भी सच स्वीकार किया जाना चाहिए लेकिन यह स्वीकारते हुए कि कालिदास तीसरे अंक तक आते–आते आत्मकेंद्रित–सा हो गया है। वह अस्थिरता अंतर्द्वंद्व, वितृष्णा से दूर जाने की कोशिश कर रहा है। यद्यपि यह आधुनिक नाट्य परंपरा की सशक्त एवं तटस्थ अभिव्यक्ति कही जानी चाहिए जो आधुनिक परिवेश में व्यक्ति के जीवन को चित्रित कर पाने में सफल हुआ है।

नाटक 'लहरों के राजहंस' में नंद की स्थिति कालिदास के आगे की है। नंद अपनी पत्नी 'सुंदरी' के रूपमोह में अपने को बाँधे है। सुंदरी की कोई आकांक्षा नहीं है, उसके लिए वर्तमान ही सब कुछ है। उसे अपनी सुंदरता पर गर्व और अंह दोनों है। नाटककार इसकी कलात्मक अभिव्यक्ति करता है। नाटक के आरंभ में सुंदरी को अतंर्द्वंद्व स्पर्श तक नहीं कर पाता। उसका अलका के लिए यह कहना– ''यह भरा यौवन और हृदय में धूल भरा आकाश!.....इसका कुछ उपाय करना होगा।'' (लहरों के राजहंस पृ.35) उसके द्वारा कामोत्सव का आयोजन सुंदरी की

स्वच्छंद चेतना का परिचायक है। किंतु जब कमलताल में राजहंसों का कलरव, तत्पश्चात हंसों का कमलताल से भाग जाने की घटना और फिर नेपथ्य में श्यामांग के विलाप के स्वर गूँजते हैं तब वह यह सोचने पर मजबूर हो जाती है कि वर्तमान ही सब कुछ नहीं। सुंदरी को ही नहीं, नंद को भी जीवन के प्रति आगाह करते शब्द सुनाई देते हैं–

नेपथ्य से –

''धम्मं शरणं गच्छामि

संघं शरणं गच्छामि

बुद्धं शरणं गच्छामि.....।

(लहरों का राजहंस, पृ. 80)

बौद्ध भिक्षुओं–भिक्षुणियों के समवेत स्वर जब सुनाई पड़ते हैं तब नंद के हाथों से दर्पण हिल जाता है और टूटकर बिखर जाता है। यह ठीक उसी तरह है जैसे कमलताल में परछाई जलतरंगों के कारण विखंडित हो जाती है। यह इस बात का संकेत है कि नंद की मनः स्थिति उस तरंग की भाँति तरंगित विखंडित हो रही है जैसे कमलताल में जलतरंगें कंपित हुई थीं जिसकी परिणति उस कमलताल से राजहंसों का कलरव और फिर राजहंसों का कमलताल से भाग जाना हुआ और इसी तरह नंद के सामने जिसकी परिणति दर्पण का टूटना हुआ। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि नंद और सुंदरी के मानसिक द्वंद्व की पूर्व पीठिका यहीं से आरंभ हो जाती है। जिस सुंदरी ने कहा था कि– "नारी का आकर्षण पुरुष को बनाता है तो उसका अपकर्षण पुरुष को गौतम बुद्ध बना देता है", वही सुंदरी बाद में नंद को भिक्षु–वेश में देखकर अपनी पराजय से विक्षुब्ध हो उठती है। फिर भी वह कहती है ''वे नहीं आए अलका जो लौटकर आया है वह व्यक्ति कोई दूसरा ही है।" (लहरों के राजहंस पृ. 121) इससे यह कहा जा सकता है कि मल्लिका अभी भी बीते हुए समय में जीना चाहती है, उसे वर्तमान स्वीकार्य नहीं। वह कहती भी है– ''वह आकृति एक दुःस्वप्न नहीं.....यथार्थ है.....मेरा अपना यथार्थ.....क्या मैं उसका सामना कर सकती हूँ?" (लहरों के राजहंस पृ. 120)

नंद रूपवती पत्नी सुंदरी को पाकर भी उस व्यक्ति के समान है जो अनिर्णय, अस्थिर मनोवृत्ति वाला है। नंद द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करना, केशों को त्यागना, उसके मन के विपरीत किया गया कार्य है। इसलिए वह कहता है– "तथागत के आदेश से तुमने मेरे केश काट दिए। बड़े भाई के सम्मान के कारण मैं उन क्षणों के लिए विमूढ़–सा हो रहा बलपूर्वक विरोध नहीं कर सका परंतु उसके बाद मैं अपना उत्तर उन्हें दे आया था।" (लहरों के राजहंस पृ. 109) आगे नंद के मानसिक अंतर्द्वंद्व की सीमा नहीं रह जाती। क्योंकि उसके सामने प्रश्न है कि वह अपनी

रूपवती पत्नी सुंदरी को क्या उत्तर दे? नंद के इस अंतर्द्वंद्व को अलका स्पष्ट करते हुए श्वेतांग से कहती है– "कैसा अंतर्द्वंद्व रहा होगा कुमार के लिए"! (लहरों के राजहंस पृ.104)

यही नहीं, स्वयं नंद अपने अंतर्द्वंद्व को स्पष्ट करते हुए कहता है– ''कैसे बताता कि मृग के स्थान पर एक नोच खाई ठठरी को देखकर मुझे कैसा लगा? और कि फिर क्यों मैं अचानक उस गुरगुराकर सामने से आते व्याघ्र से उलझ पड़ा? जानता था कि यह प्रवृत्ति आत्म–विनाश की है परंतु उस प्रवृत्ति को मैं रोक क्यों नहीं सका? क्यों मैंने जान–बूझकर आत्म–विनाश को निमंत्रित किया और फिर स्वयं ही आत्म–रक्षा के लिए उस तरह लड़ गया?'' (लहरों के राजहंस पृ. 113) वस्तुतः यह आत्म–विनाश और कुछ नहीं, वह है अपने कर्तव्यों को न पहचानना। जिसे नंद इसलिए नहीं पहचान पाया क्योंकि उसके लिए सुंदरी ही सब कुछ रही है। नंद को भले पराजित व्यक्ति नहीं भी कहें तो भी वह एक ऐसा व्यक्ति है जो अपने स्वाभाविक वृत्ति से इतर है और जो रूपवती पत्नी सुंदरी को पाना चाहता है और उसे वह कभी भी छोड़ना भी नहीं चाहता, इन दोनों स्थितियों के बीच वह उलझा है। वह कहता है ''लगता है मैं चौराहे पर खड़ा एक नंगा व्यक्ति हूँ जिसे सभी दिशाएँ लील लेना चाहती हैं और अपने को ढकने के लिए उसके पास कोई आवरण नहीं है।'' (लहरों के राजहंस पृ 122) यदि हम इसे उनके नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' के समकक्ष रखें तो लगता है कि कालिदास तो कम–से–कम मल्लिका को छोड़कर वितृष्णा और भीषण अंतर्द्वंद्व से अपने को बचाने की कोशिश करता भी है, लेकिन नंद सुंदरी के रूप में ऐसा बंधा है कि उसको छोड़ पाना कठिन है।

इसी तरह नाटक 'आधे–अधूरे' की सावित्री की मनोदशा पढ़ पाना खासी मानसिक कसरत है और वह आरंभ से लेकर जिस ओर चलती है जैसे वह किसी पूर्णता की तलाश में है किंतु उसे ऐसी पूर्णता अंत तक नहीं मिल पाती है। यह कहा जा सकता है कि मोहन राकेश किसी अपरिचित की परछाया लेकर आत्मविश्लेषण करना चाहते हैं और फिर स्त्री पात्रों को लेकर।

नाटककार कालिदास नंद की मानसिक स्थिति को व्यक्त करने और नाटक के पात्रों के अंतर्द्वंद्व के भावोत्पादक तत्वों तक अवश्य पहुँच सके हैं जिसकी अनुभूति पाठक, दर्शक, श्रोता ने भी की। परंतु पूर्णता की तलाश और अंतर्द्वंद्व से छुटकारा किसी को नहीं मिला। मल्लिका कालिदास–कालिदास करती ड्योढ़ियों के किवाड़ खोल तो लेती है लेकिन बाहर जाने के लिए ज्यों ही उसके कदम आगे बढ़ते हैं उसी वक्त गोद के अबोध को देख रुक जाते हैं। इसी तरह सुंदरी की पराजित मनोदशा का अनुमान उसके इन शब्दों से सहज ही लगाया जा सकता है कि– ''इतना ही तो समझ पाते है ये लोग.....बस इतना ही समझ में आ पाता है। इससे अधिक कभी समझ भी नहीं

पाए, कभी नहीं समझ पाएँगे।" (लहरों के राजहंस पृ. 125) वस्तुतः यह प्रक्रिया पुराने नए के बीच की है।

मोहन राकेश के नाटकों के परिप्रेक्ष्य में यह कहना ज्यादा न्यायसंगत होगा कि भले ही अंतर्द्वंद्व उनके नाटकों में पूर्णतः व्यक्त नहीं हो पाया है परंतु अव्यक्त रहा हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। यह सच है कि कभी कालिदास प्रकृति–सुषमा, राजसत्ता से बंध जाता है, तो कभी नंद नारी लावण्य अथवा उसके रूप–दर्प में अपनी खुशी, और यहाँ तक कि अपने जीवन का विकास देखता है। लेकिन, यह बंधन की स्थिति नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' से शुरू होकर 'लहरों के राजहंस' तक आते–आते कम होने लगती है। आगे 'आधे–अधूरे' में तो यह बिलकुल स्वच्छंद है। कहानी का यह अपरिचित–सा लड़का नाटकों में आकर बड़ा हुआ है और अपने हृदय में तरंगित होती संवेदनाओं का आत्मविश्लेषण कर रहा है। उसके अंदर की यह द्वंद्वात्मक स्थिति न कोई देख पा रहा है और न ही वह दिखा पा रहा है।

इन सब के बावजूद प्रश्न यह कि आखिर तलाश किसकी है? क्या मल्लिका के लिए कालिदास, सुंदरी के लिए कपिलवस्तु का राजकुमार नंद, सावित्री के लिए महेंद्रनाथ, सिंघानिया, जगमोहन, या जुनेजा में से कोई एक, अथवा सभी? हम यदि उनके तीनों नाटकों को लें तो ऐसा लगता है कि नाटककार उसी अपरिचित–से को विभिन्न नाटक पात्रों में रख आत्मान्वेषण कर रहे हैं। नाटककार के सामने वही प्रश्न है जो 'आषाढ़ का एक दिन' के कालिदास के समक्ष है, जो 'लहरों के राजहंस' के नंद के समक्ष है, यही प्रश्न सावित्री के सामने भी है। यद्यपि यह अपरिचित–सा अपने में अपना होना ढूँढ़ रहा है, अपने वास्तविक धरातल को ढूँढ़ रहा है। यह नाटककार की कल्पना मात्र नहीं और न ही उसकी चेतना अपने में अपने होने की तलाश तक सीमित है। यह आधुनिक दौर के प्रत्येक मनुष्य की भी कमोबेश यही तलाश है– पूर्णता, स्थायित्व, परिपक्वता, सुकून, खुशी, कशमकश भरे वातावरण की चौपाटी से किसी राह को चुनने की, जो एकांत तथा संतुष्टि तक के मुकाम तक उसे पहुँचा दे। लेकिन जैसा कि कालिदास कहता है– यह संभवतः इच्छा का समय के साथ द्वंद्व था परंतु देख रहा हूँ कि समय अधिक शक्तिशाली है। क्योंकि.... क्योंकि वह प्रतीक्षा नहीं करता।

सहायक–ग्रंथ :

1. सिंह, बच्चन, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2011.
2. राकेश, मोहन, आषाढ़ का एक दिन, दिल्ली : राजपाल एंड संस, 1958.
3. राकेश, मोहन, लहरों के राजहंस, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1993.
4. राकेश, मोहन. आधे–अधूरे, इलाहाबाद : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2006

5. कालिदास, शाकुंतलम्, हिंदी रूपांतरकार, मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन।
6. कालिदास, मेघदूतम्, हिंदी रूपांतरकार, महावीरप्रसाद द्विवेदी, इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, 1924.

❑❑❑

हम अभी तक 'व्यक्ति' या 'मैं' नहीं है। हम इसी 'व्यक्तित्व' को प्राप्त करने लिए संघर्ष कर रहे हैं– और वह अनंत है, वही मनुष्य का प्रकृत रूप है।

(ज्ञान योग पुस्तक का अंश)
–स्वामी विवेकानंद

नदियों के अस्तित्व संघर्ष की कविताएँ



डॉ. शशि शर्मा

लेखिका, सिलीगुड़ी, पश्चिम बंगाल

नदी हमारी चेतना का अभिन्न अंग है। इतिहास साक्षी है कि मानव सभ्यता और संस्कृति का उत्स नदियों के किनारे हुआ। नदियों के बिना मानव जाति के विकास की परिकल्पना असंभव थी। नदियों ने मानव जाति के साथ सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाकर मानव जाति के विकास में पूरा सहयोग किया। उसकी दैनंदिनी की हर जरूरत को पूरा किया। परंपरागत समय में मानवजाति ने नदियों के इस आत्मीय सहयोग को पूरा मान–सम्मान दिया किंतु आज लोभ और लाभ की मनोवृत्ति की वजह से नदियाँ संकट में हैं। कहीं नदियाँ अपने अस्तित्व को बचाने के लिए बिलख रही हैं तो कुछ अतिशय प्रदूषण से ग्रसित अपनी अस्मिता और सौंदर्य को बचा पाने में असमर्थ दिख रही हैं। 'सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट' द्वारा प्रकाशित 'डाउन टू अर्थ' पत्रिका की संपादक सुनिता नारायण लिखती हैं– "जो समाज अपने सर्वाधिक कीमती प्राकृतिक खजाने अपनी नदियों को खो देता है, वह समाज निश्चित रूप से अभिशप्त है। हमारी पीढ़ी अपनी नदियों को खो चुकी है।"[1]

प्रकृति को अपने जीवन का अभिन्न हिस्सा माननेवाली मनीषा झा समकालीन दौर की महत्वपूर्ण कवयित्री है। उनकी कई कविताएँ नदियों पर केंद्रित हैं जिनके मार्फत वह नदियों के प्रति मनुष्य की असंवेदनशीलता, अतिशय भोगवादी मानसिकता, स्वार्थवृत्ति, औद्योगिकीकरण, बाजारीकरण, प्राकृतिक प्रदूषण की ओर ध्यानाकर्षित करती हैं। नदियों के प्रति उनमें एक गहन आत्मीय लगाव है। वे जानती हैं "पानी से पलती है संस्कृति/पानी के तट पर/बहती है सभ्यता"[2]। बालासन नदी को संबोधित इन पंक्तियों में नदियों के प्रति कवयित्री की भावना सहज समझी जा सकती है। "एकांत की साथिन/मेरे कितने ही विचारों को सँवारा होगा तूने/कितने ही आवेगों को/दिया होगा सहारा/कितनी ही पंक्तियाँ जन्मी होंगी/तेरे सान्निध्य में और समा गई होंगी/किसी कविता में/जैसे बहते–बहते तू मिल जाती गंगा में।"[3]

कवयित्री प्रकृति के इस महत्वपूर्ण अंग के साथ तदाकार हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि नदियों के बिना कवयित्री एकांगी हैं और नदियों को भी कवयित्री

की निश्छल आत्मीयता पर पूरा भरोसा है। उनकी कविता में नदियाँ मानों सखी बनकर अपना दुःख–सुख बतियाने आती हैं। कवयित्री भी पूरी ईमानदारी के साथ इस निःशब्द आत्मिक मैत्री संबंध का निर्वहन करती हुई दिखाई पड़ती है।

शहरीकरण की आंधी में नदियों का अतिक्रमण किया जा रहा है। खासकर शहरी क्षेत्रों में बहनेवाली नदियाँ अतिक्रमण का शिकार हो अस्तित्वहीन हो चुकी है या होने के कगार पर हैं। कवयित्री 'उसके सिकुड़न की भाषा को पढ़' लेती है – "पानी का सोता सूख जाने से/सिकुड़ी पड़ी हैं तमाम नदियाँ /मेरे बिलकुल पास से बह जाने वाली/तीस्ता हो महानंदा या बालाशन की अंगड़ाइयाँ।"[4] (शिशिर का आना)

नदियों की इस दुर्दशा के मूल में शहरीकरण और व्यावसायिक मनोवृत्ति है। तथाकथित सभ्य शहरी मनुष्यों के लिए नदियाँ धन–उगाही का जरिया बन चुकी हैं। जल प्रदूषण एक गंभीर समस्या बनी हुई है। विडंबना यह है कि नदियों का जल पीने योग्य नहीं रहा। न मानव के लिए, न मानवेतर जीवों के लिए। नदियों की इस दुर्दशा से आहत कवयित्री असंवेदनशील शहरी सभ्य मनुष्य से प्रश्न करती है।

"नदी की आँखों में केवल एक उबाल है/समझो/दूध उबल–उबल के हो जाए भूरा/फिर दूध का दूधियापन कहाँ खोजते हो!/क्या खोजते हो!/पानी में दूध या दूध में पानी/नगर में बसनेवालों, तुम नागरिक हो!/नागर हो!"[5]

नदियों की महत्ता को अगर कोई समझता है तो वह है ग्रामीण। शहरी लोग इन ग्रामीणों को गँवार मानते हैं। मनीषा झा मानती है कि ये गँवार कहे जाने लोग ही वास्तव में नदियों के रक्षक हैं। नदी उनके लिए पूजनीय है, नदी का मर्म वे बखूबी जानते हैं। वे लिखती हैं–

"नदी का मर्म जानते हैं वे/जो रहते हैं तुमसे दूर/करते हैं उसे प्रणाम/नदी मिले तो मिले/नहीं तो जलाशय को ही/वे कहलाते हैं गँवार"[6]

मनीषा झा नदियों की महत्ता पर दो दृष्टियों से विचार करती है। शहरी लोगों के लिए नदी सौंदर्य का साधन मात्र है। वे भोगवादी दृष्टि से प्रकृति को देखते हैं जबकि ग्रामीण लोगों के लिए नदी उनके जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। नदियों का जल है तो खेतों में अन्न है, हरियाली है, आरोग्य है, समृद्धि का सौंदर्य है।

मनीषा झा ने अपनी कई कविताओं में नदियों की दुर्दशा का आख्यान रचा है। नदियों का उत्खनन भयावह रूप ले चुका है– "अब परिदृश्य में थी नदी/उत्खनन से उग आया घाव/जहाँ–तहाँ।"[7] अपनी पीड़ा से आहत कवयित्री जब नदी के पास पहुँचती है, तो "देखती हूँ उसके शरीर पर सैकड़ों घाव/ उत्खनन कर किसी ने बाँध दिया था उसे।"[8] जब से 'रियल स्टेट' का कारोबार बढ़ा है, नदियों का गैरकानूनी तरीके से उत्खनन बढ़ता जा रहा है। जल, रेत, बालू आदि सब पर पूंजीपतियों का कब्जा है। नदी बेबस और लाचार दिख रही है। नदी की सिसकी को महसूसते हुए कवयित्री मनुष्य

की संवेदनहीनता की पराकाष्ठा का दृश्य खींचती हैं– "रेत और बालू को पाना/रिक्त हो जाना नहीं उस आदमी के लिए/पूंजी के समंदर में डुबकी लगा लेना है/बहुत सफाई से कोई खुदवा रहा है/नदी की आत्मा/नदी सिसक रही है घायल होकर।"[9]

मनीषा झा की नदी केंद्रित कविताओं में नदियों का बहुआयामी यथार्थ उभर आया है। हमारी सभ्यता और संस्कृति की पहचान, सबके पापों को धोनेवाली, सहनशील, पूजनीय गंगा नदी मानवीय स्वार्थपरता की बलि चढ़ चुकी है। 'माँ' का संबोधन देकर भी उसे स्नेह, करुणा और सम्मान से वंचित किया जा रहा है। धर्म और आस्था का केंद्र गंगा नदी पूंजी और व्यापार का केंद्र बन चुकी हैं। गंगा नदी की धवलता और शुद्धता नष्ट हो चुकी है। इस विडंबना पर कवयित्री लिखती है– "गंगा तेरे नाम पर पूंजी अपार है/शोर है व्यापार है/धर्म है नीति है दंड है राजनीति है/श्रद्धा भी है थोड़ी बहुत/सिर्फ कमी है करुणा की/प्रेम का अभाव है तो क्या हुआ/गंगा तेरे नाम पर/कितना कुछ है व्यवस्था में/तू माँ है, सहना ही चाहिए तुझे/कहते हैं वे/और करते हैं मौज।"[10]

इस संदर्भ में सुनिता नारायण का कथन उल्लेखनीय है– "हम नदियों को चूसकर सूखा छोड़ देते हैं। नदियों को पूजते हुए भी हम उनमें कूड़ा–करकट, प्लास्टिक और न जाने क्या–क्या डाल देते हैं। हम यह सब करते हैं और फिर भी विश्वास है कि नदियाँ पूजा लायक हैं। या इसका अर्थ यह है कि हम एक मरी हुई या मरणासन्न नदी की पूजा करते हैं, उनकी दुर्दशा को नजरंदाज करते हुए। आज हमारी नदियाँ मर रही हैं– इनके कई हिस्सों में पानी में घुली हुई आक्सीजन की मात्रा शून्य है। इस कारण इनमें जीवन नहीं है।"[11]

दरअसल कुछ लोगों के लिए 'धर्म' और 'धन' में पार्थक्य नहीं है। यही कारण है कि 'माँ' तुल्य नदी को मारकर भी लोग मौज में हैं।

गंगा नदी के माध्यम से मनीषा झा ने पूंजीवादी शक्तियों के बढ़ते वर्चस्व और नदियों के प्रति मनुष्य की बढ़ती असंवेदनशीलता और अमानवीयता को बखूबी उजागर किया है। असल में गंगा नदी का घाट आज धर्म और पाखंड का अड्डा बन गया है जहाँ आस्था के नाम पर पूंजी का घिनौना खेल खेला जा रहा है– "गंगा तेरे नाम पर/गिरती जा रही मुद्रा/साधुओं–कीर्तनियों की झोली में/तेरे घाटों पर उछल–कूद कर/देखो कैसे चले जा रहे/गाते हुए गरदन फुलाकर"[12]

नदियों के विनाश में बाजारवाद का बढ़ता प्रभाव भी एक प्रमुख कारक है। गंगा नदी की शुद्धता ही बाजारवाद की बलि नहीं चढ़ गई है बल्कि जलचर प्राणियों का अस्तित्व भी खतरे में है। क्योंकि कवयित्री के शब्दों में "दरअसल पानी नहीं रहा पानी/सभी के लिए/कि दिन–दहाड़े विष घुलाए जा रहे हैं।"[13] प्लास्टिकों का बढ़ता प्रयोग, कल–कारखानों का कचरा, केमिकल नदियों में जहर घोल रहा है जिसके

परिणामस्वरूप "बीमार हो गई कारखानों का मल खाकर/सिर्फ कुछ मछलियाँ/पॉलीथीन में फँसकर घुट गईं/कुछ/छोटे जलचर/केमिकल का रस पीकर/चल बसे जल की दुनिया से।"[14]

मनीषा झा की दृष्टि व्यापक है। यही वजह है कि वे तथ्य की गहराई में उतरती हैं। नदियाँ सिर्फ जल–संसाधन नहीं, रेत या बालू प्रदाता नहीं बल्कि जलजीवों के लिए उनका सर्वस्व है। सिर्फ जलजीव ही नहीं, पेड़–पौधे, वन्यप्राणी और आकाश सभी की जीवन–रेखा है। आकाश के साथ नदी की आतंरिक संबद्धता को केवल मनीषा झा की सूक्ष्म और संवेदनशील दृष्टि ही देख सकती है – "आकाश काँप उठता है/पानी को झकझोरने से/चाहे नदी का हो/चाहे तालाब का/चाहे तलैया का/या अंजुरी का...."[15]

इसी तरह एक कविता है– 'उदासी का छंद' जिसमें हवा की उदासी का सुंदर बिंब खींचा गया है। मनुष्य द्वारा प्रकृति के अतिशय दोहन–शोषण से हवा उदास हो गई हैं। हवा गा रही/उदासी/पृथ्वी अप्रसन्न लग रही/बसंत में भी/समुद्र में सभ्यता का शोर है/नदियाँ हो चलीं बेसुरी/सिमट रहा है झरनों का वेग"[16]

मनीषा झा ने अपनी कविताओं में कई नदियों का उल्लेख किया है। हुगली नदी उनमें से एक है। इस नदी के प्रति कवयित्री का विशेष अनुराग दिखाई देता है। घर और ऑफिस के बीच बहती हुगली नदी कवयित्री की भागदौड़ भरी जिंदगी का एक अहम हिस्सा है। इस नदी के साथ उनका एक सहज आत्मीय संबंध स्थापित हो चुका है। तभी तो– "फिर चाहे जितनी भी जल्दी हो/काम पर जाने की/रोक ही लेती है नदी/और दे देती है/थोड़ी फरहर नमी/ताकि मुस्करा सकें हम/कामों के बीच।"[17] हुगली नदी की 'फरहर नमी' भरी आत्मीयता कवयित्री में न केवल शारीरिक ऊर्जा बल्कि मानसिक ऊर्जा का संचार भी करती है ताकि वे अपने कर्तव्य का निर्वहन अच्छी तरह से कर सकें।

यह कहना गलत नहीं है कि जल प्रदूषण की स्थिति चिंतनीय है। मनीषा झा की 'हुगली नदी–2' शीर्षक कविता नदियों की इसी समस्या का आख्यान है। साफ–सुथरी नदियाँ आज रक्तवर्णा हो रही हैं। कल–कारखानों से निकला कचरा नदियों के सौंदर्य को ही नष्ट नहीं कर रहा अपितु उसे विषैला भी बना रहा है। उसकी धारा को अवरुद्ध कर रहा है जिससे उसमें रहनेवाले प्राणियों का जीवन संकट में हैं। नदी पेय जल का एक बड़ा संसाधन है। मनीषा झा नदियों की इस दुर्दशा से चिंतित हैं– "देखो/नदी का पानी साफ था पहले/पानी की तरह/हो गई है नदी/अब मिट्टीवर्णा/नदी लगती है यह/धारा के कारण ही/वरना यही लगेगा/कि मिट्टी का थक्का/और देखो रक्तवर्णा/हो रही है नदी धीरे–धीरे/फिर मत कहना/कि खून बह रहा है।"[18]

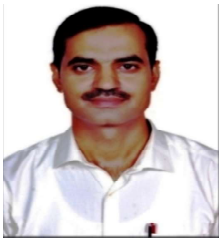
अंततः यह कहा जा सकता है कि प्रकृति प्रेमी, पर्यावरण सजग कवयित्री मनीषा झा की कविताओं में नदियों का बहुआयामी परिप्रेक्ष्य वर्णित है। वे नदियों की भाषा को समझती हैं, उनकी सिसकी को महसूस करती हैं। उनके साथ अंतःकरण से आबद्ध होती हैं। नदियों को लेकर उनकी दृष्टि संवेदनात्मक है। वह अपनी कविताओं में नदियों की दुर्दशा का आख्यान ही नहीं रचती, मानव जीवन के संदर्भ में नदियों की महत्ता और आवश्यकता पर गहन चिंतन करती हैं। आज नदियों के संरक्षण के लिए कई योजनाएँ लागू की गई हैं, फिर भी नदियों की आत्मा सिसक रही है। मनीषा झा इस तथ्य पर जोर देती हैं कि नदी और मनुष्य का पुरातन आत्मिक संबंध है। उस संबंध को पुनर्जीवित करके ही हम अपनी इस धरोहर का संरक्षण कर पाएँगे। नदियों को बचाना हमारा कर्तव्य ही नहीं है, हमारी जरूरत भी है– यह समझना बहुत जरूरी है।

संदर्भ

1. सं. सुनिता नारायण, डाउन टू अर्थ, सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट, नई दिल्ली, 2020, पृ.3
2. मनीषा झा, कंचनजंघा समय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2017, पृ.91
3. धूमकेतु, कोलकाता, डिजिटल अंक, 2022, पृ.14
4. सं. शंभुनाथ, वागर्थ, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, जून 2022 अंक, पृ.49
5. मनीषा झा, कंचनजंघा समय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2017, पृ.108
6. वही, पृ.108
7. वही, पृ.108
8. सं. शंभुनाथ, वागर्थ, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, जून 2022 अंक, पृ.49
9. मनीषा झा, कंचनजंघा समय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2017, पृ.61
10. वही, पृ.88
11. सं. सुनिता नारायण, डाउन टू अर्थ, सेंटर फॉर साइंस अंड एनवायरमेंट, नई दिल्ली, 2020, पृ.3
12. मनीषा झा, कंचनजंघा समय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2017, पृ.61
13. वही, पृ.93
14. वही, पृ.88
15. मनीषा झा, शब्दों की दुनिया, आनंद प्रकाशन, कोलकाता, 2013,पृ.9
16. मनीषा झा, कंचनजंघा समय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2017, पृ.102
17. मनीषा झा, शब्दों की दुनिया, आनंद प्रकाशन, कोलकाता, 2013,पृ.18
18. वही, पृ.19

❑❑❑

निर्गुण संत साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री–चिंतन का स्वरूप



डॉ. अशोक कुमार मीणा
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

भक्तिकालीन साहित्य एक अखिल भारतीय जातीय काव्य है। यह किसी वर्ग या संप्रदाय के हित के लिए नहीं लिखा गया बल्कि यह जिस आंदोलन की उपज है, उसमें हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, जुलाहे, किसान, कारीगर और दस्तकार सभी शामिल थे। यह एक ओर यदि तत्कालीन राज्य सत्ता का विरोधी है तो दूसरी ओर सामंतवाद, पुरोहितवाद का उतना ही कटु आलोचक भी है। इस भक्ति आंदोलन में सभी वर्ग, सभी क्षेत्रों की जनता की सामूहिक संवेदनाओं का सार मिला हुआ है, इसलिए समाज में आज भी इसका असर मौजूद है।

शास्त्रों का सार है ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफलाः'' अर्थात् जहाँ नारी का सम्मान होता है वहाँ देवता रहते हैं और जहाँ पर नारी का अपमान होता है, वहाँ तमाम तरीके से पूजा पाठ के बाद भी देवता निवास नहीं करते हैं। यह केवल उक्ति या आदर्शवादी सिद्धांत नहीं है वरन संपूर्ण भारतीय वाङ्मय के सार तत्वों में से एक है। यह बात अलग है कि प्राचीन वैदिक साहित्य में उल्लिखित 33 कोटि देवी–देवताओं में से स्त्री देवियों का प्रतिशत नगण्य ही है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि वेदों में वर्णित देवियों में केवल उन्हीं को स्थान मिल पाया था जो या तो धन संपत्ति की देवी थीं या फिर जिनके बल या क्रोध से मनुष्य डरता था। 'भय बिनु प्रीत न होई...' उक्ति यहाँ सटीक सिद्ध होती है क्योंकि लक्ष्मी, सरस्वती या दुर्गा–काली का दैवीय स्वीकरण कहीं न कहीं मानव के डर और स्वार्थ को परिलक्षित करता है। अन्यथा मानव इतिहास साक्षी है कि स्त्रियों के हिस्से सम्मान कम, गालियाँ भरपूर आई हैं।

भक्तिकाल का साहित्य इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि स्त्रियों की छवि और सहभागिता का अध्याय तब तक लगभग अधूरा ही रहा है जब तक कि स्त्रियों ने स्वयं वहाँ अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं कराई। भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा के बरक्स निर्गुण भक्ति आंदोलन को इस दृष्टि से अपेक्षाकृत ज्यादा प्रगतिशील कहा जा सकता

है कि इसमें न केवल स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान मिल पाया बल्कि स्त्री की छवि भी कुछ सीमा तक यथार्थवादी दृष्टिकोण से चित्रित की गई है। मध्यकालीन निर्गुण काव्य में नारी के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। कहीं नारी को माया बताकर उससे दूर रहने की सलाह दी गई है तो कहीं पतिव्रता स्त्री को कुरूप होने पर भी पुण्य की अधिकारिणी माना गया है। इसका कारण शायद उस समय के समाज के हालात रहे होंगे जो पुरुषप्रधान और पितृसत्तात्मक था। वस्तुतः मध्यकालीन निर्गुण काव्य में ही सर्वप्रथम नारी और शूद्रों को भी भक्ति का अधिकार दिया गया था। इस दृष्टि से मध्यकालीन निर्गुण काव्य अपने आप में क्रांतिकारी और लोकतांत्रिक है कि ''हरि को भजे सो हरि का होई....'' परंतु मध्यकालीन निर्गुण काव्य में नारी को सर्वत्र एक समान चित्रित नहीं किया गया है। चूंकि मध्यकालीन निर्गुण काव्य संप्रदायबद्ध भक्ति मान्यताओं के आधार पर रचा गया है, सभी निर्गुण संतों ने अपने–अपने संप्रदाय की मूल नारीविषयक मान्यताओं के अनुसार ही नारी को भली या बुरी घोषित किया है। मध्यकालीन कवियों ने नारी को दोयम दर्जे में रखकर उसका अस्तित्व पुरुष की सहभागिनी, सहचारिणी, या सहगामिनी तक ही सीमित कर रखा था। नारी को कभी भी स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में चित्रित नहीं किया गया है।

जब संत काव्यधारा की चर्चा चलती है तो कबीर, रैदास, गुरु नानक, सुंदरदास आदि पुरुष संतों की छवि उभरकर हमारे सामने आती है। इनमें कबीर एक क्रांतिचेता और युगचेता उद्‌बोधक के रूप में दिखाई पड़ते हैं। संपूर्ण मध्यकालीन निर्गुण संत काव्य के प्रतिनिधि के रूप में उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अनुकरणीय सिद्ध होता है। लेकिन निराशा का विषय है कि जो कबीर समाज में व्याप्त धार्मिक कर्मकांड, हिंदू मुस्लिम वैमनस्य, पोंगा पंडितवाद, भेदभाव और कुरीतियों का विरोध करते हुए एक समाज सुधारक की भूमिका में नजर आते हैं, वे स्त्री के बारे में निष्पक्ष दृष्टिकोण नहीं रख पाए। कबीर के अनुसार दो तरह की नारियाँ होती हैं। एक नारी तो साधना में बाधा नहीं पहुँचाती है और पतिव्रता होती है और दूसरी नारी जो साधना में अवरोध पैदा करती है। उसे कबीर ने तिरस्कृत किया है, जिससे ज्ञात होता है कि मूलतः कबीर नारी विरोधी नहीं थे। कबीर के नारी संबधी विचारों में एक बात और निकल कर आती है, वो है पुरुष प्रधान समाज का अहं। ये अहं ही है जो नारी को मायावी, पुरुषों को जाल में फाँसने वाली और ठगिनी ठहराता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर जैसे प्रगतिशील, कर्मकांड और पाखंडविरोधी, दलित चेतना संबधित क्रांतिकारी विचारक ने भी स्त्री के मूल्यांकन में चूक की है। स्त्री को मात्र कामिनी कहना उसके शरीर की व्याख्या हो सकती है, आत्मा की नहीं। स्त्री का भी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है, इस तथ्य को मध्यकालीन कवियों ने नजरंदाज किया है। धर्म के साथ नारी का क्या विरोध है, यह समझ से परे है। लेकिन ये तो सत्य है कि जो भी व्यक्ति धर्म से जुड़ा है, वो

थोड़ा बहुत नारी के विरोध में तो होता ही है। क्या नारी सिर्फ पुरुष की सेवा के लिए है? क्या उसे हरदम घर में घुटकर रहना चाहिए? क्या स्त्री ईश्वर प्राप्ति में बाधक है? ये कुछ ऐसे विषय हैं जिन पर पुरुष प्रधान भक्तिकालीन कवियों ने मूल्यांकन में चूक की है। ये भोगवादी दृष्टिकोण ही है जिसके चलते नारी को सर्पिणी या ठगिनी घोषित किया गया हैं। भारतीय समाज के पितृप्रधान होने के कारण ही कबीर के विचारों में नारी विरोध के तत्व दिखाई देते हैं। चूंकि कबीर स्वयं स्त्री नहीं थे और ना ही उन्होंने स्त्री की पीड़ा को महसूस किया था इसलिए नारी के प्रति उनका स्वर नारी उत्थान के प्रति मुखर नहीं था :–

"जा तन की झांई परत, अंधा होत भुजंग।
कबीरा तिन के कौन हवाल, जो नित नारी के संग।"

"नागिन के तो दोये फन, नारी के फन बीस,
जाका डसा ना फिर जीये, मरि है बिसबा बीस।"

दूसरी ओर कबीर ने–

"पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप,
पतिबरता के रूप पर बारौं कोटि स्वरूप।"

तथा

"नारी निंदा ना करो, नारी रतन की खान,
नारी से नर होत है, ध्रुब प्रह्लाद समान।"

कहकर पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा भी की है। कबीर की स्पष्ट मान्यता थी कि–

"साधु सती और सूरमा, ज्ञानी और गजदंत,
एतै निकसी न बाहुरे, जो जुग जायँ अनंत।।"

वस्तुतः कबीर का नारी विषयक दृष्टिकोण स्वानुभूति बनाम सहानुभूति के निकष पर नहीं परखा जा सकता। उनका यह दृष्टिकोण तात्कालिक परिस्थितियों और परिवेश के अनुकूल ही था। लेकिन वर्तमान नारी विमर्श के आधार पर कबीर को परखना या स्त्री विरोधी घोषित करना संकीर्ण या एकांगी ही कहा जा सकता है। आवश्यकता है कि कबीर के काव्य को वर्तमान स्त्री विमर्श के सौंदर्यशास्त्रीय मापदंडों के बजाय युगीन परिप्रेक्ष्य में परखा जाए।

मध्यकालीन संत साहित्य में कबीर के साथ ही रैदास का स्थान काफी सम्मानजनक और विशिष्ट है। स्वयं समाज के उपेक्षित वर्ग के प्रतिनिधि होने तथा तात्कालिक जातिगत संकीर्णताओं में उनका काव्य सहज और आत्मानुभूत सिद्ध होता है। संत रैदास चूंकि मीराबाई के गुरु के तौर पर भी विख्यात थे, अतः इनका काव्य काफी हद तक नारी को सम्मान और भक्ति मार्ग में प्रोत्साहन प्रदान करता है। संत रैदास की दृष्टि नारी को कबीर से थोड़ा अलग तरीके से देखती है क्योंकि रैदास भक्त

होने के साथ–साथ गृहस्थ जीवन भी जी रहे थे। इसलिए उन्होंने कंचन कामिनी का विरोध न करके केवल उसकी अति को बुरा बताते हुए घर परिवार छोड़कर वन में भागने वाले वैरागियों को नसीहत दी है–

"बन खोजों पी ना मिला, बन में प्रीतम नाहिं।
रविदास पी हम बसे, रहियो मानव प्रेमी माहिं।"

मध्यकालीन निर्गुण संतों में गुरु नानक का व्यक्तित्व और कृतित्व काफी क्रांतिकारी और विशिष्ट है। इनके कुल 974 शबद (वाणी) 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित हैं। इनका ज्ञानमार्गी निर्गुण चिंतन तर्क और साक्ष्यों को ज्ञान का आधार मानता है। गुरु नानक के समय स्त्री और शूद्र शिक्षा और सम्मान से वंचित थे। लेकिन गुरु नानक शूद्रों और स्त्रियों के पक्ष में क्रांतिकारी धर्म–समाज सुधार की प्रस्तावना द्वारा ज्ञान के दरवाजे सभी के लिए समान रूप से खोलते हैं। जाति की समस्त काराओं, प्रथाओं, परंपराओं, रीति–रीवाजों को गुरु नानक ने व्यर्थ बताया हैं। स्त्री विमर्श के आधुनिक स्वरूपों के लिए इनके स्त्री अस्मिता संबंधी विचार प्रेरणा स्रोत हैं–

"सो किउ मंदा आखीऐ, जितु जंमहि राजान,
भंडहु ही भंडु ऊपजै, भंडै बाझु न कोई,
नानक भंडै बाहरा, ऐको सचा सोइ।"

अर्थात् वह स्त्री क्यों बुरी कही जाए जिससे राजा लोग जन्म लेते हैं। स्त्री से सृष्टि उत्पन्न होती हैं। संसार में कोई जीव स्त्री के बिना उत्पन्न नहीं हुआ है। (नानक) एक सत्य प्रभु ही है जो स्त्री से उत्पन्न नहीं हुआ है। संत गुरु नानक के अनुसार जो नारी अपने प्रिय को पहचानती है, वह सौभाग्यशाली है और जिसने अपने प्रिय को नहीं पहचाना, वही कुरूप, कुटिल, कुलक्षिणी और कुनारी है। गुरु नानक की चेतना निंदा और प्रशंसा के जंजाल में नहीं फँसी है। वे निंदा के स्थान पर निंदित कर्म को त्यागने का परामर्श देते हैं और कुँवारी और सती सुहागिन नारी की सच्चे मन से प्रशंसा करते हैं।

संत दादूदयाल ने नारी को कहीं पर कामिनी कहा है तो कहीं पर भामिनी, लेकिन उसके मोहिनी रूप की सर्वत्र निंदा की है। जबकि अन्य संतों की भाँति उन्होंने भी विरहिणी, आज्ञाकारिणी, सती, पतिव्रता आदि नारी रूपों के प्रति आदर भाव व्यक्त किया है–

"दादू नारी पुरिष कौ, जाणैं जे बसि होई,
पिव की सेवा ना करै, कामणिगारी सोई।''

मध्यकालीन निर्गुण संत परंपरा में नारी–निंदक संतों के शिरोमणि संत सुंदरदास है। उन्होंने नारी के प्रत्येक अंग को नरक के समान कहने में तनिक भी संकोच नहीं किया है–

"उदर में नरक, नरक अध द्वारन में, कुंचन में नरक, नरक भरी छाती है।
कंठ में नरक, गाल, चिबुक नरक किंब, मुख में नरक जीभ लालहु चुचाती है।
नाक में नरक, आंख, कान में नरक बहै, हाथ पाऊं नख–सिख नरक दिखाती हैं।
सुंदर कहत नारी नरक को कुंड मह, नरक मैं जाइ परै, सौ नरक पाती हैं।

लेकिन जब ये ही सुंदरदास सती और पतिव्रता नारी की ओर देखते हैं तो उसकी मुक्त कंठ प्रशंसा भी करते हैं–

"पति ही सू प्रेम होई, पति ही सू नेम होई,
पति ही सू छेम होई, पति ही सू रत है।
पति बिनु पति नाहिं, पति बिनु गति नाहिं,
सुंदर सकल विधि, एक पतिव्रत हैं।"

कवि मलूकदास ने नारी के नेत्रों को भयानक तथा धरनी दास ने उसे बिजली कहा है। उनके अनुसार नारी मिसरी की छुरी है–

"एक कनक और कामिनी, यह दोनों बटपार,
मिसरी की छुरी गर लायके, इन मारा संसार।"

ज्ञानमार्गी कवि ही नहीं, प्रेममार्गी कवि जायसी ने भी अपने 'पद्मावत' में रानी पद्मिनी को ब्रह्मा का प्रतीक मानकर उसके रूप और गुणों की प्रशंसा की है, पर दूसरी ओर सामान्य नारी के रूप में नागमती को गोरखधंधा कहा है। रत्नसेन कहते हैं ''तुम तिरिया मतिहीन तुम्हारी"। इस तरह से वे नारी की क्षुद्रता की ओर संकेत करते हैं।

चित्तौड़ की रानी झांलीबाई एवं उनकी पुत्रवधू मीराबाई संत रैदास की शिष्या बनी थीं। मीराबाई ने अपने कई पदों में गुरु रविदास का जिक्र किया है–

''गुरु मिल्या रैदासजी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी....."

मीराबाई ने सती प्रथा जैसी मध्यकालीन कुरीति का विरोध करते हुए स्वयं के विधवा होने पर भी सती होना स्वीकार नहीं किया–

"जग सुहाग मिथ्या रे, सजणी होवां हो मिट जासी,
गिरधर गांस्या, सती न होस्या, मन मोहयों धनमाणी।"

हिंदी साहित्य के अधिकांश आलोचकों ने संत साहित्य का मूल्यांकन करते समय अपनी समीक्षा का विषय पुरुष संतों की रचनाओं के इर्द–गिर्द ही रखा है। साहित्य के अधिकांश इतिहासकारों ने भी नारी संतों को अपने इतिहास ग्रंथों में उचित स्थान नहीं दिया है। नारी संतों में केवल मीराबाई का ही वैशिष्ट्य स्वीकार किया गया है तथा मात्र उनका ही कुछ सीमा तक उचित मूल्यांकन हिंदी आलोचकों द्वारा हुआ है। मध्यकालीन निर्गुण काव्य में कुछ नारी संतों का भी योगदान है जैसे दयाबाई, सहजोबाई, पद्मावती, सुरसरि इत्यादि। इन नारी संतों ने भी अपनी रचनाओं में नारी

के विविध रूपों का वर्णन किया है। संत नारियों ने संत गुरुओं के संग–साथ में तथा स्वतंत्र भी रहकर अपनी साधना से, सृजन एवं रचना–कर्म से तथा सक्रिय रूप से सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक क्षेत्रों में दिशा–दर्शी उदाहरण–आदर्श स्थापित किए हैं। नारी संतों की अधिकतर रचनाएँ गुरु के महत्व की स्थापना तथा अपने आराध्य की प्राप्ति के लिए उनकी विकलता के विषयों पर ही मिलती हैं। परंतु इनके साथ–साथ उनकी सामाजिक चेतना भी इन रचनाओं में मुखर होती है। नारी संतों ने अपनी रचनाओं में केवल उपदेश ही नहीं दिया है, बल्कि अपने विचारों को अपने जीवन में उतारकर उनकी व्यावहारिकता का भी प्रमाण प्रस्तुत किया है। मध्यकालीन विपरीत सामाजिक परिस्थितियों में भी इन नारी संतों का अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी आवाज मुखर करना प्रशंसनीय है।

18वीं शताब्दी के प्रमुख संत श्री चरणदास जी ने स्त्रियों को अपने चरणदासी संप्रदाय में स्थान दिया। अलवर, मेवात, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, पूर्वी उत्तर प्रदेश तक उनके संप्रदाय की पहुँच थी। उनकी शिष्याओं में सहजोबाई प्रथम थीं जिन्होंने ज्ञान व योग जैसी कठिन साधना पर अधिकार किया। सहजोबाई का एकमात्र ग्रंथ 'सहज प्रकाश' है जिसमें गुरु महिमा, गुरु की विशिष्टता, गुरु विमुखता के कष्टों, साधु महिमा, प्रेम, निर्गुण संशय निरूपण आदि का सरल भाषा में उल्लेख है। सहजोबाई की मान्यता थी कि साधु कनक और कामिनी को छोड़कर ही चलते हैं–

"तन मन मैटे खैद सब, तज उपाधि की चाल,
सहजो साधु राम के, तजै कनक अरु बाल।"

नारी संत दयाबाई राजस्थान निवासी महिला कवयित्री थीं। इनके गुरु भी संत चरणदास थे जिनके सान्निध्य में रहकर इन्होंने 'दया बोध' नामक काव्य–संग्रह का संकलन किया। निर्गुणपरक पद, साखी, चौपाई आदि इस संग्रह के भाग हैं।

स्त्री संतों में पार्वतीबाई ने अपने पदों में नारी में रुचि नहीं रखने वाले को और धन यौवन में लीन न होने वाले को श्रेष्ठ पुरुष माना है–

"धन जोबन की करें ना आस, चित ना राखे कामिनी पास।
नाद बिंदु जाके घट करे, ताकी सेवा पार्वती करे।"

इसी प्रकार अन्य मध्यकालीन निर्गुण नारी संतों जैसे संत ताजबीबी, संत इंद्रामती, संत कमाली, संत बहिणाबाई, संत आभाबाई आदि के नारी संबंधित विचार कमोबेश इसी प्रकार के ही थे। सहजोबाई, दयाबाई, सुंदर कुंवरीबाई आदि अन्य नारी संत रचनाकार हुईं हैं जिन्होंने सार्वजनिक जीवन में स्वयं प्रवेश कर स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता का दिशा–निर्देशन किया। इनकी रचनाओं का अपेक्षित मूल्यांकन संभवतः आलोचकों के एकपक्षीय दृष्टिकोण या पुरुषवादी सामंती विचारधारा के कारण नहीं हो पाया है। कुछ आलोचकों जैसे सावित्री सिन्हा, बलदेव वंशी, सुमन राजे इत्यादि ने

नारी संतों की रचनाओं का उचित मूल्यांकन कर उनकी रचनाओं की विशेषताओं से पाठकों को अवगत कराया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सहजोबाई, दयाबाई आदि की गुरुभक्ति, भगवद् प्रेमभाव, भावविह्वलता, आत्मसमर्पण का उल्लेख अत्यंत संक्षिप्त रूप में किया है किंतु मध्यकालीन पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के प्रति उनके विद्रोह की कोई चर्चा नहीं की है। यही स्थिति मिश्रबंधुओं के 'मिश्रबंधु विनोद' प्रथम खंड के पूर्व माध्यमिक हिंदी तथा प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी में मिलती है। इनमें कल्याणी, गंगा, जमुना, नवल आदि संतों के समय और ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय तो दिया गया है किंतु मीरा के विद्रोही तेवर को रेखांकित नहीं किया गया है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में संत चरणदास की शिष्याओं के रूप में सहजोबाई तथा दयाबाई तथा गृहस्थ आश्रम में उनके विश्वास का उल्लेख किया है। आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी ने 'हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' में राबिया और रामानंद की शिष्याओं सुरसरि और पद्मावती का तथा डॉ. सावित्री सिन्हा ने 'मध्यकालीन संत कवयित्रियाँ' में उमा और पार्वती का उल्लेख मात्र किया है। स्त्रियों की रचनात्मकता पुरुष वर्चस्व तथा सामंती विचारधारा के विरुद्ध थी। अतः पुरुष समाज द्वारा उसकी उपेक्षा स्वाभाविक थी। डॉ. जगदीश चतुर्वेदी का अभिमत है कि– "साहित्य की मुख्य धारा ने स्त्री की अस्मिता, आकांक्षाओं, इच्छाओं, जरूरतों, अनुभवों एवं मनःस्थिति की कुल मिलाकर उपेक्षा की है। मुख्यधारा में स्त्री साहित्य को शामिल नहीं किया गया। मध्यकालीन विविध निर्गुण पंथों व संप्रदायों ने भी स्त्रियों की भूमिका और योगदान को लक्षित नहीं किया है।''

वस्तुतः इस संपूर्ण विवेचन का केंद्रीय प्रश्न है कि क्या महिला संतों का दृष्टिकोण पुरुष संतों से स्वानुभूति के कारण भिन्न है या फिर उन्होंने नारी के उद्धार हेतु लिखा है? दूसरा यह कि प्रसिद्ध निर्गुण संत कवियों जैसे कबीर, दादू, रैदास आदि की नारी विषयक मान्यताओं से हम परिचित हैं परंतु निर्गुण नारी संतों का स्त्री विषयक दृष्टिकोण सर्वथा नवीन उद्भावना है। वर्तमान स्त्री विमर्श के मापदंडों के आधार पर मध्यकालीन निर्गुण संत साहित्य की परख वर्तमान परिदृश्य में आवश्यक और समीचीन है। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में भी निर्गुण नारी संतों को उचित स्थान प्राप्त नहीं हो पाया है। अतः तात्कालिक समय के नारी विमर्श की दृष्टि से निर्गुण महिला संतों का संपूर्ण लेखन प्रकाश में लाया जाना नितांत आवश्यक और युक्तिसंगत होगा।

प्राथमिक सामग्री :–

- संत वचनावली – डॉ रामेश्वर प्रसाद सिंह, अनुपम प्रकाशन, पटना 1986
- संतवाणी संग्रह – वेलबीडीयर प्रिंटिंग वर्क्स 1932
- सहजोबाई की बानी, इलाहाबाद : वेलबीडीयर प्रिंटिंग वर्क्स, 1913
- दयाबाई की बानी, इलाहाबाद : वेलबीडीयर प्रिंटिंग वर्क्स, 1918

सहायक ग्रंथ सूची :–

1. कबीर, सं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, मुंबई, सन् –1942
2. उत्तर भारत के निर्गुण में पंथ साहित्य का इतिहास, डॉ. विष्णुदत्त राकेश, साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, सं.– 1995 ई.
3. उत्तर भारत की संत परंपरा, पं. परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं.– 1951 ई.
4. भारत के संत महात्मा, डॉ. मनोहरदास, बोरा एंड कंपनी, बम्बई, सं.–1959ई
5. भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार, सं. गोपेश्वर सिंह, भारतीय प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं. 2002 ई.
6. मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आंदोलन, डॉ. पेमाराम, अर्चना प्रकाशन, अजमेर, सं. – 2006 ई.
7. संतों के धार्मिक विश्वास, डॉ. धर्मपाल मैनी, नवजोत प्रकाशन, पंजाब, सं. 1956 ई.
8. संत काव्य, पं. परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1970 ई.
9. हिंदी काव्य की निर्गुणधारा, डॉ. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1995 ई.
10. हिंदी निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ. गोविंद त्रिगुणायत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1985 ई.
11. राजस्थान का संत साहित्य, सं. वीना लाहोटी, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सं. 2002 ई.
12. गुरु नानक वाणी/डॉ. तारन सिंह/पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला/1986 ई.
13. संत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ. सावित्री शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ –1963

❑❑❑

भारतीय संतों की वाणी में एकता की भावना



पूजा पाराशर
प्रचारक दक्षिण भारत हिंदी
प्रचार सभा, चेन्नई

अगर मुदल एडुतल्लाम (अकार से आरंभ है सभी अक्षर)[1]
महान संत, तमिल के महान कवि तिरुवल्लुवर कहते हैं– 'संसार की सभी भाषाओं के अक्षर 'अ' से प्रारंभ होते हैं। संसार में प्रचलित सभी भाषाएँ ध्वनि रूप 'अ' कार से ही आरंभ होती हैं।'

संपूर्ण सृष्टि 25 तत्वों के प्रस्तार–विस्तार से बनी है जिसमें एक 'अहंकार' अपने अंधकार से संपूर्ण ज्ञान व सत्य को ढके रहता है। जब यह अंधेरा मिटता है तभी 'सत्य' अर्थात् एक स्वरूप के दर्शन होते हैं। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं– **''अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयास्थितः।''**[2] (अर्थात् सब भूतों के हृदय में स्थित आत्मा मैं हूँ।)

चित्तवृत्ति के निरोध से ही इस अहंकार का विनाश हो सकता है एवं समरूप के दर्शन। यह समदृष्टि का अधिकार मात्र ऋषि–मुनियों और संतों के पास ही है। **''सर्वत्र समदर्शनः।''**[3] अपनी आत्मा को सब भूत प्राणियों में और सब भूत प्राणियों को अपनी आत्मा में स्थित देखते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है– **''एकैव मानुषि जाति।''**[4] (अर्थात् एक ही जाति है, मनुष्य जाति।)

कबीर कहते हैं– **''जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि हैं मैं नाहिं। सब अंधियारा मिट गया जब दीपक देख्या माहिं।।''**[5] अतः देखा जा सकता है कि हमारे वेद शास्त्र हमारे चित्त पर पड़े अहंकार के पर्दे को हटाने का प्रयास करते हैं। इसी उद्देश्य हेतु समय–समय पर संतों का आविर्भाव होता है जो समाज में अपनी वाणी के द्वारा ज्ञान–प्रसार से उन्नति का मार्ग खोलते हैं।

गुरु नानकदेव जी एकता के भाव को जगाते हुए कहते हैं– **"एक नूर ते सब जग उपज्या।"**[6] (समस्त संसार की उत्पत्ति एक ही प्रकाश से हुई है।) वहीं तुलसीदास जी ने इसी भावना को **'सियाराम मय सब जग जानी'** कहकर व्यक्त किया है। भगवान बुद्ध जहाँ भी जाते थे, वे एक सीधी–सादी बात पर जोर देते थे– **"भलाई से भलाई पैदा होती है और बुराई से बुराई।"**[7]

जब देश बिखर रहा था, धर्म की हानि हो रही थी तभी अद्वैत सिद्धांत के प्रतिपादक आदि गुरु शंकराचार्य ने पूरे देश में धर्म की स्थापना कर एकत्व भाव प्रकट किया। विलुप्त तथा विकृत वैदिक ज्ञान–विज्ञान को उद्भासित और विशुद्ध कर दार्शनिक, व्यावहारिक, वैज्ञानिक धरातल पर समृद्ध किया। ढाई हजार वर्ष बाद आज भी देश के चारों दिशाओं में स्थापित शंकरमठ, दक्षिण के शृंगेरी शंकराचार्यपीठ, पूर्व (ओडिशा) जगन्नाथपुरी में गोवर्धनपीठ, पश्चिम द्वारिका में शारदामठ तथा उत्तर बद्रिकाश्रम में ज्योतिर्पीठ भारत की एकात्मकता को आज भी दिग्दर्शित कर रहे हैं। यह प्रमाण है कि कैसे भाषा की शक्ति संपूर्ण देश को किसी भी परिस्थिति में संभाल सकती है। शंकराचार्य के संपूर्ण दर्शन का आधार वाक्य **''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवौ ब्रह्मैव नाऽपरः।''**[8] है जिनमें चार बातें कही गई हैं – पहला, ब्रह्म ही सत्य है। दूसरा, जगत मिथ्या है। तीसरा, जीव ही ब्रह्म है एवं चौथा जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। जगद्गुरु का यह वाक्य संपूर्ण विश्व को जागृत कर संदेश देता है कि मनुष्य–मनुष्य से भिन्न नहीं अपितु जीवात्मा व परमात्मा एक ही है।

1000 वर्ष पूर्व विशिष्टाद्वैत वेदांत के प्रतिपादक श्री रामानुजाचार्य भक्ति के प्रभाव ने संपूर्ण देश को एक सूत्र में बाँधा। दक्षिण से उत्तर तक भक्ति की इसी लहर को स्वयं कबीर, रैदास जैसे महान संतों के गुरु संत रामानंद ने संपूर्ण उत्तर भारत में फैलाया और रामभक्ति धारा को घर–घर तक पहुँचाया। **''द्रविड़ भक्ति उपजौ–लायो रामानंद।''**[9]

यह एक ऐसा काल था जहाँ समाज जाति–पांति, धर्म के नाम पर विभाजित हो रहा था। तभी श्री रामानुजाचार्य ने इस भेदभाव के बंधन को तोड़ एक नई परंपरा का प्रारंभ किया जहाँ ईश्वर को भजने वाला प्रत्येक प्राणी ब्राह्मण है। उन्होंने गुरु महात्मा 'नांबि' से अष्टाक्षर मंत्र **'ओम नमो नारायणाय'** की दीक्षा ली। महात्मा नांबि ने इस मंत्र को गुप्त रखने के लिए कहा, परंतु आचार्य ने एक मंदिर के शिखर पर चढ़कर सभी वर्णों के लोगों को यह मंत्र सुना दिया जिससे महात्मा क्रोधित हो गए और कहा कि इस अपराध का दंड तुम्हें भोगना पड़ेगा 'तुम्हें नरक मिलेगा'। श्री रामानुजाचार्य जी ने बड़े ही विनय भाव से कहा– 'यदि इस महामंत्र के उच्चारण से हजारों आदमी नरक भोगने से बच सकते हैं तो मुझे यह नरक भोगने में आनंद की प्राप्ति होगी।' **'ओम नमो नारायणाय'** मात्र आठ अक्षरों ने समाज में फैले उस जाति–पांति के हर बंधन को तोड़ दिया, एक नए समाज को उद्घाटित कर एक नए सिद्धांत को प्रतिपादित किया। भाषा कोई भी हो, अपने अंदर पुनर्निर्माण की शक्ति धारण करती है।

दक्षिण के शिव भक्त 'नायनमार' हों या विष्णु भक्त 'आलवार', उन्होंने अपने वचनों द्वारा समाज को एक करने का प्रयास किया, वहीं रामानुजाचार्य की भक्ति का

प्रवाह गुरु रामानंद जी के द्वारा उत्तर में हरित होने लगा। ऐसा काल जहाँ विदेशियों का अधिकार देश पर बढ़ रहा था, लोग धर्म, जाति के बंधन में बुरी तरह फँस चुके थे; उस समय गुरु रामानंद ने अपनी मधुर वाणी से लोगों को मार्गदर्शन दे राष्ट्रहित में अपने संपूर्ण जीवन को सौंप दिया; नारी को आध्यात्मिक मार्ग में आने का रास्ता खोला और उसे सम्मान का अधिकारी बनाया।

उन्होंने भक्ति आंदोलन को एकता का मंत्र दिया – **''जात–पात पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।''**[10] उन्होंने राम भक्ति की ऐसी ज्योति जलाई जो न केवल उत्तर भारत में अपितु आज संपूर्ण देश में प्रकाशमान हो रही है।

ऐसा काल जब राजनीतिक एकता के अभाव, आपसी कलह और विदेशियों के आक्रमण के कारण भारतीय संस्कृति को आघात पहुँचा; मानव मूल्यों का ह्रास होने के साथ–साथ सामाजिक व्यवस्था असंतुलित हो गई थी; राजनीतिक शासन व्यवस्था, समाज, आर्थिक दशा, धार्मिक, साहित्य शिक्षा, कला क्षेत्र अत्यधिक प्रभावित थे, तभी भारत के महान गुरु गोरखनाथ का आविर्भाव हुआ। इनके जन्मकाल के संबंध में विद्वानों के भिन्न मत हैं। डॉ. पीतांबर के शोधानुसार आपका समय 11वीं सदी माना गया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं – **"गोरखनाथ अपने युग के सबसे महान धर्म नेता थे। उनकी संगठन–शक्ति अपूर्व थी।''**

गुरु गोरखनाथ ऐसे महान संत हुए जिनकी वाणी का प्रभाव पूरे देश में फैला। तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मराठी, प्राचीन हिंदी, भोजपुरी, बांग्ला, यहाँ तक कि नेपाली, असमिया आदि कई भाषाओं में भी रचित उनकी दिव्य वाणी आज भी समाज के उद्धार का मार्ग प्रशस्त करती है–

"जीव सीव संगे बासा। बधि न षाइबा रूध्र मासा।
हंस घात न करिबा गोतं। कथंत गोरष निहारि पोतं।।"[12]

(जीव और ब्रह्म का एक ही साथ निवास है। इसलिए हत्या करके रक्त–मांस का सेवन मत करो। प्राण–घात मत करो। सबको अपने ही गोत्र अथवा कुल का समझो। गोरख कहते हैं, सभी में अपने बच्चों (पोत, पूत, पुत्र) को देखो, सब प्राणी उन्हीं जैसे हैं।)

सन् 1486 में असम के नगाँव जिला में जन्मे, वैष्णव धारा के श्रीमंत शंकरदेव एक ऐसे महान संत हुए जो विकाररहित समाज की स्थापना में विश्वास रखते थे। उन्होंने अपने भक्ति से भरे शब्दों के प्रभाव से धार्मिक आडंबर एवं कर्मकांड व्यवस्था को दूर कर समाज में एकता की भावना को प्रतिस्थापित किया। असम के गाँव–गाँव में जाकर एकता का संदेश दिया। उन्होंने किसी भी अन्य धर्म की हिंसा न करने व सभी प्राणियों के प्रति करुणा और सभी धर्मों के प्रति प्रेम रखने का संदेश दिया–

''पर धर्मक निहिंसिबा कदाचित
करिवा भूतकाल दाया सकरुण चित्त
शीत चित्त हुइबा सर्वधर्म्मत वत्सल
एहिं भागवत धर्म जाना महाबल''[13]

(अर्थात् किसी दूसरे धर्म की हिंसा कभी न करना, समस्त प्राणियों के प्रति चित्त में करुणा का भाव रखना, शांत चित्त रहते हुए सभी धर्मों के प्रति वात्सल्य रखना, यही महाबली भागवत धर्म है।)

धर्म के नाम पर अनाचार फैलाने वाले को 'रावण' की संज्ञा देते हुए उन्होंने पशु–बलि, नर–बलि, नशाखोरी, जाति–पांति का विरोध कर अपनी दिव्य वाणी से स्वस्थ समाज का निर्माण किया। 'पुरी' प्रवास में रथयात्रा की दिव्यता से प्रभावित होकर आपने **'उरेषा वर्णन'** नामक खंडकाव्य लिखकर फाग उत्सव को धार्मिक स्वरूप दिया। असम ही नहीं, ओड़िशा में भी आज उनके गीत, उनके संगीत, संस्कार, धार्मिक बंधन समाज में एकता का संदेश स्थापित कर रहे हैं।

12वीं शती के कन्नड़ भाषा के महान कवि संत बसवेश्वरा ने ऊँच–नीच, अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों को अपने दिव्य वचनों द्वारा दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने स्त्री के लिए भी समानता और साधना के मार्ग को खोला। वे कहते हैं–

''लोहा गर्म करके लोहार बने, कपड़े धोकर धोबी,
ताना–बाना बुनकर जुलाहे बने, वेदादि पढ़कर ब्राह्मण
क्या कोई काम से जन्मता है कहीं।''[14]

वे कहते हैं– **"परमात्मा दो हैं, यह सरासर झूठ है।"**[15]

कश्मीर की महान संत एवं कवयित्री लल्लेश्वरी जिन्हें ललद्यद, लल, लल्ला, ललदेवी, लैला, ललारिफा आदि नामों से जाना जाता है। इनके ये नाम ही संदेश दे रहे हैं कि किस प्रकार सभी धर्मों के लोग उन्हें अलग–अलग नामों से पुकारते हैं और उन्हें मानते हैं। उनकी काव्य–शैली को 'वाख' कहा जाता है। **''लल्लेश्वरी का समत्व भाव आज भी लोगों को प्रेरित कर रहा है, वे कहती हैं – 'प्रशंसा या निंदा का हमें बिल्कुल ख्याल नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये दोनों एक–दूसरे को संतुलित करती रहती हैं। इसीलिए हमें सबको समान दृष्टि से देखना चाहिए और समान भाव से ग्रहण करना चाहिए।''**[16]

धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था को संतुलित बनाए रखने हेतु इनका अविस्मरणीय योगदान है। वे कहती हैं–

''थल–थल में बसता है शिव ही, भेद न कर क्या हिंदू–मुसलमां।
ज्ञानी है तो स्वयं को जान, वही है साहिब से पहचान।''[17]

19वीं सदी के महान संत 'इरामलिंगम' (वल्ललार) की रचना 'तिरु अरुट प्रकाश वल्ललार' जो तमिल भाषा में रचित है, आज समाज–देश को प्रकाशित कर रही है।

बहुत ही छोटी आयु में उन्होंने समाज का ऐसा मार्गदर्शन किया जो एक चमत्कार स्वरूप था। वे कहते हैं– **''पवित्र तीर्थ स्थलों की यात्रा, पवित्र जल में स्नान, ईश्वर के विविध रूपों के मंदिरों आदि में दर्शन, प्रार्थना–पूजा, मंत्र–जप सब जीव–कारुण्य (दयाभाव) के बिना वृथा है।''**[18]

सादि समय सड़क्कैविट्टेन
अरुट ज्योतियक्कंडेनडी
अकच्चि ज्योतियक्कंडेनडी[19]

वल्ललार कहते है कि हे सखी! जात–पांत के संघर्ष से मुक्त होकर मैंने ज्योति का दर्शन किया है।

सन् 1608 ई. में एक ऐसे महान संत का आविर्भाव हुआ जिनका प्रभाव पूरे देश में नहीं अपितु पूरे विश्व में फैला, वे थे महाराष्ट्र के 'नारायण सूर्याजी पंत कुलकर्णी' जिन्हें बचपन में 'नारायण' नाम से जाना जाता था। एक बार माता के इतना कहने पर कि तुम दिन भर शरारत करते हो, कुछ काम किया करो। तुम्हारे बड़े भाई अपने परिवार की कितनी चिंता करते हैं! वे दो–तीन दिन बाद एक कमरे में जाकर ध्यानमग्न हो बैठ गए। पूरे परिवार ने सब जगह उन्हें ढूँढ़ा, परंतु वे नहीं मिले। पूरा दिन बीत जाने पर अंत में माँ ने उन्हें कमरे में ध्यानस्थ अवस्था में पाया। वे आश्चर्यचकित हुईं और पूछा कि नारायण, तुम यहाँ पर क्या कर रहे हो? तब नारायण ने जवाब दिया– **''मैं पूरे विश्व की चिंता कर रहा हूँ।''**[20]

12 वर्ष की आयु में अपने विवाह मंडप से उठकर सत्य की खोज के लिए निकल पड़े। 12 वर्ष तक उन्होंने पूरे देश का भ्रमण किया और कठोर तप किया। 13 करोड़ बार राम नाम जप कर 'समर्थ रामदास' नाम से विख्यात हुए। मोक्ष–साधना के साथ स्वराज की स्थापना एवं राष्ट्र को अत्याचारों से मुक्ति दिलाना भी उन्होंने जीवन लक्ष्य बना लिया। जब देश विदेशी आतंक से ग्रसित हो रहा था, तभी वे युवाओं के प्रेरणा स्रोत बन स्वयं महाराज शिवाजी के गुरु बने। उन्होंने युवाओं को समझाया कि स्वस्थ तन और दृढ़ संकल्प जैसी शक्ति से ही राष्ट्र की उन्नति संभव है।

समाज में भक्ति और शक्ति का समन्वय स्थापित करने के लिए समर्थ रामदास जी ने 12 हजार मठों और मंदिरों की स्थापना की। इन्होंने जनता को संगठित करने हेतु भारत के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भ्रमण किया और देखा कि किस प्रकार समाज में कायरता ने पैर पसार लिए हैं; समाज की स्वतंत्रता के लिए वैचारिक क्रांति लाने की आवश्यकता है। वे कहते हैं – ''अहिंसा अक्सर कमजोर का छिपने का स्थान होता है। अहिंसा का दर्शन एक कायर और कायर को तुरंत आकर्षित कर सकता है। समर्थ इस संबंध में बहुत गहन और व्यावहारिक थे। यदि सज्जनों को सुखी रहना है तो बुरी शक्तियों को परास्त करना होगा। सज्जनों को ऐसी शक्ति प्राप्त करनी चाहिए कि दुष्ट

भी भयभीत हो। एक कमजोर सज्जन राष्ट्र के लिए कलंक है। राष्ट्रीय जीवन में विवेक एक महान गुण है।''[21] (अनूदित)

गुरु समर्थ रामदास ने मराठी भाषा में 'दासबोध' नामक ग्रंथ की रचना की। इनको मानने वाले 'समर्थ संप्रदाय' या 'रामदासी संप्रदाय' कहलाते हैं। इनका जप–मंत्र **''श्री राम जय राम जय जय राम"** भक्ति और शक्ति का संचार कर आज संपूर्ण देश को एकता के सूत्र में बाँध रहा है। इनके विचारों और कार्यों का प्रबल प्रभाव लोकमान्य तिलक, वीर सावरकर, डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार आदि महान देशभक्तों पर पड़ा।

संत–प्रवृत्ति में दया, प्रेम, करुणा, समभाव, समदृष्टि, साधना व सत्यता सदा समाहित होती है। संत का लक्ष्य सत्य को पाना और समाज को सत्य से परिचित कराना; उसके दर्शन कराना होता है; जहाँ प्रत्येक बंधन व हर एक विरोध का अंत होता है और ये सब भाषा शक्ति के बिना असंभव है। उनकी वाणी न केवल व्यक्ति का उद्धार करती है, अपितु समाज–राष्ट्र को एक कर उन्नति के शिखर पर ले जाती है। यही कारण है कि हमारा भारत देश विश्व की संस्कृतियों और सभ्यता में सदैव श्रेष्ठ रहा है। हमारे आध्यात्मिक दर्शन–मूल में सभी को समदृष्टि से देखने की भावना समाहित है–

"विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।"[22]

और इसी भावना ने संतों की दिव्य वाणी द्वारा राष्ट्रीय एकता की भावना को जागृत कर एकत्व शक्ति का संचार किया।

महर्षि वाल्मीकि स्वयं महाकाव्य रामायण में लिखते हैं–

"नहि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति।।"[23]

यहाँ राम और राष्ट्र एक रूप हो गए हैं। रामायण का राष्ट्रवाद स्पष्ट घोषणा करता है कि जहाँ राम रहेंगे, वहाँ वन भी राष्ट्र बन जाएगा। जहाँ राम ही नहीं, वहाँ राष्ट्र कैसा?

संदर्भ सूची :–

1. http://www.tirukkural.com
2. श्रीमद्भगवद्गीता,10। 20, गोरखपुर : गीता प्रेस, सं. 2016, पृ.178.
3. श्रीरामानुज–भाष्य, श्रीमद्भगवद्गीता, गोरखपुर : गीता प्रेस, सं. 2077, पृ. 211.
4. डॉ शंकर दयाल शर्मा, हमारे चिंतन की मूलाधार, दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, वर्ष 1995, पृ.60.
5. कबीर, hindwi.org

6. डॉ शंकर दयाल शर्मा, हमारे चिंतन की मूलधार, दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, वर्ष 1995, पृ.61.
7. वही, पृ.57.
8. शंकराचार्यः, वेदांतडिंडिमः – 66, sa.m.wikisource.org
9. रमानंद, hi.m.wikipedia.org
10. डॉ उदयप्रताप सिंह, तीर्थराज प्रयाग और रामभक्ति का अमृतकलश, जयपुरः प्रिंट ओ लैण्ड, 2013, पृ.168.
11. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ संप्रदाय, प्रयागराज : लोकभर्ती प्रकाशन, 2019.
12. डॉ. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, गोरखबानी– 227, इलाहाबाद : हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 2004, पृ. 93.
13. डॉ. शुभदा पाण्डेय, वैष्णव भक्तिधारा : श्रीमंत शंकरदेव, वाग्मिता, चेन्नई : तमिलनाडु हिंदी अकादमी (पं.), 2017, पृ. 102
14. डॉ. टी.जी. प्रभाशंकर प्रेमी, बसव मार्ग, त्रैमासिक अप्रैल–जून 2021, बेंगलुरु : बसव समिति, पृ. 32.
15. वही, पृ. 31.
16. पूजा पाराशर, साहित्य सेतु कॉलम, चेन्नई : राजस्थान पत्रिका, 25 अक्टूबर 2021.
17. ललद्यद, वाख–4, क्षितिज, एनसीआरटी, पृ.98
18. रामलिंग स्वामिगल, en.m.wikipedia.org
19. तिरुवरुट्पा, आरामतिरुमुरई– 110 अरुट्काच्चि, tamilvu.org
20. समर्थ रामदास, hi.m.wikipedia.org
21. सुनील चिंचोलकर, समर्थ रामदासांची साहित्य सृष्टि, मुंबई : महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृति मंडल, 2009, पृ. 60–61.
22. श्रीमद्भगवद्गीता, 5। 18, गोरखपुर : गीतप्रेस, सं. 2016, पृ.105
23. वाल्मीकि रामायण 2–37–29, valmiki.iitk.ac.in

❑❑❑

महाराष्ट्र की घुमंतू वासुदेव परंपरा



डॉ. तुकाराम दौड
लेखक, जलगाँव, महाराष्ट्र

महाराष्ट्र में विमुक्त घुमंतू समुदाय की अनेक जनजातियाँ हैं। वासुदेव, वाघ्या–मुरली, नंदी वाले, ज्योतिष, वैदू, गाडिया लोहार, बेलदार, गोंधली, कासीकपड़ी, रावल, गवली, पंगुल, भराड़ी, कोलाटी– ऐसी कई घुमंतू जनजातियाँ महाराष्ट्र में अस्तित्व में हैं। भारतीय लोककला एवं लोकधारा की पहचान वासुदेव, वाघ्या–मुरली, गोंधली, भारुड़, जोगती, पोतराज आदि के माध्यम से होती है। ये लोक उपासक के रूप में जाने जाते हैं। वासुदेव पारंपरिक कलारूप है जो ज्यादातर श्रीहरि भगवान श्रीकृष्ण को समर्पित है। महाराष्ट्र में वासुदेव परंपरा सदियों से चली आ रही है। भारत में वासुदेव कृष्ण उपासकों का एक समुदाय है जो मुख्यतः महाराष्ट्र में पाया जाता है। वे उद्धार करने के लिए गाँवों और कस्बों में घूमकर भक्ति गीत गाकर लोगों द्वारा दी गई भिक्षा पर जीवनयापन करते हैं। समुदाय के कुछ लोग खेती और जानवरों का पालन भी करते हैं। वासुदेव की दीक्षा एक समारोह के माध्यम से होती है जो एक ब्राह्मण लड़के के दीक्षा समारोह के समान होती है। इसके लिए एक कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। इसमें पुजारी लड़के के कान में मंत्र बताता है, फिर वह वासुदेव समुदाय का हिस्सा बन जाता है। वासुदेव अकेले गाँव में घूमते हैं लेकिन कभी–कभी वे समूह के रूप में भी एक साथ होते हैं। वासुदेव प्रातः काल गाँव में घूम–घूमकर भक्ति गीत गाते हैं। इनकी उत्पत्ति के संबंध में कई कहानियाँ है। इनमें से कई पौराणिक प्रकृति की है। इनके अस्तित्व का पहला दर्ज प्रमाण नौवीं शताब्दी के धार्मिक ग्रंथों में मिलता है। विख्यात प्रसिद्ध लोककवि संत तुकारामजी ने वासुदेव समुदाय पर गीतों की रचना की है। मराठी संत साहित्य में वासुदेव लोककला एवं लोकसंगीत को विशेष महत्व दिया गया है। भागवत धर्म के निर्माण एवं प्रबोधन में मानवीय चेतना एवं जनजागरूकता लाने में वासुदेव लोक कलाकार की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। मराठी वाङ्मय एवं लोकसंगीत में संतों की अभंगवाणी को व्यापक करने हेतु अनेक रूपकों एवं गीतों की रचना की। इसके माध्यम से आम जनता तक

विठु माऊली के वारकरी संप्रदाय के विचारों को पहुँचाया जा सका। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र पंढरपुर के विट्ठल–रूखमायी की महिमा समूचे विश्व में अभंग एवं प्रवचन, कीर्तन के माध्यम से पहुँचाई गई है। विदेशों में भी इनके परम भक्त हैं। विट्ठल भक्ति की महिमा का गान वासुदेव गाँव–गाँव में जाकर करते हैं। संत नामदेव, संत जनाबाई, संत ज्ञानेश्वर, संत तुकाराम, संत एकनाथ, संत चोखामेळा, संत सेनानाई आदि द्वारा रचित अनेक रूपकों को वासुदेव अपनी वाणी के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाते हैं। संतों की अमृतवाणी को भजन, रूपक, गोंधली गीत के माध्यम से लोगों का प्रबोधन करते हैं। आज के सूचना प्रौद्योगिकी युग में ताल, मृदंग, बांसुरी के स्वरताल पर श्रीकृष्ण एवं पांडुरंग के रूपरंग की महिमा और लोगों से दान लेने के बाद पूर्वजों के आशीर्वाद पर गीत गाने की परंपरा आज के विज्ञान युग में लुप्त होती जा रही है। वासुदेव की प्राचीन प्रबोधन संस्था को बचाने के लिए केंद्र एवं राज्य सरकार को वासुदेव परंपरा, रीति–रिवाज एवं लोककला का संवर्धन करने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। इस धरोहर की कला, संस्कृति क्षेत्र से जुड़ी स्वयंसेवी संस्थाओं को आगे आने की जरूरत है। आज के आधुनिक युग में वासुदेव घुमंतू समुदाय को कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। यह जनजातीय समुदाय अपने मूल अधिकारों से आज भी वंचित है। घुमंतू समुदाय के विकास के लिए कल्याणकारी एवं विकास योजनाएँ कार्यान्वित करना आवश्यक है।

वासुदेव परंपरा का उद्‌गम– वासुदेव महाराष्ट्र की एक घुमंतू जनजाति है। यह धार्मिक एवं सहिष्णु वृत्ति के होते हैं और भिक्षा माँगकर जीवनयापन करते हैं। इनकी उत्पत्ति के संबंध में ऐसा माना जाता है कि ब्राह्मण ज्योतिष और मराठा कुणबी स्त्री की कोख से सहदेव नामक पुत्र हुआ। इसी सहदेव से वासुदेव की उत्पत्ति हुई, ऐसा वासुदेव जाति के लोगों का मानना है। इनके रीतिरिवाज भी मराठा कुणबी जैसे ही हैं। भिक्षा माँगकर ये अपना जीवनयापन करते हैं। परिवार में लड़का जब बड़ा हो जाता है तब उसका विधिवत दीक्षा–समारंभ किया जाता है। उसके बाद ही ये भिक्षा देना धार्मिक दृष्टि से पुण्य का कार्य माना जाता है। महाराष्ट्र की मराठी संस्कृति में वासुदेव की परंपरा का इतिहास हजार– बारह सौ वर्षों से भी पुराना है। संत नामदेव, संत ज्ञानेश्वर, संत तुकाराम के साहित्य में वासुदेव समुदाय पर अनेक पद एवं रूपक दिखाई देते हैं लेकिन संत एकनाथ महाराज ने इन संतों की तुलना में वासुदेव पर आधारित अनगिनत पदों एवं रूपकों की रचना की है। मूलतः वासुदेव घुमंतू–समुदाय कृष्ण भक्ति परंपरा की एक पिछड़ी जाति है। इनको पुराने जमाने में थुकोट नाम से भी पहचाना जाता है। महानुभाव साहित्य में इनका भ्रीडी नाम से उल्लेख है। इनको हरबोला, जागाकापडी, अंतरवैदीन, कापड़ियाँ आदि नामों से पहचाना जाता है। वासुदेव महाराष्ट्र की प्राचीन परंपरा है। महाराष्ट्र में वासुदेव के कई प्रकार अस्तित्व

में हैं। इसमें वासुदेव गांदली, वासुदेव जोशी आदि प्रकार दिखाई देते हैं। प्रारंभ में इनको वाच्यदेव के नाम से जाना जाता था जो अपभ्रंश था। इनका नया रूप वासुदेव के रूप में प्रचलित हुआ है। महाराष्ट्र की मराठी संस्कृति और भक्ति परंपरा के संदर्भ मे ंमोहन पाटील ने लिखा है कि ''भारतीय हिंदू संस्कृति में लोक देवताओं की पूजा करने वाले अनेक समूह अस्तित्व में हैं। उनकी पूजा अर्चना, धार्मिक उत्सव, यात्राएँ, उनका माहात्म्य आदि श्रद्धा को उन्होंने बढ़ाया।[1] मराठी लोकसंस्कृति में कई घुमंतू समुदाय देवी–देवताओं की उपासना करते हैं और हिंदू सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचार–प्रसार करते हैं। वासुदेव घुमंतू समुदाय विमुक्त घुमक्कड़ समाज का नेतृत्व करता है। सभी घुमंतू समुदाय राम, कृष्ण और विट्ठल के परम भक्त होते हैं। महाराष्ट्र में लॉर्ड ऑफ विठोबा के सबसे ज्यादा परम भक्त एवं प्रचारक वासुदेव समुदाय को माना गया है। अपनी वाणी के माध्यम से विट्ठल भक्ति का गुणगान करते हैं। गीत, भजन के माध्यम से जीवन के आदर्श को प्रस्थापित करते हैं। कथा गीतों में समाज की लोकमान्यताएँ हैं। संतों के रूपकों को गाकर ये जन–जन को प्रभावित कर उनका मनोरंजन करते हैं। ये चलते–फिरते ज्ञानकोश हैं। निरंतर ग्रामीण कस्बों एवं गाँवों में आने–जाने के कारण गाँव की भौगोलिक स्थिति और गाँव के छोटे–बड़े लोगों से परिचित होते हैं। लोगों में अपनी वाणी के माध्यम से समता–सद्भाव का आलेख जगाते हैं।

वासुदेव वंश उस कुल को बोला जाता है जो विट्ठल रूखमाई या भगवान कृष्ण की धार्मिक कहानियों को मंदिर से मंदिर भटकते हुए लोगों को सुनाते हैं। वे भगवान कृष्ण की महिमा का वर्णन करने वाले सच्चे पुरुष भक्त हैं और ज्यादातर त्योहारों के दिन दिखाई देते हैं, विशेष रूप से दिवाली के समय। कृष्ण वासुदेव का यह प्राचीन पंथ भारत में सदियों से अस्तित्व में है और अभी भी महाराष्ट्र में प्रचलित है। इस कुल के हर एक सदस्य को वासुदेव के रूप में जाना जाता है। वे संगीत वाद्ययंत्र चीपल्या या खरतालों (हाथ की झांझ) की धुनों पर भजन गीतों का गायन करते हैं। इस सांस्कृतिक परंपरा का ग्रामीण क्षेत्रों में इस कुल के युवा वंशज पालन करते हैं। यह समूह या एकल वासुदेव के रूप में गाँवों और शहरों में घूमते हैं। वासुदेव के गाने विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं क्योंकि वे या तो सामाजिक मुद्दों को उजागर करते हैं या समाज कल्याण का संदेश देते हैं। वे अपनी अलग–अलग शैली में इन मुद्दों को प्रदर्शित करते हैं जहाँ वे नृत्य के साथ–साथ इन गानों को गाते हैं। वाचिक परंपरा के द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी लोकगायन की यह परंपरा आज भी समाज में विद्यमान है। लंबी–लंबी कथाएँ इन्हें याद हैं। ये ज्यादा पढ़े–लिखे नहीं होते। ये लगभग अशिक्षित होते हैं। घुमंतू जीवन के कारण ये न खुद पढ़–लिख पाते हैं और न ही बच्चों को पढ़ा लिखा पाते हैं किंतु भक्तिभाव और विश्वास के साथ–साथ इनकी गायकी में मनोरंजन

का पुट 'वासुदेव गायन' को लोकरंजकता भी प्रदान करता है। वासुदेव जाति में भिक्षुकी परंपरा के बारे डॉ. शशिकांत सोनवणे ने लिखा है कि ''धर्मभीरू वासुदेव भिक्षावृत्ति के लिए गाँव–गाँव भटकने वाली जाति है। विशेषतया दक्षिण महाराष्ट्र में अधिक मात्रा में फैली हुई यह जाति है। एक कुनबी महिला को ब्राह्मण जाति के ज्योतिष से लड़का हुआ जिसका नाम सहदेव था। वासुदेव जाति इन्हीं सहदेव की उत्पत्ति है ऐसा कहा जाता है। ये लोक भिक्षा मांगकर पेट भरते हैं। योग्य समय पर उन्हें भिक्षा माँगने की दीक्षा दी जाती है।''[2] महाराष्ट्र में वासुदेव समाज के कुछ लोग खेती करके भिक्षा माँगते हैं। ये सभी घुमंतू समुदाय के लोग विट्ठल के परम भक्त हैं। विठु माऊली पर गवळणी गाकर दान माँगनेवाले लोक–कलाकार के रूप में उन्हें देखा जाता है। वासुदेव घुमंतू समुदाय ने लोक–कला के माध्यम से परमात्मा के व्यापक रूप को पहचाना और विकारों को मुक्त करके सद्विवेक मार्ग के पथ पर चलने को कहा। वासुदेव ने संतों के रूपों का एवं अभिव्यक्ति का प्रचार–प्रसार करने का दायित्व विट्ठल भक्ति की विचारधारा के रूप में लिया है। महाराष्ट्र के पैठन के संत एकनाथ महाराज ने मुगलकाल में वासुदेव धर्म का निर्माण करके वासुदेव घुमंतू समुदाय को भागवत धर्म की विजयपताका व्यापक रूप में फहराने के लिए तैयार किया और मुगलों के खिलाफ मराठी संस्कृति के लोगों में जनजागरूकता निर्माण में वासुदेव समुदाय ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, ऐसा भी इतिहास में बताया जाता है। महाराष्ट्र में वासुदेव परंपरा का अस्तित्व संत ज्ञानेश्वर और संत तुकाराम से भी पहले से रहा है। यह घुमंतू लोक कलाकार हैं जो सदियों से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक इस लोक कला को जीवित रखे हैं। पहले इस लोककला से वासुदेव अपना जीवनयापन कर लेते थे किंतु अब वह स्थिति नहीं रही है। यह लोककला धीरे–धीरे विलुप्ति की कगार पर है। इस लोककला के संवर्धन के लिए लोककला अकादमी व सरकार की ओर से इन्हें संरक्षण मिलना चाहिए।

वासुदेव की वेशभूषा– वासुदेव की वेशभूषा में सफेद धोती, कुर्ता, रंगबिरंगा झोला, मयूरपंख से सजी टोपी, अंगरखा, पैर में खड़ाऊ, हाथ में खरताल (चिलप्या), दूसरे हाथ में पीतल की टाल (झांझ), कमर में पावा और मंजरी वाद्य रहते हैं। गले में मोतियों की और कौड़ियों की माला, हाथ में तांबे का कड़ा, माथे पर गंध का तिलक इस तरह की वासुदेव की वेशभूषा होती है जो काफी चमक–दमक, सजीली और आकर्षित करने वाली होती है। वासुदेव की वेशभूषा के संदर्भ में प्रो. श्री. म. माटे का मानना है कि ''वासुदेव कृष्ण भक्त है इसीलिए उसने श्रीकृष्ण का वेश धारण किया है।''[3] उनकी वेशभूषा उनके प्रदर्शन की तरह आकर्षक होती है। वे विशिष्ट सफेद कुर्ती, पीली, केसरिया या कत्थई रंग की धोती पहनते हैं और उनके माथे पर गुलाबी रंग का तिलक होता है। वे खोल के मोती से बनी माला और रुद्राक्ष माला भी पहनते

हैं, उनके सिर पर मयूर पंख से सजी शंखाकार टोपी, कंधे पर लटकती गोधड़ी और हाथ में मंजीरा, चुटकुला या सारंगी, गले में गेदुआ दुपट्टा, कंबर में बंधे हुए दुपट्टे में बांसुरी रखी होती है। पैर में घुंघरू उनको और आकर्षक बनाते हैं। कुछ लोग उन्हें संत बुलाते हैं और मराठी लोग उन्हें वासुदेव नाम से पुकारते हैं।

वासुदेव परंपरा– वासुदेव लगातार गीत गाते हुए घूमते रहते हैं। खुद से कभी पैसे नहीं माँगते। जब कोई उन्हें पैसे की पेशकश करते हैं तो वे अपना झोला खोलते हैं और गाते समय इशारे से झोले में पैसे डालने को कहते हैं। वे स्वयं किसी के दरवाजे पर रुकते नहीं हैं। जब परिवार की महिला भिक्षा का कटोरा हाथ में लेकर खड़ी रहती है, उसी समय वे भिक्षा लेते हैं। भिक्षा लेते समय वे परिवार के पूर्वज का नाम पूछते हैं और उन्हीं के नाम से उनकी कीर्ति का गीत गाते हुए आगे बढ़ते हैं और आशीर्वाद देते हैं। भिक्षा में मुख्यतः इन्हें ज्वार, बाजरी, गेहूँ, चावल आदि दिया जाता है। पहले के समय जब अनाज काफी सस्ता था उस समय इन्हें सूप में अनाज दिया जाता था लेकिन अब समय के साथ परिवर्तन हुआ। अब इन्हें कटोरे में अनाज या कुछ पैसे दिए जाते हैं। भिक्षा माँगते समय वे इस प्रकार के गीतों का गायन करते हैं–

भंडार भरू दे जेजेकार होउ दे।

आले पुण्य जल्माला जाउ दे।

नवनाथ ची तीन, कानिफनाथची तीन,

मच्छिन्द्रनाथ ची तीन अनभंगनाथ ची तीन

गुरुब्रह्मा ची तीन, गुरु विष्णू ची तीन।।

रामासारखे रत्न होतील,

श्रावणा सारखे बाळ होतील, काशी नेतील।

एक नामदेवाचे, दूजे नाव माता–पिताचे।

सेवा करा माता–पिताची आली पुण्यायी जन्माची।

सकाळच्या पहात्री वासुदेवाची स्वारी सीता, सावित्रा दानकरी।

धर्म करा धर्मावरी धर्म जीवाच्या संगति।

आई केवळ लेकीला राहती सासु केवळ सुना लाजती।

संसार च्या पायी देव धर्म आठवत नाही।

संसार केले कोठा कोठी सर्व राहत धर्तारीच्या पोटी

शेवट धर्म संगति।।

वासुदेव को भारत के आध्यात्मिक उपचारकर्ता के रूप में जाना जाता है। इस संदर्भ में नवल शुक्ल ने कहा है कि ''वसदेवा स्थाई आवास वाले किंतु भ्रमणशील चरित गायक हैं। भारतीय संस्कृति के आदर्श, उदात्त और नैतिक चरित बसदेवा गायकी के आधार हैं। अत्यंत पिछड़ी दशा और अभाव में जीने के बावजूद भी सदियों से अपनी गायकी के माध्यम से जनमानस को शिक्षित और संस्कारित करते रहे हैं। जीवन के उच्च और उदात्त मूल्यों की रक्षा के साथ उसका पोषण और संवर्धन करते हैं।''[4]

महाराष्ट्र में पंढरपुर क्षेत्र में ज्ञान फैलाने के लिए वासुदेव अपने गायन से लोगों में जनजागरूकता निर्माण करते हैं। संगीत वाद्यों के साथ गहरी मनमोहक आवाज में भजन गाते हैं। ये मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड, बघेलखंड, बालाघाट, छिंदवाड़ा, महाराष्ट्र के सभी अंचलों में, गोवा, कर्नाटक, गुजरात, छत्तीसगढ़ के पश्चिमांचल और उत्तरांचल में बड़ी संख्या में निवास करते हैं। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और महाराष्ट्र के वासुदेव में भिन्नता है। गायनशैली में भिन्नता के साथ ही रहन–सहन, रीति–रिवाज और लोकपरंपराओं में भी भिन्नता है। इनमें आपस में रोटी–बेटी व्यवहार नहीं होता है इसीलिए एक–दूसरे से अपने को श्रेष्ठ समझते हैं।

वासुदेव परंपरा एवं संस्कृति ग्रामीण भागों में आज भी अस्तित्व में है। वासुदेव अपने गीतों के माध्यम से तत्वज्ञान देते हैं। उसमें दैववाद होता है जिसके माध्यम से अच्छे और बुरे कर्मों के फल को ईश्वर की इच्छा समझकर स्वीकार करते हैं। वे चेहरा पढ़ने में भी माहिर होते हैं। आमतौर पर सामने वाले के स्वभाव के बारे में भी बताते हैं। इस संदर्भ में प्रभाकर मांडे ने कहा है कि ''वासुदेव भिक्षा के लिए सुबह के समय रामकृष्ण का जप करते हुए लोगों के घर के प्रांगण में जाते हैं। विवाह, पाची के लिए आशीर्वाद देने के लिए उन्हें बुलाया जाता है। इसमें कथाकथन के लिए पाँच–छह वासुदेव होते हैं। वे गोंधल के माध्यम से समाज प्रबोधन करते हैं। वे एक विशिष्ट लय में पांडुरंग के गीत गाते हैं। इन गीतों में संवाद–योजना होती है। यहाँ वासुदेव वादक एवं गायक रहता है। नर्तक और कथाकार वही होता है अर्थात् हुन्नरी कलाकार होता है।''[5] वासुदेव लोककलाकार के रूप में समाज का प्रबोधन करता है। इनका सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक उत्थान में उल्लेखनीय योगदान रहा है। महाराष्ट्र में लोकसंस्कृति एवं लोकधारा को कला के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाने वाले एक समूह के रूप में वासुदेव समुदाय की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस संदर्भ में डॉ. रा. चिं. ढेरे का मत है कि ''वासुदेव यह एक व्यक्ति न होकर एक संस्था है अर्थात् लोकसंस्कृति के क्षेत्र में पूरा का पूरा भागवत संप्रदाय है।''[6] वासुदेव अपने गीतों में कृष्ण चरित्र, कृष्ण भक्ति का गुणगान, प्रपंचनीति, वेदांत जैसे विषयों पर सीधी–साधी बोली भाषा में गीत गाता है। महाराष्ट्र में लगनेवाले मेलों, यात्राओं और उत्सवों में वासुदेव के इलाके में गए तो दान माँगते समय मोरपंख की टोपी नहीं पहनते हैं। वासुदेव वर्ष में एक बार अपने क्षेत्र के गाँवों में भिक्षा माँगने जरूर जाते हैं।

छत्रपति शिवाजी महाराज के काल में वासुदेव समुदाय की भूमिका– वासुदेव घुमंतू समुदाय की सहायता से महाराष्ट्र के शासक वीर छत्रपति शिवाजी महाराज ने अपने 'मावळे' के घर पर संदेश भेजने के लिए वासुदेव का उपयोग किया था। उस समय उन्होंने गुप्तचर की भूमिका निभाई थी जिससे शत्रुओं के खेमे में जाकर उनकी गतिविधियों की जानकारी महाराज तक पहुँचाई जा सके। भारतीय स्वराज्य में उनकी निर्णायक भूमिका रही है। मराठा शासक छत्रपति शिवाजी महाराज एवं कई वंशों के शासकों ने वासुदेव का उपयोग गुप्तचर के माध्यम से किया है। वासुदेव आसपास के राज्यों की गुप्त जानकारियाँ अपने राजाओं तक पहुँचाते थे। महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्यों के राजवंशों के लिए जानकारी प्राप्त करने के स्रोत के रूप में वासुदेव ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

महाराष्ट्र के संतों के साहित्य में वासुदेव का महत्व– महाराष्ट्र के मराठी संतों ने वासुदेव घुमंतू समुदाय पर बड़ी मात्रा में चिंतन सृजन किया है। संतों ने अपने अभंग की रचना करते समय व्यक्ति चित्रणात्मक स्फुट एवं रूपक लेखन को विकसित किया है। मराठी के प्रख्यात संत शिरोमणि नामदेव ने वासुदेव पर कई रूपक लिखे हैं। संत ज्ञानेश्वर ने संस्कृत में लिखित भगवद्गीता को मराठी में ज्ञानेश्वरी गाथा के रूप में लिखा है। इस समय उन्होंने कई अभंगों की रचना की है, इसमें वासुदेव के जीवन पर आधारित अभंग रूपकों का निर्माण किया। संत तुकाराम ने भी वासुदेव पर आधारित कई अभंगों का निर्माण किया है। इन संतों के बाद पैठन के संत एकनाथ ने व्यक्तित्व को सामने रखकर भारूड रूपकों का निर्माण किया। इसका निर्माण करते समय सर्वत्र संचरण करने वाले व्यक्ति की पारंपरिक विविधता से नटखट वासुदेव परमात्मा की भक्ति की महिमा का कथन करता है। ऐसा परिदृश्य संत एकनाथ ने अपने अभंगों में निम्न प्रकार से व्यक्त किया है–

मी वासुदेव नामे फोडितों नित्य दाहो।
देखिले पाय आता मागतो दान धा हो।
सावळे रूप माझ्या मानसी नित्य राहो।
पावन संत वृंदे सादरे दृष्टी पहाटे।।1।।
संत रामकृष्ण वासुदेवा हरि रामकृष्ण वासूदेव।धृ।।
सांडोनी सर्व चिंता संतपदी लक्ष लागो।
भक्ती भी सर्वसंगी सर्वदा वृत्ती जागो।
भाविक प्रेमळाच्या संगती चित्त लागो।।2।।
अद्वैतेची चालो अक्षयी भक्तियोग।

स्वप्नीही मानसाने नातळो द्वैतसंग।
अद्वैयानंदवेधे नावडो अन्य भोग।
अक्रियात्वची वाहो सक्रियं रूप बोध।।3।।

इस प्रकार वासुदेव लोकसंस्कृति का उपासक होता है और परमात्मा भक्ति का संदेश आम आदमी तक पहुँचाता है। संत एकनाथ के भारूड के संदर्भ में डॉ. रामचंद्र देखणे ने कहा है कि ''वासुदेव की वेशभूषा उनके प्रबोधन कार्य के अनुरूप होती है। दुर्बुद्धि को त्यागकर बुद्धिरूपी मोरपिसा टोपी पहन ली है। ज्ञान पूर्ण है यह, पूरे विश्व को व्यापने वाला है इसीलिए उसने पूरे ज्ञान का अंगरखा चढ़ा लिया है। देवी–देवताओं की चिपली हाथ में ली है। सात्विकता के प्रतीक के रूप में गले में माला, हाथ में मंजीरी बंधी रहती है। ब्रह्मनाद की मंजीरी वह बजाता है और संतों के घर में भोग नीचे डालकर त्याग का दान नाथ उन्हें माँगने के लिए लगाता है।''[7] संत एकनाथ के व्यक्तित्व चित्रण में भारूड में अंधे, लूले, लँगड़े, बहरे, मुक्का, पीसा आदि की व्यक्ति रेखाएँ चित्रित होती है। संत एकनाथ की भारूड रूपक परंपरा को बहुजन समाज के संतों ने वासुदेव परंपरा को जीवित रखा है। इनमें संत चोखामेली, संत सेनानाई ने भी वासुदेव पर अभंग लिखे है।

वासुदेव की लोकसंस्कृति एवं परंपराएँ– मराठी संस्कृति में वासुदेव लोकसंस्कृति का उपासक होता है। इसमें देवी–देवताओं की उपासना की जाती है। वासुदेव की लोकसंस्कृति महाराष्ट्र राज्य की एवं देश की सांस्कृतिक धरोहर है। मध्यभारत से लेकर दक्षिण भारत तक इस संस्कृति का निवास रहा है। महाराष्ट्र में अनेक संस्कृतियों का समागम मिलता है। इसमें वासुदेव की लोकसंस्कृति एवं परंपराएँ महत्वपूर्ण है। वासुदेव की लोकसंस्कृति आदिम लोकसंस्कृति का अविभाज्य अंग माना जाता है। कई सदियों से यह परंपरा अस्तित्व में है। महाराष्ट्र के तीर्थक्षेत्र पंढरपुर में विट्ठल–रूखमायी की यात्रा प्रतिवर्ष आषाढ़ी एकादशी के दिन रहती है। उस समय लाखों भक्तगण पूरे विश्व से आते हैं। इस यात्रा में वासुदेव विट्ठल भक्ति का जयघोष करते हुए अखंड कीर्तन करते हैं। वासुदेव हरिनाम का जप करते हुए विठु माऊली की महिमा का गान करते हैं। वासुदेव समुदाय की पांडुरंग के अलावा माहुर की रेणुका माता, खंडोबा, म्हसोबा, मांढरादेवी आदि देवी–देवताओं को पूजनीय मानते हैं। अपने परिवार में इन देवी–देवताओं की पूजा करते हैं। महाराष्ट्र में कई स्थानों पर देवी–देवताओं की प्रतिवर्ष यात्राएँ होती हैं, इसमें वासुदेव समुदाय सम्मिलित होता है। प्रतिवर्ष मराठवाड़ा के औरंगाबाद जिले के लासुर नामक गाँव में दाक्षायनी देवी की चैत्र महीने में बड़ी यात्रा होती है। इस यात्रा के लिए वासुदेव समुदाय बड़ी मात्रा में उपस्थित होता है। चैत्र महीने में उनके परिवार के लोग नौ दिन का माताजी का

उपवास करते हैं। सातारा जिले के वाई प्रांत में मांढरा देवी की यात्रा होती है जहाँ प्रमुखता से वासुदेव समुदाय जाता है। वर्धा जिले के रोठा गाँव में राणुबाई देवी की यात्रा होती है। यहाँ भी दूर से वासुदेव समुदाय एकत्रित होता है। वासुदेव अपने क्षेत्र में जाकर इस प्रकार के गीत गाते हैं।

''गातों वासुदेव मी एका। चित्त ठेवुनि ठायी भावे एका।
डोळे झाकुनि रात्र करू नका। काळ करीत बैसला लेख गा।।1।। ।।धृ।।
श्रामाराम स्मरा आधी। लाहो करा गांठ घाला मुळबंदी।
सांडवा उगिया उपाधी। लक्ष लावूनि राहा गोविंदी गा।।धृ।।
ऐसा अल्प मानवी देह। शत गणिले अर्ध रात्र खाय।
पूढे बाल पीडा रोग क्षय। काय भजनासि उरले ते पाहेंगा।।2।।
क्षणभंगूर नाही भरवसा। द्वारे सावध सोडा माया आशा।
न चळे बळ पडेल मग फासा। पूढे हुशार थोर आहे वोळसागा।।3।।
काही थोडे बहुत लागपाठ। करा भक्तिभाव घरा बळकट।
तनमन ध्यान लावुनिया नीट। जर असेल करणे गोड शेवटगा।।
विनवितो सकळां जनां। कर जोडुनि थोरा लाहना
दान इतुले द्या मज दीना। म्हणे तुक्या बंधू राम म्हणे गा।।5।।

इस भारूड में वासुदेव कहता है कि आप ध्यान देकर सुनिए। आँख बंद करके बैठने से कोई फायदा नहीं है क्योंकि काल हमेशा हमें दबोचने के लिए तत्पर रहता है। जैसे–जैसे समय बीतता जाता है, वैसे–वैसे हम उम्र के अंतिम पड़ाव पर पहुँच जाते हैं अर्थात् मृत्यु के करीब जाते हैं। इसीलिए राम राम का स्मरण करते रहना चाहिए। तुकाराम के इस भारुड में वासुदेव रामभक्ति का दान माँगते हुए घूम रहा है।

वासुदेव समुदाय की समस्याएँ– वासुदेव भ्रमणशील जाति है और इनका स्थाई निवास नहीं होता। जिस गाँव में रहते हैं, जहाँ इनका निवास होता है, उसे छोड़कर ये भिक्षाटन में निकल जाते हैं। भिक्षाटन की अवधि चार माह की होती है। तब ये घर से दूर होते हैं। ऐसी स्थिति में देखरेख के अभाव में इनका आवास जीर्ण–शीर्ण हो जाता है। यह स्थिति हर साल होती है, इसीलिए इनका मकान कच्चा होता है। छोटे से स्थान पर पूरा परिवार सीमित साधनों में गुजर–बसर करता है। सुविधाओं का अभाव होता है। गाँवों में स्थिति तो कुछ अच्छी है क्योंकि यहाँ उपलब्ध साधनों से उन्होंने अपनी स्थिति मजबूत कर ली है। वासुदेव घुमंतू समुदाय की नई

पीढ़ी शिक्षित होकर शहरों की ओर पलायन कर रही है जिससे प्राचीन वासुदेव परंपरा विलुप्ति के कगार पर है। शासन की ओर से घुमंतू समुदाय को जो सुविधाएँ दी जाती हैं, उनका लाभ वासुदेव समुदाय को नहीं मिल पाता है। आज के आधुनिक युग में वासुदेव घुमंतू समुदाय को कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। यह जनजातीय समुदाय अपने मूल अधिकारों से आज भी वंचित है। घुमंतू समुदाय के विकास के लिए कल्याणकारी एवं विकास योजनाएँ कार्यान्वित करना आवश्यक है।

निष्कर्ष– भारतीय संस्कृति को समृद्ध करने में भ्रमणशील समुदाय का बड़ा योगदान रहा है जिन्हें घुमंतू जनजातियों के नाम से पहचाना जाता है। संस्कृति की पोषक ये घुमंतू जनजातियाँ हमारी परंपराओं की संचारक है जो दान, धर्म, सत्यवादिता का संदेश देती है, साथ ही वहीं लॉर्ड ऑफ विठोबा की कथा कहकर दानशीलता व मातृ–पितृ भक्ति की प्रेरणा देती है। नैतिक मूल्यों एवं परंपराओं के महाराष्ट्र के वासुदेव मूलतः भागवत धर्म एवं वारकरी संप्रदाय के गायक हैं। अपने घुमंतू जीवन में लगभग सभी वासुदेव समुदाय विठु माउली के परम भक्त हैं। यह क्षेत्र देश के मध्य में है। यहाँ भारत के उत्तर और दक्षिण की सांस्कृतिक चेतना का संगम हमेशा रहा है। वासुदेव परंपरा उत्तर से दक्षिण क्षेत्र में विकसित हुई है। यह परंपरा आज के आधुनिक युग में महाराष्ट्र में पाई जाती है। वासुदेव परंपराओं ने भारतीय लोकसंगीत एवं लोककलाओं को विकसित किया है तथा लोककलाओं के माध्यम से महाराष्ट्र को एक साथ जोड़ रखा है। महाराष्ट्र के भक्ति आंदोलन एवं सामाजिक सुधारों की विचारधारा को वासुदेव परंपरा ने गतिमान किया है। प्राचीनकाल से मध्य काल तक वासुदेव घुमंतू समदाय ने दक्षिण के कई वंशों एवं राजाओं को सूचना एवं जानकारी देने के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महाराष्ट्र के मराठा शासक छत्रपति शिवाजी महाराज के स्वराज्य निर्माण में गुप्तचर के रूप में वासुदेव का उल्लेखनीय योगदान रहा है। वासुदेव का महाराष्ट्र की ग्राम संस्कृति में एक विशेष स्थान है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

संदर्भ सूची–

1. मोहन पाटील : लोक साहित्य, लेख–आलेख, पद्मगंधा प्रकाशन, पुणे प्रथम संस्करण 2012, पृ.33–34
2. डॉ. शशिकांत सोनवणे : भारत की उपेक्षित लोक संस्कृतियाँ (महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के साठ उपेक्षित समुदायों के परिप्रेक्ष्य में), अभय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2014, पृ.80
3. प्रा. श्री. म. माटे : मराठी विश्वकोश : खंड 16 प्रमुख संपा– में. पु. रेगे (वाद्य वृंद ते विज्ञान), महाराष्ट्र राज्य मराठी विश्वकोश निर्मिती मंडल, मुंबई, प्रथम संस्करण 1999, पृ.114

4. नवल शुक्ल : लोकगायक बसदेवा, 'चौमासा' पत्रिका, मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद् एवं संस्कृति विभाग, भोपाल, अंक 32 जुलाई–अक्टूबर 1993, पृ.48
5. डॉ. प्रभाकर मांडे : लोकगायकांची परंपरा, गोदावरी प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम आवृत्ति 2011, पृ.68
6. डॉ. रा. चिं. ढेरे : मराठी लोकसंस्कृतिचे उपासक, पद्यगंधा प्रकाशन, पुणे प्रथम संस्करण, 1964, पृ.13
7. डॉ. रामचंद्र देखणे : भारूड और लोकशिक्षा, पद्यगंधा प्रकाशन, पुणे, प्रथम संस्करण, 1965, पृ.36

❑❑❑

कब डूबेगा सरमाया–परस्ती का सफ़ीना
दुनिया है तिरी मुंतजिर–ए–रोज़–ए–मुकाफ़ात

– **इकबाल**

संत कवि दादूदयाल के साहित्य में साझी संस्कृति



प्रो. पठान रहीम खान
हिंदी विभाग, मौलाना आज़ाद
नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

भारत देश को संतों की भूमि कहा जाता है जिसमें शंकराचार्य से लेकर कबीर, रैदास, गुरु नानक, तुलसीदास जैसे संतों का जन्म हुआ है। दादू ने निर्गुण भक्ति के मार्ग पर चलकर समाज–सुधारने का प्रयास किया। कबीर की भांति वे भी पंडित एवं मौलवियों को खरी–खोटी सुनाते रहे हैं। उनका मानना है कि सांसारिक मोह–माया को त्यागकर व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। किंतु उसे इस संसार में मिली जिम्मेदारियों को त्यागने की जरूरत नहीं है। आगे चलकर इनके ही विचारों के लोगों को दादू पंथ कहा जाने लगा जिसमें हिंदू–मुस्लिम दोनों ही सम्मिलित हैं। दादू समाज में फैले आडंबरों के विरोधी थे। उन्होंने लोगों को एकता का पाठ पढ़ाया है। वे कहते हैं कि– भगवान को कहीं और ढूँढने की जरूरत नहीं है। वह तो स्वयं ही आपके अंदर है। वे कहते हैं–

"दादू भीतरि पैसि करि, घट के जड़ै कपाट।
सांई की सेवा करै, दादू अविगत घाट
पूजणहारे पासि हैं, देही माँहें देव।
दादू ताकूँ छाड़ि करि, बाहरि माँडी सेव।।
दादू रमता राम सूँ, खेलै अंतर माँहि
उलटि समाना आप में, सो सुख कतहूँ नाँहि।।"[1]

दादू कहते हैं कि तुम घट–घट में ईश्वर को क्यों ढूंढते हों, जबकि ईश्वर तो स्वयं आपके अंदर ही समाहित है। दादू कहते हैं कि– तुम अपने अंतर्मन से क्यों खेलते हो जबकि राम नाम जपने से अंतर्मन में ईश्वर का वास होता है। दादू के संबंध में रवि कुमार सिंह कहते हैं कि– "दादू एकनिष्ठ भाव से ईश्वर की आराधना में रत रहने वाले संत हैं। तर्क–वितर्क और वाद–विवाद से कभी संगति नहीं हुई। कभी वाद–विवाद में फँसे भी नहीं। उन्होंने सदैव प्रभु को माँगा, प्रभु से नहीं माँगा। कबीर

की ही भाँति दादू का ज्ञान भी अनुभव का ज्ञान था। उन्होंने अनुभव के आधार पर ही अपनी बातें कहीं, पंडिताई के आधार पर नहीं। तत्युगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिक्रियास्वरूप उनका उद्देश्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना था, जहाँ भेदभाव, ऊँच–नीच, जाति–पांति, अनाचार, अत्याचार व आडंबर का बोलबाला न हो।"[2] इन्होंने सामाजिक–धार्मिक विडंबनाओं को त्यागकर सत्मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। उन्होंने समाज की कुरीतियों जैसे– सती–प्रथा, पर्दा–प्रथा इत्यादि का विरोध किया। उस समय समाज में हिंदू–मुस्लिम वैषम्य व्याप्त था। दोनों ही धर्मों के लोग पंडे–पुरोहित, मुल्ला–मौलवियों के बहकावे में आ रहे थे। धर्म के मार्ग से हटकर अधर्म के मार्ग पर चल रहे थे। दादू दयाल ने दोनों ही धर्मों के समन्वय की बात की है। ये कुरीतियों का विरोध करते थे। हिंदू–मुस्लिम दोनों ही धर्मों में व्याप्त कुरीतियों का खंडन करते हुए वे अपना विचार प्रकट करते हैं कि–

"रहे निराला सब करै, काहू लिपत न होई।
आदि अंत भावै घड़े, दादू समरथ सोई।।[3]

अर्थात् किसी मनुष्य का मन और हृदय पवित्र है, तो वह इंसान सच्चा धार्मिक है। ऐसी जीवात्मा जो बाहरी आडंबरों का आश्रय लेती है, वह सच्ची धार्मिक नहीं है। दादू ने इन दोनों धर्मों के समन्वय में महती भूमिका निभाई है। वे ईश्वर और अल्लाह को एक ही मानते थे। वे कहते है कि नाम भले ही अलग हो पर वास्तविकता में दोनों एक ही हैं–

"दादू इश्क अलाह का, जे कबहूँ प्रगटे आई।
तौ तन मन दिल अरबाह का, सब पड़दा जलि जाई।।"[4]

दादू ने ईश्वर की व्यापकता और गुरु के महत्व पर विशेष बल दिया है। वे सभी मनुष्यों में समानता की भावना जाग्रत करने का प्रयास करते हैं तथा उच्च–निम्न, जाति–वर्ग–भेद, लिंग–भेद इत्यादि से ऊपर उठकर समान भाव का उपदेश देते हैं। वे मनुष्य–मनुष्य में किसी भी प्रकार का भेदभाव स्वीकार नहीं करते। उन्होंने हिंदू धर्म में व्याप्त कुरीतियों जैसे जाति–भेद, छुआछूत का कड़ा विरोध किया। वे निम्न कही जाने वाली जातियों में भी धार्मिक चेतना के साथ–साथ सामाजिक चेतना का भाव भी जागृत करते हैं तथा हिंदू–मुस्लिम एकता पर बल देते है। उन्होंने हिंदुओं के साथ–साथ मुस्लिम समाज की कुरीतियों का भी विरोध किया है जैसे–

"हर रोज हजूरी होइ रहु, काहे करे कलाप।
मुल्ला तहां पुकारिये, जहँ अर्श इलाही आप।।
दादू काया महल में नमाज गुजारूं, तहँ और न आवन पावे
मन मण के कर तसबीह फेरूं, तब साहिब के मनभावे।।"[5]

वे कहते हैं कि विभिन्न प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों का क्या लाभ है जब मन

ही मैला है। ईश्वर की आराधना तो स्वच्छ मन और अंतरात्मा से की जाती है, ना कि बाह्याडंबरों के माध्यम से। दादूदयाल ने धार्मिक क्षेत्रों में फैले आडंबरों के पीछे ब्राह्मण और काजी का हाथ बताया है क्योंकि यही वो लोग होते हैं, जो अपना निजी हित साधने के लिए भोली–भाली जनता को बहकाते हैं। ऐसे लोगों को वे फटकारते हुए कहते हैं कि–

"दादू जिहिवरियाँ यह सब कछु,
भया सौं कछु करौं विचार
काजी–पंडित बावरे, क्या लिखि बंधे भार।।
काजी काज न जा नहीं, कागज हाथ कतेब।
पढ़तां पढ़तां दिन गये, भीतर नाहीं भेद।।"[6]

संत एवं कवि होने के साथ–साथ दादूदयाल समाज के संरक्षक और पोषक भी थे। वे यह जान चुके थे कि दिलों में नफरत की भावना ही समाज में विनाश का कारण बनती है। इस बात को समझते हुए उन्होंने मध्ययुगीन समाज में व्याप्त ऊँच–नीच एवं छुआछूत जैसी घृणित भावनाओं का विरोध किया है। वे समाज में समानता और भाईचारे की बात करते हुए कहते है कि–

"दादू सम करि देखिए, कुंजर कीट समान।
दादू दुवध्या दूरि करि, तजि आपा अभिमान।।
दादू करणी, उपरी जाति है, दुजा सोच निवार।
मैली मध्यम है गये, उज्ज्वल ऊँच विचार।।"[7]

उनकी धारणा थी कि ब्राह्मण–शूद्र हो या हिंदू–मुसलमान, सभी उसी परम ज्योति से उत्पन्न हुए हैं। सभी में एक ही आत्मा का वास है। वे कहते हैं कि ईश्वर तो घट–घट में व्याप्त है। उसकी उपासना तो कोई भी कर सकता है। उच्च वर्ग वाले का सिर्फ ईश्वर पर अधिकार नहीं, वह तो सभी का है और सर्वत्र है जैसे –

"दादू सब रंग रंगि रह्या, दूजा कोई नाहिं।
सब रंग तेरे तै रंगे, तू ही सब रंग माहिं।।"[8]

दादू का आविर्भाव जिस काल में हुआ, उस समय समाज की परिस्थितियाँ स्थिर नहीं थी। सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक रूप से समाज में उथल–पुथल मची हुई थी। समाज में व्याप्त रूढ़ियों–अंधविश्वासों का इन्होंने खंडन किया और समाज को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। दादू ने अपने काव्य के माध्यम से जनमानस के अधिकारों के लिए आवाज उठाई। इस संबंध में परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं कि– "दादू का व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक था और उनके कोमल हृदयग्राही स्वभाव के कारण ही अनेक व्यक्ति उनके प्रभाव में आ जाते थे। उनके सत्संग का प्रभाव लोगों पर इस

प्रकार पड़ता था कि वे उन्हें बहुधा अपना गुरु तक स्वीकार कर लेते थे और उनके उपदेशानुसार आजीवन आचरण करने पर कटिबद्ध हो जाते थे।"[9] इस प्रकार हम देखते हैं कि दादूदयाल ने सामाजिक समरसता की भावना स्थापित की। कविता तो उनके लिए साधना का एक मार्ग थी। उनका मूल उद्देश्य समाज में सामंजस्य एवं सहिष्णुता का वातावरण स्थापित करना है। उन्होंने जाति, धर्म, संप्रदाय, राजनैतिक मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया है। सिर्फ दादू ही नहीं, उस काल के अन्य संत कवि जैसे– रज्जब, रैदास, सहजोबाई, तुलसीदास, मीराबाई आदि ने भी सामाजिक एकता का संदेश दिया है। तत्कालीन परिस्थितियों में जिस प्रकार से नैतिक मूल्यों में गिरावट देखी जा रही थी, उन मूल्यों को सहेजने का काम संत कवियों ने किया है। दादू ने समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया है। दादू के समय में समाज में हिंदू–मुस्लिम के बीच पर्याप्त दुर्भाव था। इन्होंने अपने उपदेशों के माध्यम से इन दोनों संप्रदायों को करीब लाने का प्रयास किया है।

दादू ने समाज को फटकार लगाकर नहीं बल्कि विनम्रता एवं माधुर्य भाव से समझाने का प्रयास किया। उन्होंने समाज की नब्ज टटोलते हुए बड़े ही प्रभावशाली तरीके से अपने विचारों को लोगों के सामने प्रस्तुत किया। वे यह मानते थे कि एक मानवतावादी समाज की नींव धर्मनिरपेक्षता के ही आधार पर रखी जा सकती है इसलिए उन्होंने वर्ण, धार्मिक आडंबर, जाति व्यवस्था का विरोध किया। वे यह मानते थे कि वर्ण से जाति का पता नहीं चलता, बल्कि व्यक्ति के गुण ही उसको ऊँचा–नीचा बनाते हैं। इस पर वे कहते हैं कि–

"दादू कनक कलश विष सौं भरा, सो किस आवे काम।
सोधन कूटा चाम का जामें अमृत राम
दादू देखे वस्तु को, बासन देखे नाहिं।
दादू भीतर भर धरा, सो मेरे मन माहिं।।"[10]

अर्थात् व्यक्ति अपने जन्म से नहीं, वरन् कर्मों से ऊँचा–नीचा होता है। हमें व्यक्ति की जाति को ना देखकर उसके मन की सुंदरता को देखना चाहिए। तत्कालीन समाज में हिंदू–मुस्लिम वैषम्य चरम पर था। संतों के समक्ष सामाजिक समरसता स्थापित करना और दोनों समुदायों के लोगों को साथ लाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन गया था। इन समस्याओं से निबटने के लिए ही संतों ने हिंदू–मुस्लिम समुदाय में व्याप्त अतिवाद को कम करने का प्रयास किया। दादूदयाल दोनों ही पंथों से प्रश्न करते हैं कि–

"दादू यह सब किसके पंथ में, धरु अरु आस्मान।
पानी, पवन दिन रात का, चंद सूर रहमान।।
ब्रह्मा विष्णु महेश का, कौन पंथ गुरुदेव।

मुहम्मद किसके दीन में, जिब्राइल किस राह।
इनके मुर्शिद पीर की, कहिए एक अल्लाह।।"[11]

दादू समाज के ठेकेदारों से यह पूछते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश का पंथ कौन सा है, जिब्राइल का पंथ कौन सा है। तुम जो अपने आपको विभिन्न वर्गों में विभाजित करते हो, कभी सोचा है– इनका पंथ कौन सा है। दादू समाज को वर्ग भेद से दूर करने का प्रयास करते रहे हैं। उन्होंने समाज को सत्मार्ग में लाने का प्रयास किया है। हिंदू–मुस्लिम दोनों को ही साथ लाने का प्रयास किया है। वे कहते हैं कि–

"दादू कोई काहू जीवन की करें आतमा घात।
साँच कहौ संत नहीं ते प्राणी दो जग जात।।
वेद, कतेब, कुरान, गीता पढ़े।
जीव का दरद नहिं कंवहि आने।
जिव का दरद फुरमान साईं किया।।
सोई दरवेश जो कहा माने।"[12]

दादू सामाजिक समरसता का मूल निर्विरोध को मानते है। संसार में किसी से भी बुराई का भाव रखने से शत्रुता का प्रारंभ होता है। जब हम दूसरों को पराया मानते है, वहीं वैषम्य प्रारंभ हो जाता है। दादू ने इन्ही समस्याओं से लोगों को मुक्त करने का प्रयास किया है। इसी संबंध में वे कहते हैं कि–

"किसको वैरी हवें रह्या, दुजा कोई नांहि।
जिसके अंक थे उपजै, सोई है सब माँहि।।"[13]

दादू सर्वधर्म सद्भाव के प्रतीक हैं। उन्होंने सांप्रदायिक सद्भावना और एकता पर बल दिया। इसलिए हिंदू–मुस्लिम दोनों ही संप्रदायों में उनको बराबर सम्मान मिला है। दोनों ही संप्रदाय के लोग उनके अनुयायी हैं। वे सामाजिक कुरीतियों और पाखंडों के विरुद्ध बराबर आवाज उठाते रहे।

दादू ने मानवता की प्रतिष्ठा पर अधिक जोर दिया है। उनके अनुसार समानता का भाव ही संबंधों को सुदृढ़ बना सकता है। इसलिए इन्होंने धार्मिक आडंबरों की तीखी आलोचना करते हुए उसे मिथ्या बताया। वे मात्र उस एक 'ज्योति' से जोग लगाना चाहते हैं जहाँ न हिंदुओं का देवालय है, न मुसलमानों की मस्जिद। उन्होंने बाह्य आडंबरों के साथ–साथ मतवाद, तीर्थ, व्रत, मूर्ति–पूजा, नमाज, हिंसा आदि की भी भर्त्सना की। उन्होंने विनम्र तरीके से अपने विचारों को प्रकट किया जिससे लोग प्रभावित भी हुए। वे मूर्ति– पूजा का खंडन करते हुए कहते हैं कि–

"ब्रह्मा का वेद, विष्णु की मूर्ति, पूजै सब संसार।
महादेव की सेवा लागै, कहाँ है सिरजनहार।"[14]

वे कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तुम चाहे जितनी भी पूजा करो किंतु मन

का मैल जब तक साफ नहीं करोगे, तब तक कुछ भी नहीं होगा। यही बात दादू के समकालीन कबीर ने भी कही है। जैसे–

"पाथर पूजै हरि मिले तो मैं पूजूं पहार
घर की चाकी कोय ना पूजै
जाकि पीसी खाय संसार।"[15]

दादू तथा उस युग के अन्य संतों ने अपने काव्य के माध्यम से जनसाधारण के हृदय की पुकार सुनी। उन्होंने कथनी–करनी में भेद नहीं किया। जनता को कुरीतियों से बचाने के लिए इन कवियों का लहजा कहीं सख्त तो कहीं नरम दिखाई पड़ता है। कबीर ने जहाँ जनता को फटकार लगाई है, तो वहीं दादू ने विनम्र स्वभाव से उन्हें सत्मार्ग में लाने का प्रयास किया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दादूदयाल ने अपने उपदेशों एवं काव्य के माध्यम से तत्युगीन जनता को कुरीतियों से बचाया। वे हमें उच्च–निम्न, काला–गोरा, स्त्री–पुरुष, हिंदू–मुस्लिम वैषम्य से बचाने का प्रयास करते रहे। उन्होंने समाज को बाह्य आडंबरों से दूर करने का प्रयास किया। दादू कहते हैं कि ईश्वर आपको तब–तक नहीं मिल सकता जब तक आप अपने अंदर के विकारों को दूर नहीं कर लेते। विभिन्न उपमानों का सहारा लेकर दादू ने ईश्वर के प्रति सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति पर बल दिया है। जिस प्रकार पतंगा दीपक के इर्द–गिर्द चक्कर लगाकर अंत में उससे मिल जाता है उसी प्रकार दादूदयाल ने ईश्वर भक्ति के लिए एकाग्रता को माना है। उस समय समाज में हिंदू–मुस्लिम के बीच वैषम्य का भाव था। दोनों ही संप्रदायों के लोग धार्मिक कुरीतियों का शिकार होते थे। दादू ने दोनों ही संप्रदायों के वैषम्य को कम करने का प्रयास किया है। धर्म के आधार पर फैली कुरीतियों को उन्होंने दोनों के समक्ष रखा है। हिंदू–मुसलमानों के बीच फैली खाई को कम करने का प्रयास किया है। वे कहते हैं– सब तो एक ही ज्योति से उपजे हैं, फिर हमारे बीच बैर कैसा।

संदर्भ सूची–

1. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल, दादू ग्रंथावली, पृ.सं.40
2. रविंद्र कुमार सिंह, दादू काव्य की प्रासंगिकता, पृ.सं.96
3. परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पृ.सं.155
4. परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पृ.सं.156
5. स्वामी राम प्रसाद, पूर्वोतक, पृ.सं.267
6. परशुराम चतुर्वेदी, दादू ग्रंथावली, पृ.सं.283
7. परशुराम चतुर्वेदी, दादू ग्रंथावली, पृ.सं.280
8. परशुराम चतुर्वेदी, दादू ग्रंथावली, पृ.सं.281

9. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृ.सं.421
10. स्वामी रामप्रसाद, पूर्वोतक, पृ.सं.291
11. परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल की वाणी, पृ.सं.210
12. स्वामी मंगल दास, स्वामी दादूदयाल की वाणी, पृ.सं.45
13. स्वामी मंगल दास, स्वामी दादूदयाल की वाणी, पृ.सं.41
14. स्वामी मंगल दास, दादू वाणी, पृ.सं.282
15. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ.सं.28

❑❑❑

आस्था जीवक्रम में निर्मित होती है, अतः उसे कोई जड़ीभूत तत्व मान लेना उचित न होगा।

—महादेवी वर्मा

श्रवण बाधित विद्यार्थियों की समस्याएँ और पुनर्वास कार्यक्रम



डॉ. रेखा रानी
शोधार्थी, शिक्षा विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ राजस्थान

श्रवण बाधित बालक वे होते हैं जिनकी सुनने की क्षमता कम या पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है। ऐसे बालक को किसी अन्य बालक या व्यक्ति की भाषा सुनने और समझने में परेशानी होती है क्योंकि इनकी सुनने की क्षमता समाप्त हो चुकी होती है। सभी बालकों में श्रवण बाधिता की क्षमता समान नहीं होती है। जो बालक सुनने की क्षमता को पूर्ण रूप से खो देते हैं, वे अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक कठिनाइयों का सामना करते हैं। इस प्रकार श्रवण बाधित बालक या तो बहुत कम सुन पाते हैं या पूर्णतया नहीं सुन पाते। कुछ बच्चे जन्मजात श्रवण बाधित होते हैं तथा कुछ जन्म के बाद में किसी चोट, दुर्घटना तथा बीमारी के कारण अपनी श्रवण–शक्ति खो देते हैं। ऐसे बालक श्रवण–यंत्र की सहायता से सुन सकते हैं।

श्रवण बाधित बालकों में वाणी का दोष भी होता है। इस प्रकार के बालकों को सामान्य स्कूलों में सामान्य बालकों के साथ शिक्षा देने में अधिक कठिनाई नहीं आती ये बालक सामान्य बालकों के साथ पढ़ सकते हैं।

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (1991) के अनुसार–''श्रवण बाधित उसे कहा जाता है जो सामान्य रूप से सामान्य ध्वनि को सुनने में अक्षम हो।''

भारतीय पुनर्वास परिषद् के अनुसार–''जब बाधिता 70 डेसीबल हो, तो व्यावसायिक तथा जब 55 डेसीबल तक हो, तो उसे शिक्षा के लिए प्रयोग में लेना चाहिए।''

योजना आयोग एवं विकलांग जन अधिनियम (1995) के अनुसार–''वह व्यक्ति श्रवण बाधित कहा जाएगा, जो 60 डेसीबल या उससे अधिक डेसीबल पर सुनने की क्षमता रखता हो।''

नेशनल सेंपल सर्वे (National Sample Surey) (1991) के अनुसार–''भारत में 0–14 आयु वर्ग के बच्चों में 3.24 मिलियन बच्चे श्रवण बाधित हैं। इस प्रकार

यह अनुमान लगाया जाता है कि संपूर्ण जनसंख्या का 1 प्रतिशत हिस्सा गंभीर आंशिक श्रवण बाधिता से ग्रसित है।''

स्टीवेंसन, क्रेपनर एवं केनेडी (2015) के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य श्रवण बाधित बालकों और किशोरों में संवेगात्मक व व्यावहारिक कठिनाइयों की तुलना सामान्य बालकों से करना है। अध्ययन में सामान्य बालकों की तुलना में श्रवण बाधित बालकों का स्कोर 1/3 से कम पाया गया। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि श्रवण बाधित बालकों एवं वयस्कों को सामाजिक रिश्ते निभाने हेतु सहारे की आवश्यकता है।

फरहानी, फरमर्जी एवं बाबाजानी (2014) द्वारा प्रस्तुत शोध अध्ययन में बालकों की भावना, अकेलापन, अस्वीकृति, व्यावहारिक समस्याएँ आदि गुणों का अध्ययन किया गया। शोध के परिणाम बताते हैं कि सामान्य विद्यालयों में पढ़ने वाले श्रवण बाधित बालकों में विशिष्ट स्कूलों में अध्ययनरत श्रवण बाधित बालकों की तुलना में अस्वीकृति एवं अकेलेपन की भावना अधिक पाई गई।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि श्रवण बाधित बालक वह है जो बिना किसी यंत्र की सहायता के सुन नहीं सकता। जब बालक सुनने में अक्षम हो तथा दूसरों की सहायता लेता हो, उससे यह ज्ञात होता है कि बालक को श्रवण दोष है। श्रवण–दोष एक अदृश्य एवं छुपी हुई दिव्यांगता है जो देखने से दिखाई नहीं देती है। श्रवण बाधिता जन्म से या जन्म के बाद भी हो सकती है।

श्रवण बाधित बालकों की समस्याएँ

श्रवण बाधित बालकों को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये बालक अनेक समस्याओं से घिरे रहते हैं, उन समस्याओं में से कुछ प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं–

शैक्षिक समस्याएँ–

- एक श्रवण बाधित बालक को व्याख्यान विधि की कक्षा में समस्या होती है।
- श्रवण बाधित बालक ज्यादातर लेखन कार्य को साथ वाले बालक से नकल करके करते हैं।
- इनको अनुदेशन देना कठिन होता है।
- ये प्रायः बच्चे अनुशासनहीन होते हैं।
- भाषा का विकास नहीं हो पाता।
- कक्षा–कक्ष में पढ़ाई गई बातों का अधिगम कठिन हो जाता है।
- शैक्षिक उपलब्धि निम्न हो जाती है।
- परीक्षणों का प्रयोग भली प्रकार नहीं कर पाते हैं।

व्यक्तिगत समस्याएँ–

- श्रवण बाधित बालकों में वाणी दोष होने के कारण स्वतंत्र रूप से बोलने में शर्म महसूस करते हैं।
- भाषा अभिव्यक्ति के संवेगों का अभाव होता है।
- डर की भावना, आत्मविश्वास की कमी पाई जाती है।

पारिवारिक समस्याएँ–

- बालक के अभिभावक सामान्य बालक की अपेक्षा इनसे कम बात करते हैं।
- अभिभावक उनको समाज से दूर रखने की कोशिश करते हैं।
- भेदभाव के कारण उनको किसी भी गतिविधि में भाग लेने के समान अवसर नहीं मिल पाते हैं।
- ये बालक किसी भी गतिविधि में शामिल न हो पाने के कारण बाहरी चीजों से अपरिचित रहते हैं।

सामाजिक समस्याएँ

- सीमित शब्द कोश, अवधारणाओं की जानकारी सीमित होने के कारण बेहतर सामाजिक संप्रेषण में समस्या होती है।
- समाज में उपेक्षा होने के कारण इन बालकों में हीन भावना आ जाती है।
- इन बालकों को सामंजस्य की समस्या उत्पन्न होती है।
- बालक सामान्य छात्रों के साथ हिल–मिल नहीं पाता है, तो बालक के मन में हीन भावना उत्पन्न होती है। इससे बालक कुंठाग्रस्त होता है।
- बालक विभिन्न सामाजिक क्रियाकलापों में पिछड़ जाता है।
- इन बालकों में जीवन के प्रति निषेधात्मक अभिवृत्ति उत्पन्न होती है।
- पलायन की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

इस प्रकार शैक्षिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याएँ मिलकर बालक के व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं होने देतीं।

श्रवण बाधिता की रोकथाम–

उपर्युक्त समस्याओं के लिए आवश्यक है कि इनकी रोकथाम के कुछ उपाय किए जाएँ तो श्रवण बाधिता की रोकथाम निम्नलिखित प्रकार से की जा सकती है–

- गर्भवती महिला को अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि इसका प्रभाव बालक पर भी पड़ता है।
- गर्भवती महिला को संक्रमित बीमारी वाले व्यक्तियों से दूर रहना चाहिए।
- महिला को बिना धुले तकिये के कवर, तौलिया या अन्य व्यक्तियों के द्वारा प्रयुक्त तकिया, जिसका कान पहले से संक्रमित हो, का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

- बालक का टीकाकरण समय–समय पर करवाना चाहिए। यदि कोई महिला रूबैला जैसी बीमारियों से ग्रसित है तो पूरी जाँच भी करवानी चाहिए। कुपोषण से ग्रसित महिलाओं व बालकों में श्रवण बाधिता की संभावना बढ़ जाती है।
- श्रवण बाधित बालकों को शोर–गुल वाले माहौल में नहीं रहना चाहिए।

WHO ने 1980 में तीन तरह की रोकथाम के उपाय बताए हैं–

• **प्राथमिक रोकथाम**– इस प्रकार की दिव्यांगता को पूरी तरह से खत्म करने के लिए टीकाकरण व आनुवांशिक परामर्श समय पर करवाना चाहिए। इसके लिए काउंसलिंग बेहद जरूरी है।

• **द्वितीयक रोकथाम**– यदि प्राथमिक स्तर पर रोकथाम नहीं हो पाती है तो इस बाधिता को आगे बढ़ने से रोकने के लिए–

- श्रवण यंत्रों का प्रयोग करना चाहिए।
- कानों की बहने की बीमारी (ओटाइटिस मीडिया) का सही तरीके से इलाज करवाना चाहिए।

• **तृतीयक रोकथाम**– यदि प्राथमिक और द्वितीयक स्तर पर रोकथाम नहीं हो पाती है तो व्यक्तियों की दिव्यांगता किस स्तर की है, इसकी जाँच करने के बाद–

- श्रवण प्रशिक्षित होना
- वाणी चिकित्सा
- विशेष शिक्षा
- पुनर्वास के माध्यम से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना।
- व्यावसायिक प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति की दिव्यांगता को दूर करने का प्रयास करना।

प्राथमिक रोकथाम की रणनीतिः– यदि सही तरीके से रणनीति बनाई जाए तो इसकी रोकथाम शुरुआत में ही की जा सकती है।

• **अभिभावक इन्फैक्ट प्रोग्रामः**– इन प्रोग्रामों का मुख्य उद्देश्य अभिभावकों को उन कौशलों से अवगत कराना है जिससे वे अपने बच्चों की पूरी तरह से देखभाल करने में सक्षम हो सकें, जो इस दिव्यांगता से ग्रसित हैं।

• **गृह प्रशिक्षण कार्यक्रमः**– इस प्रकार के प्रोग्राम उन अभिभावकों के लिए हैं जो रोजाना व्यावसायिक केंद्रों पर नहीं जा सकते। उनके लिए ये कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इनके अंतर्गत अभिभावकों को प्रिंट मीडिया के माध्यम से प्रोफेशनल व्यक्तियों की सलाह उपलब्ध करवाई जाती है।

• **सामूहिक अभिभावक बैठकः**– ये कार्यक्रम अभिभावकों को एक प्लेटफार्म प्रदान करते हैं जिससे वे अपने भावों को, अनुभवों को और समस्याओं को साझा कर सकते हैं। साथ ही उन अभिभावकों से अपनी भावनाएँ साझा कर सकते हैं जिनके बालक इसी दिव्यांगता से ग्रसित हैं।

• **काउंसलिंग एवं मार्गदर्शनः**– श्रवण बाधित बालक की पहचान होते ही काउंसलिंग की प्रक्रिया प्रारंभ कर देनी चाहिए। ये प्रक्रिया तब तक क्रियान्वित रहे जब तक बालक का पूर्ण पुनर्वास न हो जाए। अभिभावकों को इस तरह के सुझाव देने चाहिए जिससे बालकों के कौशल को पहचान कर उसका पूर्ण विकास किया जा सके।

श्रवण बाधित बालकों की शिक्षा

वर्तमान युग में शिक्षा विषय–केंद्रित एवं शिक्षक–केंद्रित न होकर बाल–केंद्रित है। इसमें शिक्षा के अंतर्गत पाठ्यचर्या का संगठन बालक की प्रवृत्तियों, योग्यताओं एवं रुचियों को ध्यान में रखकर किया जाता है। दिव्यांग बालकों के लिए शिक्षा एक सशक्त माध्यम है। शिक्षा सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण के लिए सबसे प्रभावी माध्यम होता है। शिक्षा के माध्यम से इनका आत्मविश्वास एवं मनोबल बढ़ाया जा सकता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जहाँ शिक्षा को भारत के प्रत्येक नागरिक का मौलिक अधिकार माना गया है, वहीं विकलांग अधिनियम 1995 के अनुच्छेद 26 में विकलांग बालकों को 18 वर्ष की उम्र तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है। इनकी शिक्षा में एक विशिष्ट प्रकार की शिक्षा, शिक्षण विधियाँ, शिक्षण व्यूहरचना और शिक्षण सहायक सामग्रियों की आवश्यकता होती है।

श्रवण बाधित बालकों की शिक्षा हेतु अनुकूल विकल्प वर्तमान में मौजूद हैं। श्रवण बाधित बालक की बाधिता की गंभीरता एवं प्रकृति के आधार पर सर्वोत्तम विकल्प का चयन किया जाता है। सर्वोत्तम विकल्प का चयन उनकी बाधिता पर निर्भर करता है। आंशिक श्रवण बाधित बालकों को सामान्य बालकों के साथ सामान्य विद्यालयों में सरलता से शिक्षा दी जा सकती है तथा पूर्णतः श्रवण बाधित बालकों को प्रारंभिक प्रशिक्षण विशेष विद्यालयों में आसानी से दिया जा सकता है। श्रवण बाधित बालकों के लिए चार प्रकार की स्थानापन्न सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। श्रवण बाधित बालकों की दिन–प्रतिदिन की क्रियाओं को सुचारू रूप से करने के लिए कुछ सुविधाएँ दी जानी चाहिए। श्रवण बाधित बालकों का स्थानापन्न आकलन के आधार पर करना चाहिए। यहाँ स्थानापन्न से तात्पर्य है कि श्रवण बाधित बालक को किस प्रकार के विद्यालय में प्रवेश दिलाया जाए जिससे उसका प्रशिक्षण क्रमबद्ध रूप से किया जा सके और उसकी देखभाल तथा समुचित विकास किया जा सके। श्रवण बाधित बालकों के स्थानापन्न के लिए निम्नलिखित कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाती है–

1. समन्वित कक्षा– इस प्रकार की शिक्षा–व्यवस्था में श्रवण बाधित बालकों को सामान्य बालकों के साथ विद्यालयों में शिक्षित किया जा सकता है। आंशिक श्रवण बाधित बालकों को समन्वित शिक्षा–व्यवस्था द्वारा शिक्षित किया जाता है। इस प्रकार के बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति और समस्याओं का निदान एक नियमित

सामान्य शिक्षकों के द्वारा, विशेषज्ञों के द्वारा और संसाधन कक्ष सुविधाओं की सहायता से किया जाता है।

2.नियमित कक्षाओं के साथ संसाधन कक्ष की सुविधाएँ (आंशिक समावेशन)– इस प्रकार की शिक्षा–व्यवस्था में श्रवण बाधित बालकों को सामान्य बालकों के साथ सामान्य कक्षा में शिक्षित किया जाता है परंतु बालकों की श्रवण बाधिता के कारण उत्पन्न विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं के निदान हेतु अपने विद्यालयी समय का कुछ हिस्सा वे संसाधित कक्ष में व्यतीत करते हैं।

3.नियमित विद्यालयों में विशेष कक्षा– आंशिक श्रवण बाधित बालकों के लिए नियमित विद्यालयों में विशेष कक्षाओं की व्यवस्था की जाती है। इन बालकों को सामान्य बालकों से अलग कक्षाओं में शिक्षण, नियमित विद्यालय के परिसर के भीतर उनकी उम्र, योग्यता तथा रुचि के अनुसार सामूहिक करके विशेष कक्षाओं के आयोजन के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। इन बालकों की अधिगम संबंधी समस्याओं को पृथक कक्षाएँ आयोजित करके ही दूर किया जाता है। इन पृथक कक्षाओं में प्रशिक्षित अध्यापक तथा अन्य अध्यापकों के सहयोग से इनकी सहायता की जाती है।

4.विशेष विद्यालय– इन बालकों को सामान्य विद्यालयों में सामान्य बालकों के साथ बैठाकर शिक्षण नहीं कराया जा सकता है। अतः उनके लिए पृथक विद्यालय, विशेष विद्यालय की व्यवस्था की जाती है जहाँ श्रवण बाधित बालकों को शिक्षित करने संबंधी उपकरण, सामग्री, सुविधा और प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यवस्था होती है।

5.आवासीय विद्यालय– पूर्णतः श्रवण बाधित बालकों के लिए आवासीय विद्यालयों की व्यवस्था की जानी चाहिए क्योंकि इन बालकों को विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। आवासीय विद्यालयों में इन बालकों के लिए विशेष प्रावधान एवं संसाधन उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के विद्यालयों में जहाँ पूर्णतः श्रवण बाधित बालकों को शिक्षित करने हेतु सभी उपकरण, सामग्री, सुविधाएँ और प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यवस्था होती है।

6.शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन– श्रवण बाधित बालकों की अभिरुचि तथा अभियोग्यता को ध्यान में रखकर उन्हें शैक्षिक निर्देशन दिया जाना चाहिए। ऐसे बालकों के व्यवसाय की योजना पूर्व में बनाना अनिवार्य है। इन्हें ऐसे व्यवसायों की आवश्यकता है जिनमें कम से कम शाब्दिक संप्रेषण होता है। अतः इन्हें कम शाब्दिक संप्रेषण वाले व्यवसायों का प्रशिक्षण देना चाहिए। जैसे– पेंटिंग, बिजली संबंधी कार्य, कौशलयुक्त लकड़ी आदि का कार्य, खाना पकाने का कार्य, कलात्मक कार्य, बढ़ईगीरी आदि का कार्य इनके लिए उपयुक्त होते हैं। इस प्रकार इन बालकों को शिक्षित करने एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण देकर आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है।

7. प्रगतिक्रम– श्रवण बाधित बालकों की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य उसे सामान्य शिक्षा की धारा में लाना है। यदि वह एक पृथक विद्यालय में व पृथक कक्षा में पढ़ता है तो उसकी शैक्षिक प्रगति इस पर निर्भर करती है कि वह कब तक योग्य हो जाता है कि सामान्य कक्षा में बैठकर लाभान्वित हो सके।

इस प्रकार की कुशलतापूर्वक आयोजित व्यवस्था श्रवण बाधित बालकों को न केवल शिक्षित करने में सहायक होगी बल्कि उनके भविष्य को भी सुरक्षित करने में सफल होगी। पूर्णतः श्रवण बाधित बालक सामान्य कक्षा में बैठकर शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता परंतु यह भी आवश्यक है कि पूर्णतः श्रवण बाधित बालकों को सामान्य कक्षाओं में और सामान्य बालकों से अंतः क्रिया करने का अवसर मिले। अतः कुछ विषयों जिन्हें वह सामान्य बालकों के साथ बैठकर पढ़ सकता है, जैसे कला, शारीरिक प्रशिक्षण आदि को पढ़ाते समय उसे सामान्य कक्षा में बैठाया जाए जिससे वह मुख्य धारा में आ सके।

सामान्य विद्यार्थियों से भिन्न श्रवण बाधित विद्यार्थियों के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता होती है। ये विद्यार्थी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक एवं संवेगात्मक दृष्टि से सामान्य विद्यार्थियों से भिन्न होते हैं। इन विद्यार्थियों की पहचान के लिए विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का उपयोग किया जाना चाहिए। श्रवण बाधित विद्यार्थियों के लिए शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था उनकी कमियों, भिन्नताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। श्रवण बाधित विद्यार्थी मानसिक और बौद्धिक क्षमताओं के आधार पर ही प्रदर्शन करते हैं। जबकि समाज उन्हें श्रवण बाधित होने के कारण शारीरिक रूप से भी कमजोर मान लेता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन्हें मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर शिक्षा दी जानी चाहिए क्योंकि श्रवण बाधिता इनके मनोविज्ञान को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। सरकार द्वारा इनके लिए किए जाने वाले प्रावधानों का भी इन्हें लाभ मिले, इस दिशा में सकारात्मक प्रयास किए जाने चाहिए। परिवार, समाज और सरकार सबको मिलकर प्रयास करने की आवश्यकता है तथा इन विद्यार्थियों के लिए इनकी आवश्यकतानुसार समुचित वातावरण तैयार किया जाना चाहिए ताकि इन्हें भी अपने जीवन में आगे बढ़ने के अवसर मिल सकें। तभी इन श्रवण बाधित विद्यार्थियों के जीवन में समायोजन व खुशियों के फूल खिल सकते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में श्रवण बाधित विद्यार्थियों की शिक्षा के संदर्भ में अनेकों विशेष प्रावधान किए गए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. एस. पी. गुप्ता, (2010), भारत में शिक्षा का विकास, इलाहाबाद प्रयाग पुस्तक भंडार
2. आर. ए. जोसेफ, (2011), विशेष शिक्षा एवं पुनर्वास, वाराणसी, समाकलन पब्लिशर्स

3. वाई. ठाकुर, (2017), इंक्लुसिव एजुकेशन, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन
4. जी. त्यागी, (2010), उदीयमान भारत में शिक्षा, आगरा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर
5. पाल सितारा एवं वी. भोला (2013), संगम श्रवण एवं वाणी प्रबंधन, अहमदाबाद, नवीन प्रकाशन
6. ए. फरहानी, एस. फरमरजी, एम. बोडाघी और एस. बाबाजानी (2014). स्टडी ऑफ साइकोलॉजी करेक्टस्टिीक्स ऑफ स्टूडेंट्स विथ हियरिंग लॉस हू आर स्टडिइंग इन ऑरडिनरी एंड स्पेशल स्कूल्स, जर्नल ऑफ लाइफ साइंस एंड बायोमेडिसिन, 4(3), 195–199
7. ए. बी. भटनागर, अनुराग एंड नीरू (2017), इंक्लुसिव एजुकेशन, मेरठ, आर.लाल बुक डिपो
8. एस. के. मंगल, (2016), एजुकेशन साइकोलॉजी, देहली, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड
9. ए. राठौर, (2014), इमोशनल इंटेलिजेंस, न्यू देहली, हिमांशु पब्लिकेशन
10. जे. स्टीवेंसन, जे. क्रेपनर एंड के. केनेडी, (2015), इमोशनल एंड बिहेवियरल डिफिकल्टीज इन चिल्ड्रन एंड एडोलेसेंट्स विथ हियरिंग इंपेयरमेंट. ए सिस्टेमेटिक रिव्यू एंड मेटा एनालिसिस. 7(2), 75–79. http://www.ncbi.nlm.gov>article से दिनांक 16/8/19 को उद्धृत
11. आर. आर. सिंह, (2012), शिक्षा में अनुसंधान विधियाँ एवं सांख्यिकी, उत्तराखंड, उत्तरायण प्रकाशन
12. एम. सिंह, (2016), इंक्लुसिव एजुकेशन, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो
13. ए.के. सिंह, (2016), मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, नई दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास
14. ए.के. सिंह, (2016), एजुकेशनल साइकोलॉजी, न्यू देहली, भारती भवन पब्लिशर एंड डिस्ट्रीब्यूटर
15. एम. सिंह, (2016), इंक्लुसिव एजुकेशन, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो
16. एन. शर्मा, एंड जी.आर सुशील, (2017), क्रिएटिविटी एन इंक्लुसिव स्कूल, जयपुर, ठाकुर पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड
17. एस. बी. शर्मा, (2015), शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान एवं राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा की वर्तमान स्थिति, इंक्लूसिव टीचर, 2(1), 91.

❑❑❑

अहीरवाटी बोली का भाषिक संदर्भ



डॉ. कमलेश कुमारी
असोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय

किसी भी भाषा के विकास का मूल आधार है वहाँ के जनपद की जनपदीय बोली जो लोकभाषा या लोकबोली के रूप में निःसृत होती है। एक निश्चित जनपदीय क्षेत्र में प्रचलित बोलचाल के उस सहज सलीके को बोली कहा जाता है जिसे वहाँ के आम लोग अपने घरों में बिना मिलावट के नैसर्गिक रूप में प्रयोग करते हैं। हरियाणा की बोलियों को हरियाणवी नाम दिया गया है। हरियाणवी की प्रमुख बोलियों में बांगरू, कौरवी, अहीरवाटी, मेवाती, ब्रज बोली, बागड़ी बोलियाँ शामिल हैं। अहीरवाटी अपनी विशिष्टताओं के कारण क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचान का प्रमुख हिस्सा है। यह भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं अपितु यह इसे बोलने वाले लोगों की जीवनशैली, परंपराओं और सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक भी है। अहीरवाटी पर आसपास की भाषाओं का प्रभाव देखा जा सकता है। अहीरवाटी का व्याकरण हिंदी और राजस्थानी व्याकरण के समीप है लेकिन इसमें कुछ स्थानीय और सांस्कृतिक प्रभाव है, साथ ही अहीरवाटी की शब्दावली पंजाबी से भी मेल खाती है।

हिंदी भाषा से तात्पर्य हिंदी की उन सत्रह बोलियों से है जो हिंदी प्रदेश में बोली जाती है जिनका मूल स्रोत संस्कृत भाषा है। लगभग 1500 वर्ष ई.पू. आर्यों द्वारा जो भाषा बोली जाती थी, उसे संस्कृत के नाम से जाना जाता है। इन आर्यों द्वारा ही वेदों की रचना हुई है। मूल रूप से वेदों की रचना जिस भाषा में हुई, उसे वैदिक संस्कृत के नाम से जाना जाता है। वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि में भी हमें वैदिक संस्कृत के उदाहरण प्राप्त होते हैं। वैदिक संस्कृत का काल मूलतः 1500 ई.पू. से 1000 ई.पू. के मध्य माना जाता है। वैदिक ग्रंथों के अतिरिक्त साहित्य लेखन में प्रयुक्त होने वाली भाषा लौकिक संस्कृत के नाम से जानी जाने लगी। लौकिक संस्कृत का काल 1000 ई.पू. से 500 ई.पू. के मध्य माना जाता है। समय के साथ–साथ संस्कृत का विकास जनभाषा के रूप में होने लगा। 500 ई.

पू. से 1 ई. के मध्य संस्कृत भाषा का जो जनभाषी रूप उभरकर आया, उसे पालि के नाम से जाना जाता है। बौद्ध ग्रंथों में पालि भाषा का विशिष्ट और मानक रूप देखने को मिलता है। पहली ई. आते–आते बोलचाल की भाषा में परिवर्तन आने लगा, भाषा के इस परिवर्तित रूप को प्राकृत के नाम से अभिहित किया गया। प्राकृत भाषा का समय 1 ई.– 500 ई. तक माना जाता है। संस्कृत भाषा से विकसित होकर या कहें विकृत होकर भाषा का जो रूप 500 ई. से 1000 ई. के मध्य उभरकर आया, उसे अपभ्रंश की संज्ञा दी गई। इस प्रकार भाषा समय के अनुसार परिवर्तित और परिवर्धित होती गई। संस्कृत से वैदिक संस्कृत, तत्पश्चात् लौकिक संस्कृत फिर पालि–प्राकृत–अपभ्रंश और अपभ्रंश से विकास हुआ हिंदी भाषा का। अपभ्रंश को मूलतः सात भेदों में बाँटा गया है– शौरसेनी, पैशाची, ब्राचड़, मागधी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, खस।

हिंदी और उसकी बोलियों का विकास मूलतः शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ। क्षेत्रीयता के आधार पर हिंदी की पाँच उपभाषाएँ मानी जाती हैं जिनके अंतर्गत ही इन सत्रह बोलियों को शामिल किया जाता है, जो इस प्रकार हैं–

- पश्चिमी हिंदी (खड़ीबोली, हरियाणवी, ब्रज, बुंदेली, कन्नौजी समूह)
- पूर्वी हिंदी (अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी का समूह)
- राजस्थानी (उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी राजस्थानी समूह)
- पहाड़ी (पश्चिमी तथा मध्यवर्ती पहाड़ी समूह)
- बिहारी (भोजपुरी, मगही, मैथिली का समूह)

हरियाणवी पश्चिमी हिंदी की एक उपबोली है। हरियाणा की बोलियों के समुच्चय को हरियाणवी नाम दिया गया है। इसे 'हरयानी', 'हरियानी', 'हरियाणी' आदि नाम भी दिए गए हैं किंतु सरकार ने इस राज्य का नाम 'हरयाणा' के स्थान पर 'हरियाणा' स्वीकार किया है। अतः राज्य के नाम के आधार पर यहाँ की भाषा का नाम 'हरियाणवी' उचित है। हरियाणवी के अंतर्गत बांगरू, कौरवी, अहीरवाटी, मेवाती, ब्रज बोली शामिल है। इस संदर्भ में रघुबीर सिंह मथाना कहते हैं कि "जब किसी भी भाषा के मूल को खोजते हैं तो उसे कहीं–न–कहीं लोकभाषा अथवा जनभाषा में ही समाहित पाते हैं। भाषा परिनिष्ठित रूप में पहुँचने के लिए लोकप्रचलित बोलियों से पुष्ट होती है। देववाणी संस्कृत भी लोकभाषा ही थी। इसका आदिमरूप तत्कालीन लोकजीवन की बोलचाल में प्रचुरता से प्रयोग होता था। यही बात पालि और प्राकृत के संबंध में कही जा सकती है। "कोई भी भाषा अचानक टकसाल से निकलकर साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो जाती, बल्कि लोकप्रचलित जनभाषा के शब्दों को छील–तराशकर उन पर तथाकथित भाषा का मुलम्मा चढ़ा लिया जाता है और इस प्रकार अधिकृत शब्द–संपदा पर भाषा रानी इठलाने लगती है।"[1]

तत्कालीन साहित्यिक भाषा ब्रज और लंबे समय तक कामकाज की भाषा रह चुकी उर्दू का निर्माण हरियाणवी एवं उसकी उपबोलियों से हुआ है। वर्तमान की राष्ट्रीय भाषा हिंदी भी हरियाणवी का शहरी रूप ही है। डॉ. बाबूराम का मानना है कि "हरियाणवी भाषा के उद्‌भव और विकास का प्राचीन आर्य भाषाओं के साथ–साथ मध्यकालीन और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं– पंजाबी, राजस्थानी और ब्रज के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है। ये हरियाणा प्रदेश में पड़ोसी राज्यों की भाषाएँ हैं। अतः इनकी शब्दावली और भाषाई प्रयोग का पारस्परिक संबंध, आदान–प्रदान और प्रभाव स्वाभाविक है।"[2]

हरियाणा का इतिहास अत्यंत समृद्‌ध एवं गौरवशाली रहा है। महाभारत के युद्‌ध क्षेत्र के रूप में विश्वविख्यात प्रदेश हरियाणा को वीरप्रसूता भूमि होने का गौरव प्राप्त है। श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश इस पावन धरा पर दिया गया। 'मनुस्मृति' की निर्माणस्थली भी यही पावन धरा रही है। हरियाणा की पहचान को बनाए रखने में यहाँ के लोगों की बोली, पहनावा, लोकसाहित्य, लोककलाएँ भी विशेष महत्व रखती हैं।

हरियाणा 1 नवंबर 1966 को पंजाब से अलग सत्रहवाँ राज्य बनाया गया। इससे पूर्व इस प्रदेश को पंजाब राज्य का हिंदीभाषी क्षेत्र माना जाता रहा है, किंतु यह अनुचित था। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से यह प्रांत अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में डॉ. महिमा कहती हैं कि "धरातलीय दृष्टि से हरियाणा प्रदेश के तीन प्राकृतिक खंड हैं– 1–शिवालिक की पहाड़ियों का प्रदेश, 2–घग्गर–यमुना का क्षेत्र, 3–अरावली की पहाड़ियों की तलहटी में शुष्क मैदानी भूखंड।"[3] हरियाणा में वर्तमान में 22 जिले हैं। इस प्रदेश की उत्तरी और पूर्वी सीमा घग्गर और यमुना नदी निर्धारित करती है। इस बारे में बताते हुए डॉ. बाबूराम लक्ष्मण जी आगे कहते हैं कि "हरियाणवी का क्षेत्र हरियाणा राज्य के अतिरिक्त उसके सीमावर्ती क्षेत्र भी हैं। दिल्ली को जिस समय 1911 ई. में ब्रिटिश सरकार ने भारत की राजधानी बनाया, तो दिल्ली शहर के अतिरिक्त चारों दिशाओं के गाँव सुरक्षा की दृष्टि से दिल्ली प्रांत में ही रखे गए। इन ग्रामीण क्षेत्रों की बोली हरियाणवी ही है जिसे देहाती या ऊँची बोली कहा जाता है। यही नाम हरियाणवी का भी पर्याय है। उधर यमुना पर मेरठ तक हरियाणवी की कौरवी बोली का वर्चस्व है। हरियाणा से सटे राजस्थानी क्षेत्र भरतपुर तक हरियाणवी का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।"[4]

अहीरवाटी, अहीरी, हीरी या हीरवाल हरियाणवी की एक प्रमुख बोली है। यह बोली अहीर जाति–बाहुल्य क्षेत्र में बोली जाती है। अहीरवाटी बोली बांगरू, बागड़ी और मेवाती बोलियों से घिरी हुई है। फिर भी इन सभी बोलियों में क्रियाओं के रूप लगभग एक समान प्रत्ययों की सहायता से बनते हैं जिसके कारण अहीरवाटी की

अपनी स्थानीय विशेषताएँ इसे अन्य बोलियों से अलग करती है। "मेवाती, ब्रजभाषा और राजस्थानी भाषाओं के समीपस्थ भू–भाग की बोली होने के कारण इस पर उपर्युक्त तीनों भाषाओं का ध्वनि–प्रभाव है। इसका उच्चारण हरियाणवी की अपेक्षा किंचित् मृदु है। हरियाणवी में 'कडै' राजस्थानी में 'कथै' मेवाती में 'कित्' एवं अहीरवाटी में इसका 'कैठे' किया जाता है।"[5] डॉ. पूर्णचंद शर्मा ने अहीरवाटी, बांगरू और बागड़ी के सामीप्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "अहीरवाटी बांगरू और बागड़ी (शेखावटी) में कहीं–कहीं तो इतनी गड्डमड्ड हो गई है कि इसे इन बोलियों से अलग पहचानना दुष्कर हो जाता है। ऐसी स्थिति में उच्चारणिक वैशिष्ट्य, व्याकरणिक सूक्ष्मता एवं अभिधार्थक शब्दावली ही इसकी पहचान में सहायक होती है। इसके एक और जहाँ बांगरू को वर्तमानकालिक सूँ, सै, सैं आदि मुख्य व सहायक क्रिया रूप प्रदान किया है, वहीं उससे बदले में 'णत्व' एवं द्वित्व व्यंजन प्रवृत्ति ग्रहण की है।"[6] यह बोली ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत प्राचीन है। अहीरवाटी का सीमा विस्तार दक्षिणी हरियाणा, दिल्ली और राजस्थान का सीमावर्ती इलाका है। हरियाणा में मुख्यतः रेवाड़ी, कोसली, महेंद्रगढ़, नारनौल, पटौदी, गुरुग्राम तथा झज्जर जिले खेड़ी खातीवास से सटा क्षेत्र है। भिवानी, दादरी तथा दिल्ली के नजफगढ़ क्षेत्र के आसपास अहीरजाति के बहुत से लोग अहीरवाटी बोलते हैं। राजस्थान में अलवर जिले की तहसील बहरोड़, मुंडावर, किशनगढ़, बानसूर, कोटपूतली के उत्तरी भाग में भी यही बोली बोली जाती है। अहीरवाटी की प्रमुख विशेषताएँ भी देखी जा सकती हैः–

1. अहीरवाटी में आकारांत के स्थान पर ओकारांत हो जाता है उदाहरण के लिएः भेजा–भेज्यो, लिखा–लिख्यो, खाणा–खाणों
2. अहीरवाटी की शब्दावली, वाक्य–रचना और व्याकरणिक विशेषताएँ लगभग बांगरू से मिलती–जुलती हैं।
3. यह सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बांगरू और राजस्थानी के करीब है।
4. अहीरवाटी में मेवाती, बागड़ी और ब्रज का पुट होने के कारण ब्रज का माधुर्य एवं राजस्थानी का प्रसाद दृष्टिगोचर होता है।
5. लोकसाहित्य की दृष्टि से अहीरवाटी का क्षेत्र अत्यंत संपन्न है।

अहीरवाटी की उत्पत्ति, उसके क्षेत्र–विस्तार, समीपवर्ती बोलियों में अहीरवाटी का स्थान आदि का अध्ययन करने के पश्चात् इसके व्याकरण संबंधित पहलुओं– ध्वनि प्रक्रिया, संज्ञापद रचना, कारक विधान, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि पर विचार करना अनिवार्य है। डॉ. शंकर लाल यादव ने अहीरवाटी बोली और उसके व्याकरण का विस्तृत अध्ययन किया है। उनके अध्ययन को आधार मानते हुए अहीरवाटी की व्याकरणिक विशेषताओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

खड़ी बोली हिंदी की आकारांतता की तुलना में अहीरवाटी ओकारांत बोली है। दूसरे शब्दों में आकारांत शब्द ओकारांत हो जाते हैं, आ की मात्रा ओ या औ में परिवर्तित हो जाती है। उदाहरण–

हिंदी	**अहीरवाटी**
गया	गयो
खाया	खायो
देखा	देख्यो
लिखा	लिख्यो
भेजा	भेज्यो
रहा	रह्यो
हादसा	हादसो
भूखा	भूखो
बेटा	बेटो
दूसरा	दूसरो
खाना	खाणो
चलाना	चलाणो
ओढ़ना	ओढ़णो

खड़ी बोली हिंदी के संयुक्त स्वर ऐ, औ अहीरवाटी इ, ओ में परिवर्तित हो जाते हैं। उदाहरण–

कैसा	किसो
लौ	ल्यो
दौड़	दोड़
भौं	भो
दौड़ा	दोड्यो

अहीरवाटी का संस्कृत से सामीप्य है किंतु अहीरवाटी के उच्चारण में संस्कृत के उकारांत शब्द अकारांत हो जाते हैं। जैसे–

संस्कृत		**अहीरवाटी**
बंधु	बंद	भईबंद
वस्तु	बस्त	चीजबस्त

अहीरवाटी की प्रमुख विशेषता है कि शब्द के अंत में आने वाली महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण हो जाती हैं। जैसे–

देश	देस
भीख	भीक
लोभ	लोब

सुखी	सुकी
देख	देक
दूध	दूद
धंधा	धंदा

किंतु अपवाद स्वरूप अहीरवाटी में कई बार महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण न होकर महाप्राण ही रह जाती हैं तथा अल्पप्राण ध्वनियाँ महाप्राण न होकर अल्पप्राण ही रह जाती हैं :–

मेघ	मेह
देश	देस
भेष	भेस

अहीरवाटी में ध्वनिगामीय मूल्य की विशेषता होती है। अहीरवाटी में 'ल्' तथा 'ल़' इन दो ध्वनियों का प्रयोग मिलता है। इन ध्वनियों के उलटफेर से ही शब्दों के अर्थ में भारी अंतर हो जाता है। साथ ही अहीरवाटी में 'ल' ध्वनि का लिपि में कोई संकेत नहीं है लेकिन यह ध्वनि अत्यंत प्राचीन है। 'ल़' ध्वनि के नीचे बिंदु लगाकर इस ध्वनि का उल्लेख किया जाता है। 'ल' और 'ल़' ध्वनि में अंतर है। 'ल' पार्श्विक अल्पप्राण सघोष ध्वनि अर्ध स्वर है, किंतु 'ल़' पार्श्विक अल्पप्राण सघोष मूर्धन्य ध्वनि व्यंजन है। इस 'ल़' का प्रयोग अहीरवाटी के अतिरिक्त वेदों में हुआ है तथा बाद में संस्कृत साहित्य में भी इसका प्रयोग मिलता है। प्राकृत के साथ–साथ तमिल, पंजाबी, गुरुमुखी एवं मराठी में भी 'ल.' का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है।

आल़ो (गीला या भीगा हुआ)	आल़ो – भित्ति में बनी ताख
ल़हास या लाश	ल्हास (पशुओं को चारा डालने हेतु स्थान)
पीसना	पीसणा (आटा या गेहूँ साफ करने की प्रक्रिया)

अहीरवाटी में खड़ीबोली की तुलना में मूर्धन्य, नासिक्य, सघोष अल्पप्राण 'ण' का प्रयोग बहुलता से होता है। क्रियार्थक संज्ञाओं का 'णों' प्रत्यय अहीरवाटी की मूल विशेषता है।

खाना	–	खाणो
सोना	–	सोणो
पीना	–	पीणो
घूमना	–	घूमणो

अहीरवाटी, बांगरू व बागड़ी आदि बोलियों में 'न' का महाप्राण रूप 'ह' तथा 'म' का महाप्राण 'म्ह' में परिवर्तित हो जाता है। ठीक इसी प्रकार 'ल' का महाप्राण रूप 'ल्ह' एक ध्वनि है, संयुक्त व्यंजन नहीं। उदाहरण–

धोल़ो	सफेद
नोहरो	पशु पालने का स्थान
खोरो	ईंट का छोटा टुकड़ा
म्हारो	हमारा
मोरो	नाला
धोरे	पास

उत्तर की अहीरवाटी में शब्द के आदि का 'आकार' सदैव निलंबित, खुला, मंद और मोटा होता है। अहीरवाल के इस भाग में 'अच्छा' को 'आऽच्छो' उच्चारण होता है। अन्य शब्द इस प्रकार हैं–

भागना	भाऽगणों
कल	काऽल्
जमना	जाऽमणो

दीर्घ स्वर के बाद के व्यंजन का अहीरवाटी में द्वित्व हो जाता है और दीर्घ स्वर का ह्रस्व हो जाता है। इस प्रकार द्वित्व व्यंजन से पहले के स्वर, ई, ऊ, ए, ओ क्रम से ह्रस्व इ, उ, ऐ, ओ, में बदल जाते हैं। जैसे–

देखा	देख्यो
चलना	चल्यो
डालना	डाल्यो
बुझा	बुज्झो
सीखा	सीख्यो
रोटी	रोट्टी

अहीरवाटी में तालव्य 'श' के स्थान पर दंत्य 'स' का प्रयोग होता है–

श्रावण	सावण
देश	देस
वेश	वेस
खुश	खुस
शृंखला	सांकल

अहीरवाटी में वचन की दृष्टि से संज्ञा के दो रूप मिलते हैं– एकत्वबोधक एकवचन तथा अनेकत्वबोधक बहुवचन। सभी भाषाओं में वचन–विधान प्रायः संश्लिष्ट होता है, परंतु अहीरवाटी में विशिष्ट रूप में मिलता है जिसके अंतर्गत संज्ञा शब्दों के साथ स्वतंत्र शब्दों को रखकर अनेकत्व का बोध कराया जाता है। बहुवचन द्योतक शब्द हैं:–

	हर् (सब)	जणा (सब) जणी।
जैसेः–	अजय हर गया	अजय आदि सब गए

निधि हर गई	निधि आदि सब गईं
सारी जणी ढूंढ ल्यो	सब खोज लो

हिंदी में कारक आठ माने गए हैं जबकि संस्कृत में इनकी संख्या सात है। परंतु बोलियों में विकसित रूपों में कारकों की स्थिति अलग है। अहीरवाटी में कारकों की संख्या तीन मानी जा सकती है– मूल रूप, विकारी रूप तथा संबोधन रूप।

मूल रूप :	छोरो	छोरा
विकारी रूप :	बीरबानी	बीरबनियाँ
संबोधन :	छोरा	छोरो

मूल रूप :–

डांगर आया	पशु आया
टाबर बुलायो गयो	बच्चा बुलाया गया

विकारी रूप :–

चोरां नै पुलीस ले गी	चोरों को पुलिस पकड़ ले गई
बीरबनियाँ नैं बुला ले	महिलाओं को बुला लो

संबोधन :–

अरै छोरा	अरे लड़के (एकवचन)
अरै छोरों	अरे लड़कों (बहुवचन)
ए छोरी	अरी लड़की (एकवचन)
ए छोरियों	अरी लड़कियों (बहुवचन)

<u>सर्वनाम पद रचना :</u> सर्वनाम का उपयोग संवाद में वक्ता और श्रोता के बीच संबंध और संदर्भ के अनुसार किया जाता है। खड़ीबोली हिंदी की भाँति अहीरवाटी में आठ प्रकार के सर्वनाम हैं। कहीं–कहीं शब्द प्रयोग की दृष्टि से अंतर भी है।

1. पुरुषवाचक–अहीरवाटी में पुरुषवाचक सर्वनाम का प्रयोग उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष के रूप में किया जाता हैं तथा इन रूपों में लिंग भेद नहीं होता है। अन्य पुरुष के लिए निकटवर्ती तथा दूरवर्ती संकेत वाचक सर्वनाम रूपों का प्रयोग किया जाता है।

अहीरवाटी में पुरुष वाचक सर्वनाम रूपों में हिंदी की तुलना में बहुत अंतर है। उत्तम और मध्यम पुरुष के कर्मणि प्रयोग में कर्ता कारक तथा उत्तम व मध्यम पुरुष सर्वनाम इस प्रकार हैं :

उत्तम पुरुष

1. कर्ता कारक –	मैं	हम
2. कर्म कारक –	मैं, मुँन्नें, मन्नै	हम, हमनै
3. करण कारक–	मुत्ते, मत्तै, मेरा तं, मेरा सै	हम तै, म्हारा सै,

4. संप्रदान कारक–	मुँन्नें, मन्नै, मेरा ताई।	हमनै, म्हारे ताइँ
5. अपादान कारक–	मेरा तै, मेरा धौरेतै, मुत्ते	म्हारे तै, म्हारे धोरितै,
6. संबंध कारक–	मेरो, मेरी	म्हारो, म्हारी
7. अधिकरण कारक–	मेरा–में, मेरा पै	म्हारा मैं, म्हारा पै।

मध्यम पुरुष

1. कारक–	तू, तै	थम
2. कर्म कारक–	ते, तूँन्नै, तैन्नें	थम, थम नै, थानै
3. उपकरण कारक–	तै, तूँन्नै, तैन्नै	थम, थम नें, थानै
4. करण कारक –	तू–त्ते, तेरा सै	थम तै, थारा सै
5. संप्रदान कारक–	तूँन्नै, तेंन्नें, तेरा–तांई	थमने, थारे लिए
6. अपादान कारक–	तेरा तै, तेरा सै	तूँ–तै, थारा सै, थारा कने तै, थम तै
7. संबंध कारक –	तेरो, तेरी	थारो, थारी
8. अधिकरण कारक–	तेरा में, तेरा पै	थारा में, थारा पै

संबंध एवं सह–संबंधवाचक

	जो		ओह् (सो)	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कर्ताकारक	जो	जो	ओह, सो	ओह, सो
तिर्यक्रूप	जों, जिस	जिस, जिस	वै, उस	उस, उस
संबंधकारक	जै हूँ को	जे है कै	जे है को	वै है कै

संबंधवाची रूप कहावतों एवं कथावाचकों की शब्दावली में अधिकतर प्रचलित हैः

जैसी तेरी बाकली वैसा महरा गीत
कद मरी सासू, कद आया आसू
म्हारी जुत्ती तेरो सिर।

सह–संबंधवाचक सर्वनामों पर आधारित रूपों को भी देखा जा सकता हैः–

हिंदी	अहीरवाटी
यहाँ से	उरा तै
वहाँ से	उत तै
जहाँ से	जित तै
कहाँ से	कित तै
इतनो	ओड
ऐसा–वैसा	इसो–उसो
इनको	इणको

आपकी तरह	थारी तरियां
हमारी तरह	म्हारी तरियां
मुझे	मन्नै
कुछ	किमी
क्या मालूम	के पतो, के बेरो

विशेषण–पद–रचना

विशेषण पद रचना संज्ञा के साथ उसके गुण, रंग, आकार आदि को जोड़ने का तरीका है। पद रचना की दृष्टि से अहीरवाटी विशेषण शब्दावली ओकारांत के लिंग–वचन कारक के अनुसार विभक्ति–प्रत्यय ग्रहण करती है जबकि संपूर्ण विशेषण शब्दावली अपने विशेष्य के लिंग वचन–कारक से अप्रभावित रहती है। इन दोनों प्रकार के विशेषण शब्दों की रचना मूल व विकारी रूप में होगी।

1. गुणवाचक : गुणवाचक विशेषण में ओकारांत के उदाहरण देखे जा सकते हैं :

सोहणो (सुंदर)	काणो (काना)
कंगलो (निर्धन)	मंगतो (भिखारी)
खोटो, खरो, स्याणो (चतुर)	सूगलो, भूँडो (असुंदर, गंदा)
पियासो (प्यासा)	सूधो (सीधा) परायो (दूसरे का)
इसो (ऐसा) उसो (वैसा)	किसो (कैसा) जिसो (जैसा)

2. साथ ही अहीरवाटी 'ड़ो' प्रत्ययांत शब्द भी गुणवाचक विशेषण के उदाहरण के रूप में देखने में आते हैं। ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम है जैसेः

लड़ोकड़ो (झगड़ालू)
जलोकड़ो (ईर्ष्यालु)
पिटोकड़ो (मारखाने वाला),
चुगल–खोरड़ो (चुगली करने वाला),
मेरड़ो (मेरे वाला)
तेरड़ो (तेरे वाला)
थारड़ो (आपवाला)
म्हारड़ो (हमारे वाला)
इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखे जा सकते हैं–

खाऊ (बेईमान)	उजाडू (खर्चीला)
नकटों (ढीठ)	मूंजी (कंजूस)
ठाली (बेकार)	ऊत् (बदमाश)

2. परिणामवाचक : थोड़ो, घणी, पूरो, आधो, इतणो, उतणो, कितणो, जितणो आदि।

3. संख्यावाचक : दो, नो, सो, आदि।

एक, तीन, च्यार, ग्यारा, बारा, तेरा, उणासी, नब्बै, इक्याणमै, बाणमै

4. क्रमवाचक : पैहलो, दूसरो, तीसरो, चौथो, दसवों, ग्यारवों, आधो, सवायो, माड़ो सो दूज्, तीज्, चौथ्, पाँचै, सात्तै, आठईं, ग्यारस्, तेरस्, चौदस्, मावस्, पुन्यो आदि तथा तिहाई, दुगणो, तिगणो, चौगुणो आदि।

5. समूहवाचक : जोड़ो, पंजो आदि।

च्यारूँ, पांच्यूँ आदि। जोड़ी कौड़ी, हजार, लाख आदि तथा दोन्यूँ, तीन्यूँ

6. क्रियामूलक : अहीरवाटी में तो, णो, यो, डो कृदंत प्रत्यय लगाकर क्रियामूलक विशेषणों की रचना की जाती है– रोतो, रोवणो, खोयो, भूल्यो, छोड्यो, आयोडो।

क्रिया विशेषण

अहीरवाटी में क्रिया विशेषण का उपयोग वाक्य में विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट और विस्तृत करने के लिए किया जाता है। ये वाक्य के अर्थ को अधिक सटीक और विस्तृत बनाते हैं। अहीरवाटी की शब्दावली अव्यय कोटि में आती है। इनके द्वारा क्रिया की विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है:–

अहीरवाटी	हिंदी
कद्	कब
तड़कै	कल (आने वाला दिन)
जित	जहाँ
उप्पर	ऊपर
नयूँ	इस प्रकार
परली पार	उस पार
इतणो	इतना

अव्यय

अहीरवाटी में कुछ रूढ़ पद हैं जिन्हें अव्यय की श्रेणी में रखा जा सकता है। उदाहरण देखा जा सकता है–

जै	यदि
पर्	परंतु, लेकिन
हम्बै	जी हाँ

अहीरवाटी की व्यापकता के कारण इसका व्याकरण अत्यंत विस्तृत है। संज्ञा, सर्वनाम, कारक, विशेषण, क्रिया विशेषण, अव्यय आदि पर उदाहरण सहित प्रकाश डाला गया है, साथ ही काल रचना, प्रत्यय, सहायक क्रिया तथा वाच्य का प्रयोग भी अहीरवाटी के उन्नत व्याकरण में शामिल है।

संदर्भ–ग्रंथ सूचीः

1. हरियाणवी साहित्य का इतिहास, रघुबीर सिंह मथाना, डॉ. बाबूराम लक्ष्मण साहित्य प्रकाशन, रोहतक, प्रथम संस्करण 2004, पृ.17
2. हरियाणवी भाषा और साहित्य, डॉ. बाबूराम, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, संस्करण, पृ.19
3. हरियाणा : संस्कृति एवं कला, डॉ. महिमा, निर्मल पब्लिशिंग हाउस, कुरुक्षेत्र, संस्करण 2015, पृ.3
4. हरियाणवी साहित्य का इतिहास, रघुबीर सिंह मथाना, डॉ. बाबूराम, लक्ष्मण साहित्य प्रकाशन, रोहतक, प्रथम संस्करण 2004, पृ. 17
5. हरियाणाः भाषा, साहित्य एवं संस्कृति, पूर्णचन्द शर्मा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, प्रथम संस्करण, 2023, पृ.71
6. वही, पृ.71
7. हरियाणा की उपभाषाएँ, डॉ. साधुराम शारदा, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, संस्करण–2011, पृ.200

❑❑❑

मेरी दुर्बलता को हर कर
नई शक्ति नव साहस भर कर
तुम ने फिर उत्साह दिलाया
कर्म क्षेत्र में बढ़ूँ सँभलकर
तब से मैं अविरत बढ़ता हूँ
बल देता है प्यार तुम्हारा

–त्रिलोचन

स्वबोध में निहित है उन्नति का बीजमंत्र



डॉ. गौरव रंजन

सहायक प्राध्यापक, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, औड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय

हमारी समस्त उपलब्धियाँ किसी न किसी रूप में जिज्ञासा का परिणाम रही हैं। जिज्ञासा मतलब जानने की इच्छा.. कौन, क्या, कहाँ, कैसे, कब....। यही जिज्ञासा संचार की पृष्ठभूमि तैयार करती है और इसी जिज्ञासा ने मानव समाज को अंतस् में देखने का अवसर भी दिया। अंतस् की इस यात्रा में ही हमारा संपर्क जीवन के उन सूत्रों से हुआ जो कालांतर में धर्म एवं दर्शन की स्थापना का आधार बने। ये सूत्र ही मानवीय प्रगति के सोपान के रूप में परिवर्तित होते गए और प्राचीन काल से लेकर अब तक की सारी भौतिक–आध्यात्मिक उपलब्धियाँ इन्हीं सूत्रों से नियंत्रित, निर्धारित और अनुप्राणित होती आई हैं।

जब से जीवन है तब से व्यक्ति यह जानने की कोशिश करता रहा है कि वह कौन है, कहाँ से आया है, क्यों आया है? स्वयं के बारे में यह जिज्ञासा बड़े संदर्भों में 'स्व' की पड़ताल का प्रस्थान बिंदु है और आदि मानव से लेकर अब तक की इस विकास यात्रा में हर क्षण मनुष्य अपने बारे में और जानने की इस उत्कंठा से घिरा रहा है। यह उत्कंठा एक ओर जहाँ व्यक्ति में अपने अतीत से जुड़ने की प्रक्रिया को तीव्र करती है, वहीं वर्तमान स्थिति के प्रति संतुष्ट या असंतुष्ट, सहज या असहज बनाती है। स्व के प्रति यह उत्कंठाभाव ही व्यक्ति में और समाज में वर्तमान के प्रति असंतोष पैदा कर क्रांतिबीज का सृजन, स्थापन करता रहा है और युद्ध–शांति, सृजन–विध्वंस सब में हम इसी स्व का गुंजन पाते हैं...। स्व की इस खोज में यथास्थितिवाद का चिरंतन विरोध निहित है और बार–बार हारकर भी पराभव को स्वीकार करने की जगह जीत की उत्कंठा से युद्धभूमि की ओर ले जाने वाला प्रेरक तत्व यह स्व ही है। यही स्वबोध उपनिषदों में कहीं उत्तिष्ठ, जाग्रत.. का निनाद करता दिखता है तो कहीं 'तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतगमय' की शुभेच्छा के रूप में सामने आता है....।

स्व यानी अंतस् की खोज अपने भीतर झाँकने की प्रक्रिया का नाम है। अंदर की ओर देखना साधारण बात नहीं है। पश्चिमी दुनिया ने बाह्य जगत की विविधताओं पर ध्यान केंद्रित किया। इसी कारण भौतिक आविष्कारों और अन्वेषणों का श्रेय प्रायः पश्चिम को जाता है। लेकिन अपने भीतर झाँकने की बात आई तो पश्चिम किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। इसके विपरीत भारतीय मनीषा ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की। साधना, उपासना, चिंतन, मनन में जितनी प्रगति हुई है, भारत का अवदान इस क्षेत्र में विशिष्ट रहा है। सनातन संस्कृति वेदों को अपौरुषेय मानती है और पूरी दुनिया इस तथ्य को स्वीकार करती है कि ऋग्वेद वैश्विक पुस्तकालय के प्रथम ग्रंथ हैं। उपनिषदों में ज्ञान का जो अजस्र भंडार है, वह पूरी दुनिया के लिए आध्यात्मिक प्रकाश स्तंभ की तरह हैं। वैचारिकी के हर पहलू का स्रोत उपनिषदों में मिल जाता है। उपनिषदों की महत्ता इतनी ही नहीं है कि ये आध्यात्मिक विचारों के संवाहक हैं, ये वैश्विक दृष्टि भी देते हैं।

ईशोपनिषद का पहला ही मंत्र त्यागभाव से जीने का सलीका बताता है। कठोपनिषद् मृत्यु पर विजय का शंखनाद है। बृहदारण्यक भौतिक उन्नति पर आध्यात्मिक उन्नति की वरीयता सिद्ध करने की दृष्टि से अप्रतिम ग्रंथ है। उपनिषदों में 'सत्यमेव जयते' का उद्घोष है तो 'सत्यं वद' की नसीहत भी। 'बाइबिल' कहता है कि पड़ोसी से प्रेम करो लेकिन अगर जिज्ञासा हो कि क्यों, तो इसका उत्तर बाइबिल क्या, पूरे पश्चिम के पास नहीं है। इसका उत्तर उपनिषदों में मिलता है इस सूत्र में जो कहता है 'तत्वमसि'...क्योंकि वह तुम ही हो।

स्वयं को जानने–समझने की भारतीय ज्ञान परंपरा की शिक्षा हमें विश्वगुरु के पद पर आसीन करती है। बुद्ध ने कहा– 'अप्प दीपो भव'। अपना प्रकाश स्वयं बनो। यह तब होगा जब हम स्वयं को जानेंगे। स्वयं को जाने बिना हम अपना पथ प्रदर्शक कैसे बन सकते हैं? भारतीय परंपरा में समष्टि से व्यष्टि को जोड़ा गया है। यह शिक्षा दी गई है कि स्वयं से बड़ा परिवार को समझो और परिवार से बड़ा समाज को...। इसी कारण स्व की खोज अंततः समाज कल्याण की शुभधारणा और भावना में बदल जाती है। अपनी चिंता करते–करते व्यक्ति समाज की चिंता करने लगता है... और तब उद्घोष होता है 'वसुधैव कुटुंबकम' का। पश्चिम ने ग्लोबल विलेज की जो परिकल्पना आज की है वह अवधारणा भारतीय परंपरा और साहित्य में सदियों से है, हमारी परंपरा और संस्कृति का हिस्सा बन चुका है।

स्व–अवधारणा वह विचार या छवि है जो हमारे पास है। यह आंतरिक प्रतिबिंब हमारे द्वारा की गई भूमिकाओं, हमारे लक्ष्यों और उद्देश्यों, हमारे व्यक्तित्व, हमारी विचारधारा या दर्शन आदि से निर्मित और अनुकूलित है। 'स्व' उपसर्ग से बनने वाले शब्दों से इसकी परिधि का विस्तार होते हम देख सकते हैं। स्वरूप, स्वहित, स्वाध्याय,

स्वदेश, स्वदेशी, स्वतंत्रता, स्वाधीनता, स्वभाषा, स्वराज जैसे शब्दों में जो भाव निहित है वह स्व का ही विस्तार है।

'स्व' को अगर बीज मानें तो पेड़ को इस 'स्व' का ही विस्तार मानना पड़ेगा। व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से विश्व का विस्तार सही अर्थों में स्व का ही विस्तार है और इस नाते यह हमसे उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा भी करता है। भगवान राम इसलिए हमारे आराध्य नहीं हैं कि उन्होंने रावण जैसे दुर्दांत और शक्तिशाली के आतंक से मुक्ति दिलाई। वे इसलिए वरेण्य हैं क्योंकि उनकी हर गतिविधि में स्व के नियमन और स्व के विस्तार की भावना दिखती है। उनका व्यक्तित्व मानवीय व्यवहार का आदर्शतम रूप उपस्थित करता है। 'साकेत' में श्रीराम की यह उद्घोषणा बहुत महत्वपूर्ण है जिसमें वे समाज के परिवर्तन, जागरण को अपना लक्ष्य बताते हुए कहते हैं–

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

इसी कारण श्रीराम युगों से हमारे आदर्श हैं। स्व का यही बोध साहित्य की असली पूंजी है, उसका वर्ण्य विषय है। इस स्वबोध ने ही साहित्यकारों को रचनाशीलता की ओर प्रेरित किया है और यही स्वबोध क्रांतिनायकों को भी प्रेरित करता रहा है। तभी 'गीता में' श्रीकृष्ण कहते हैं– संभवामि युगे युगे।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज को दिशा देने का काम साहित्य और साहित्यकार करते आए हैं। वे हमें युगधर्म और राष्ट्रधर्म के प्रति सचेत करते आए हैं। यह युगधर्म स्वत्वबोध से उत्पन्न होता है, सिंचित–अनुप्राणित होता है। यही युगधर्म अंततः राष्ट्रधर्म भी बन जाता है और राष्ट्र के लिए जीने–मरने का संकल्प भी।

आदिकवि भगवान वाल्मीकि ने रामायण की रचना इसी युगधर्म के दृष्टिगत की होगी तो तुलसी की रामकथा अंततः राष्ट्रधर्म की पुकार बन गई। यही राष्ट्रधर्म राम को 'साकेत' में यह कहते उद्धृत करता है 'संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया, इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया...।' यह परिवर्तन का वह नाद है जो हर तरह से कल्याणमय है और पूरे राष्ट्र को उसके स्व का परिचय कराने वाला है।

इस पृष्ठभूमि में देखें तो आदिकवि वाल्मीकि का भगवान राम को अपना आदर्श बनाना सामाजिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण घटना रही है। तब से श्रीराम आज तक हमारे मानसपटल पर चरित्र नायक की तरह प्रतिष्ठित हैं और युगों–युगों तक प्रतिष्ठित रहेंगे। उनका पूरा जीवन मानवजाति के लिए उदाहरण है तो उन्हें प्रेरणास्रोत स्वीकार करने में साहित्य और साहित्यकारों की महती भूमिका रही है। राम और कृष्ण हमारे नायक हैं और हर युग में साहित्यकारों के वर्ण्य–विषय रहे हैं। रामायण और महाभारत केवल इतिहास नहीं हैं। इनमें जो कहा गया है वह हमारा अतीत तो है ही,

हमारे लिए स्वत्वबोध का परिचायक भी है। एक में मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम का चरित्र–चित्रण हुआ तो दूसरे में गीता का उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप के दर्शन होते हैं। गीता का ज्ञान कहने को तो अर्जुन को मिला पर इसने समस्त मानवजाति को कर्मयोगी बनने का जो संदेश दिया, वह गीता को वैश्विक प्रभाव वाला बना देती है। युगधर्म और स्वत्वबोध के प्रति सचेत करना ही गीता की उपादेयता है। यह क्रम निरंतर जारी है। साहित्य प्रेरणा तो है ही, स्वत्वबोध के प्रति हमें निरंतर सचेत कर रहा है। दो में से तुम्हें क्या चाहिए, कलम या कि तलवार... कविता में हम इसी स्वत्वबोध का निनाद महसूस करते हैं जहाँ कवि युवा पीढ़ी से यह प्रश्न कर रहा है कि बताओ भविष्य निर्माण के लिए तुम्हें तलवार चाहिए या कलम? कलम मतलब साहित्य सर्जना का हथियार। वास्तविकता के धरातल पर देखें तो एक तलवार तो एक सैनिक की सहयोगी हो सकती है किंतु एक कलम? वह तो न जाने कितनों में क्रांतिबीज का सृजन करने में सक्षम है। कवि, लेखक और साहित्यकार इसी कारण जागरण के अग्रदूत कहे जाते हैं क्योंकिं अपनी रचनाओं से वे समाज में प्रेरणा और जागृति का बीजारोपण करते हैं। साहित्यकार अपनी रचनाओं से समाज के स्वत्व का जागरण ही तो करता है...। कभी युगधर्म, तो कभी राष्ट्रधर्म के दृष्टिगत युगनायकों से समाज का साक्षात्कार कराने वाले कवि प्रकारांतर से इसी स्वत्व का तो आह्वान करते हैं, प्रतिष्ठापन करते हैं।

आगे बढ़ने के लिए पीछे हटना जरूरी होता है, यह विज्ञान कहता है लेकिन चेतना कहती है कि हम अतीत पर दृष्टि डाल लें तो आगे देखना आसान हो जाएगा। यही गूंज 'जयशंकर प्रसाद' के शब्दों में 'अमर्त्य वीर पुत्र हो बढ़े चलो, बढ़े चलो' का संदेश देकर हमें पूर्वजों की वीरता–धीरता के प्रति सचेत करती है तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हमें अपने अतीत से जोड़ने के लिए कह उठते हैं– 'हम कौन थे, क्या हो गए, अब और क्या हों अभी, आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी ....।'

साहित्य ने दृश्य तौर पर जनजागृति पैदा करने के साथ स्व के विविध स्वरूपों के प्रति हमारे अंतर्मन को भी छुआ है। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी अपनाने की प्रेरणा हो या अपनी भाषा के प्रति लोगों को जागृत करने का अभियान, साहित्य ने इसे स्वबोध का मानक और प्रेरक बना दिया।

खड़ीबोली के उन्नायक भारतेंदु 'भारत दुर्दशा' में एक ओर जहाँ अंग्रेजी राज में लोगों के असहनीय दुःखों का विवरण देते हैं, वहीं भाषा का प्रश्न उठाकर वे लोगों की अंतर्चेतना को भी झंकृत करते हैं।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल।

भाषा का प्रश्न हमारी संवेदनाओं से जुड़ता और चेतना के अंतस् बिंदु और मर्म को स्पर्श करता है। इस दृष्टि से भारतेंदु भारतीयों की पीड़ा के ही नहीं, भारतीयता

के भी उद्‌गाता हैं। प्राचीन काल से विद्या के प्रमुख केंद्र रहे काशी को आधुनिक भारत में सांस्कृतिक चेतना का केंद्र बनाने में भारतेंदु का योगदान अप्रतिम है।

'आवहु सब मिलि रोवहु भाई, भारत दुर्दशा देखी न जाई'

और 'का सखि साजन, नहीं अंग्रेज' जैसी कालजयी रचनाओं से उन्होंने समाज के स्व को झकझोरा और कहना नहीं होगा कि भारतेंदु अपने इस प्रयास में सफल रहे। हिंदी को जनमानस में स्थापित करना साधारण बात नहीं थी। उनके इसी अवदान के कारण साहित्य का एक युग ही भारतेंदु युग कहा गया। भारतेंदु को भाषायी पुनर्जागरण का अग्रदूत भी इसी कारण कहा जाता है क्योंकि उन्होंने आने वाली पीढ़ियों को हिंदी की संप्रेषणीयता से अवगत कराया। पूरा हिंदी जगत इस अवदान के लिए भारतेंदु का ऋणी है।

स्वत्व के प्रति जागृति कालांतर में हिंदी साहित्य का मूल स्वर बन गया तो हिंदी की सहयोगी भाषाओं–बोलियों ने भी इससे प्राणवायु पाई। वह पद्य का समय था लेकिन बाद में जब अन्य विधाओं का प्रभाव बढ़ा तो इनका स्वर भी वही रहा। 'जयशंकर प्रसाद' अपने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाले नाटकों और कविताओं के जरिए इसी 'स्व' का उद्‌घोष करते हैं।

'हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती, स्वयंप्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता, पुकारती' के जरिए वे स्वतंत्रता का शंखनाद करते हैं तो 'बीती विभावरी जाग री' में वे सुबह की अरुणिमा का संकेत करते हुए जाग जाने का आह्‌वान करते हैं। 'तमिस्रा की कालिमा मिटी और अब सूर्योदय होने ही वाला है' में जो सकारात्मकता है, जो संदेश है, जिस ऊर्जा का संचार है, वह इसे जागरण गान की श्रेणी में ला खड़ा करता है।

'देश हमारा है, हम राष्ट्र के प्रति समर्पित हैं' यह उद्‌घोष तो भारतीय मनीषा ने ऋग्वेद में भी 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुराहिताः' मंत्र के जरिए किया है लेकिन अंग्रेजी शासन की बेड़ियों को काटने को तत्पर भारतीय समाज को प्रेरणा देने वाली कविताओं और अन्य रचनाओं की लंबी परंपरा हम देखते हैं। न केवल हिंदी बल्कि अन्यान्य भाषाओं में भी स्वतंत्रता की यह भावना कई तरीके से अभिव्यक्त हुई है। यह भावना केवल अंग्रेजी शासन के प्रति ही विद्रोहात्मक नहीं रही है, मुगल शासन के प्रति असंतोष की भावना भी इन रचनाओं में दिखती है। युगधर्म और राष्ट्रधर्म के प्रति जनजागृति के नजरिए से ब्रजभाषा में महाकवि भूषण की रचनाएँ बहुत उल्लेखनीय हैं जिनमें शिवाजी और वीर छत्रसाल को नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। वे कहते हैं– 'शिवा को बखानि के बखानौं छत्रसाल को..।' भूषण की रचनाएँ क्रांतिधर्मा रही हैं। इसलिए नहीं कि उसकी शैली वीरोचित है, वरन् इसलिए कि उसमें तत्कालीन समाज को जगाने और अपने स्वत्व के बोध का मंत्र है।

अपनी शैली और वर्ण्य–विषय के कारण राष्ट्रकवि दिनकर भारतीय साहित्याकाश में युगधर्म और राष्ट्रधर्म के ध्वजवाहक बनकर उभरे हैं। भारतीय समाज की विद्रूपताओं पर प्रहार करने के साथ लोगों में राष्ट्रचेतना का भाव भरने में दिनकर अप्रतिम हैं। 'रश्मिरथी' में कर्ण का चरित्रोन्नयन समाज के दबे–कुचले लोगों के प्रति उनकी भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति है। दिनकर का कर्ण महाभारत के कर्ण की अपेक्षा ज्यादा सम्माननीय इस कारण हुआ क्योंकि 'रश्मिरथी' में दिनकर कर्ण के बहाने समाज के बड़े तबके को आगे बढ़ने की प्रेरणा के रूप में देखते हैं।

'इस जग में जो भी दलित प्रताड़ित जन हैं, यह कर्ण उन्हीं का सखा, बंधु, सहचर है...।' कहने के साथ दिनकर कर्ण के साथ जिस प्रकार खड़े होते हैं उसकी अभिव्यक्ति कर्ण के देहावसान के बाद श्रीकृष्ण की इन उक्तियों में और सशक्त रूप से अभिव्यक्त हुई है....

हृदय का निष्कपट, पावन क्रिया का/दलिततारक, समुद्धारक त्रिया का
बड़ा बेजोड़ दानी था–सदय था/युधिष्ठिर! कर्ण का अद्भुत हृदय था।

यह स्वबोध ही तो है....। एक ओर वे कर्ण के प्रति संवेदनशील हैं, दूसरी ओर पांडवों के संघर्ष और उनके चारित्रिक विकास पर भी उनकी पैनी नजर है....।

पांडवों के व्यक्तित्व के संघर्षशील पक्ष को उभारने में दिनकर दीनहीन, शक्तिहीन, प्रताड़ित, अभावग्रस्त लोगों के संघर्ष को सशक्त स्वर दे रहे हैं। दिनकर इसके जरिए समाज को बड़ा संदेश देना चाहते हैं... वे कहते हैं....

''मेंहदी जब सहती है प्रहार, बनती ललनाओं का शृंगार जब फूल पिरोए जाते हैं, हम उनको गले लगाते हैं।''

वे यहीं नहीं रुकते.... ''खम ठोंक ठेलता है जब नर, पर्वत के जाते पांव उखड़। मानव जब जोर लगाता है, पत्थर पानी बन जाता है।''

इन पंक्तियों में दिनकर दीन–हीन दशा को प्राप्त या अभिशप्त समाज को जागृत करना चाह रहे हैं....।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की रचनाएँ भी राष्ट्रचेतना जागृत करने की दृष्टि से बहुत प्रभावी हैं।

यूँ तो उनकी सभी रचनाएँ एक से बढ़कर एक हैं लेकिन 'भारत–भारती' तो जैसे स्वबोध का प्रतीक ही है...। गौरवपूर्ण अतीत के साथ परतंत्र भारत के वर्तमान की तुलना करने में उनका राष्ट्रबोध, इतिहासबोध प्रखरता से उभरता है। हम कौन थे, क्या हो गए, अब और क्या होंगे अभी... को स्वर देकर गुप्त जैसे पूरे भारतीय समाज को झकझोरना चाहते हैं।

हाँ, लेखनी! हृत्पत्र पर लिखनी तुझे है यह कथा,
दृक्कालिमा में डूबकर तैयार होकर सर्वथा।

स्वच्छंदता से कर तुझे करने पड़ें प्रस्ताव जो,

जग जाएँ तेरी नोंक से सोये हुए हों भाव जो...।

सोए भाव जगाने का सीधा मतलब पाठक को स्वबोध के प्रति जागरूक करना ही तो है।

राष्ट्रबोध, इतिहासबोध के प्रति लोगों को जागृत करने वाले असंख्य कवियों–कहानीकारों–उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं से ऐसे ही भाव जगाए हैं।

रघुवीर नारायण का 'बटोहिया' भोजपुरी में राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत गीत है जिसके हर शब्द में उद्‌बोधन का भाव है, जागृति का संदेश और अपने अतीत पर गर्व की अनुभूति है। यह अपनी भाषा, अपनी माटी और अपनी संस्कृति के प्रति गौरवानुभूति का अप्रतिम उद्‌बोधन गीत है। इसी संप्रेषणीयता के कारण सात समंदर पार भी इस गीत की गूंज भारत और भारतीयता के प्रति गौरवबोध से भर देती है।

राष्ट्रजीवन में 'स्व' की खोज का यह प्रयास उस सत्संकल्प का हिस्सा है जो हमारी भावनाओं को राष्ट्रीयता के मूल स्वर से संयुक्त करता है, राष्ट्र के प्रति हमारा समर्पण इसी संकल्प से आता है। इस दृष्टि से राष्ट्रबोध की अवधारणा का महत्व राष्ट्र के प्रति निष्ठावान होने में भी है। राष्ट्र की निरंतरता और राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार–प्रसार इसकी महत्वपूर्ण कड़ी है। स्वतंत्रता के बाद के कालखंड में विभिन्न कारणों से इस राष्ट्रबोध का लोप निराशाजनक रहा किंतु राष्ट्रकवि के शब्दों में...

''संसार में किसका समय है एक सा रहता सदा, है निशि दिवा सी घूमती सर्वत्र विपदा–संपदा...।''

अब राष्ट्रचेतना नई अंगड़ाई ले रही है। हमारा अतीत अपने भविष्य का पथ प्रदर्शक होगा यह फिर दिखने लगा है। ऐसे में स्व के प्रति यह आकर्षण नई पीढ़ी के लिए पाथेय जैसा है।

इतिहास गवाह है कि जब–जब भारतीय समाज जागृत हुआ है, नए इतिहास का सृजन हुआ है। स्वबोध की इस यात्रा में नए इतिवृत्त का निर्माण अभी संकल्पों में दिखता है लेकिन संकल्प की इस सिद्‌धि में अवरोध न हो, यह हम सबका कर्तव्य है। यही अभी का राष्ट्रधर्म है, यही अभी का युगधर्म है।

परिस्थितियाँ जैसी भी हों, हमें अपने राष्ट्रजीवन को विघ्न बाधाओं से रहित करना है, ऐसा वातावरण बनाना है जिसमें कि हमारा भविष्य सुनिश्चित हो सके। जैसा हमारा अतीत था वैसा ही भविष्य हो। यह केवल संकल्पों से नहीं होगा, इसके लिए उचित स्तर पर प्रयास करने होंगे। निराश हुए बिना इस दृष्टि से काम करते जाना है...। निराशा दूर कैसे होगी इसका जवाब भी स्वबोध की इस दृष्टि में ही है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में ही कहें तो...

जब प्राप्त तुम्हें सब तत्व यहाँ, फिर जा सकता वह सत्व कहाँ

तुम स्वत्व सुधा रसपान करो, उठके अमरत्व विधान करो...
निज गौरव का नितज्ञान रहे, हम भी कुछ हैं यह ध्यान रहे
मरने पर गुंजित गान रहे, सब जाए अभी पर मान रहे...।
कुछ हो, न तजो निज साधन को, नर हो न निराश करो मन को....।

हम निराश न हुए और सन्नद्ध रहे तो पुनः वह दिन आएगा जब पूरी दुनिया हमारी ओर उम्मीद भरी नजरों से देखेगी। वह दिन आए, बस इसी की मंगलकामना...।

❑❑❑

''प्रेम का कारण बहुत कुछ अनिर्दिष्ट और अज्ञात होता है, पर श्रद्धा का कारण निर्दिष्ट और ज्ञात होता है।''

—आचार्य रामचंद्र शुक्ल

विज्ञानकथा साहित्य के सौ साल



औदुंबर बबनराव मोरे
शोधार्थी, सुंदरराव सोलंके महाविद्यालय,
महाराष्ट्र



प्रो. भाऊसाहेब नळे
प्रोफेसर, सुंदरराव सोलंके महाविद्यालय
माजलगाँव, महाराष्ट्र

विज्ञान के आविर्भाव से पूर्व समाज पर धर्म और दर्शन का प्रभुत्व था। समाज अंधविश्वास और रूढ़ियों में जकड़ा हुआ था। यहाँ पर प्रगतिशील समाज की परिकल्पना करना एक सपने के बराबर था। लेकिन बदलते समय के साथ जैसे–जैसे विज्ञान का प्रसार और प्रचार बढ़ता गया, उसी के अनुरूप समाज में परिवर्तन दिखाई देने लगे जिसके फलस्वरूप समाज में अंधविश्वास और रूढ़ियों की पकड़ कमजोर होने लगी। समाज में विज्ञान का प्रचार और प्रसार तेज गति से होने के कारण समाज में बदलाव उतनी ही तेज गति से दिखाई देने लगा। समाज के इस बदलाव या परिवर्तन में विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

विज्ञान के विकास से ही मशीनों का आविष्कार संभव हुआ है जिसमें औद्योगिकीकरण और आधुनिक युग की रूपरेखा तैयार हुई। इसी के परिणामस्वरूप वैज्ञानिक युग का पदार्पण हुआ है। इस समय में विकास ने पूरी रफ्तार पकड़ ली जिससे न केवल साहित्य जगत बहुत गहरे स्तर पर प्रभावित हुआ, बल्कि देश दुनिया की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक सोच में बदलाव आया। हिंदी साहित्य ने विज्ञान के महत्व को समझा और उसके प्रभाव को गहरे ढंग से महसूस किया। इस प्रभाव के परिणामस्वरूप विज्ञान को विषय–वस्तु के रूप में अपनाया और उसे विज्ञानकथा (विधा) के रूप में स्थान दिया गया। विज्ञान की प्रगति के कारण मानव जीवन में आए परिवर्तन (सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, पर्यावरण और व्यक्ति के संबंधों में) पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रभाव दिखाई देता है। 'विज्ञानकथा' साहित्य की विधा होने के कारण गहराई से मानवता से जुड़ी हुई दिखाई देती है। इसके विषय में विज्ञान कथाकार 'देवेंद्र मेवाड़ी' का कहना है कि "विज्ञानकथा साहित्य की वह विधा है जिसके माध्यम से लेखक मानव जीवन पर वैज्ञानिक खोजों, तकनीकी प्रगति, भावी घटनाओं और सामाजिक परिवर्तन के संभावित प्रभावों को दर्शाता है। वह भविष्य में झाँकता है और अपने लेखनी से भविष्य की तस्वीर खींचता है। अपनी कल्पना और

वैज्ञानिक तथ्यों के ताने–बाने से संभावनाओं का संसार बुनता है कि कैसी होगी कल की दुनिया? मानव का भविष्य क्या है? विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास मनुष्य को क्या देगा? क्या मानव सुदूर अंतरिक्ष के ग्रह–नक्षत्र में जा बसेगा? या जनसंख्या विस्फोट से वह अकाल और भुखमरी में निरीह होकर अपना ही सर्वनाश होते देखेगा? क्या वह मशीनों, रोबोटों और कंप्यूटरों के हाथों खेलेगा? या धरती के गर्भ अथवा सागरों की पेंदी में रहने लगेगा? या अपने ही आविष्कारों से विध्वंस करके अपनी सभ्यता को नेस्तनाबूद कर इसके अवशेषों पर अपनी नई दुनिया बसाएगा? क्या वह प्रदूषण से पूरी मानवजाति का दम घोंट देगा या जीवाणुओं अथवा रसायनों से स्वयं नष्ट होकर अपनी महान सभ्यता के सभी चिह्न सुरक्षित छोड़ जाएगा? क्या कल समर्थ लोग अपनी प्रतिलिपियाँ तैयार करेंगे? क्या मादा भ्रूण को नष्ट करते–करते कल केवल पुरुषों का समाज रह जाएगा?कैसे होगी कल की दुनिया?" इन सारे पहलुओं को लेकर विज्ञानकथा साहित्य हमारे सामने आता है। साहित्य और विज्ञान दोनों का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उद्‌देश्य एक ही है।

समाज में स्वातंत्र्यजनित चेतना के फलस्वरूप वर्तमान समाज का स्वरूप अत्यंत क्लिष्ट हो गया है। समाज के इस स्वरूप के पीछे मुख्य रूप से विज्ञान और प्रौद्योगिक प्रगति रही है जिसके चलते कृत्रिम अंतरिक्ष यान आकाश में ले जाए गए, मनुष्य चंद्रमा पर उतरा, एक प्रयोगशाला अंतरिक्ष में ध्वस्त हो गई, आठ ग्रह एक ही लाइन में अंतरिक्ष में दिखाई दिए, धूमकेतु दिखाई दिए, पूर्ण सूर्य ग्रहण व्यापक रूप से देखे गए, मानव शरीर में कृत्रिम अंग प्रत्यारोपित किए गए, विस्फोट, टेस्टट्यूब बेबी का जन्म, स्टेम सेल से पैदा हुई डॉली भेड़, सरोगेसी के कारण कानूनी मुद्‌दे, जासूसी, ऊर्जा, अमरता, टेलीपैथी, कंप्यूटर का जादू, कृत्रिम बुद्‌धिमत्ता एवं शिक्षा, विदेशी जीवन, नए हथियारों का उपयोग, स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्‌धि, बढ़ती उम्र आदि विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिदिन वैज्ञानिक प्रगति जीवन का एक हिस्सा बन गई है और स्वाभाविक रूप से आम जनता विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में उत्सुक हो गई है। वर्तमान समाज में विज्ञान, तकनीकी और प्रौद्योगिकी के विकास से समाज में काफी बदलाव आए हैं जिस कारण विज्ञानकथा साहित्य का जन्म हुआ। साहित्य और विज्ञान के बीच परस्पर संबंध आज के युग में और भी महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि वर्तमान सदी विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सदी है। विज्ञान ने समाज और मानव के हर पहलू को प्रभावित किया है। वहीं पर विज्ञान ने साहित्य को तार्किक, वैज्ञानिक और आधुनिक बोध से युक्त किया है।

विज्ञानकथा और विज्ञान का समानुपातिक योग है। इसमें दोनों पक्ष बहुत संतुलित दिखाई देते हैं। किसी भी पक्ष की न्यूनता उसे विज्ञानकथा श्रेणी से वंचित कर सकती है। विज्ञानकथा सिर्फ कल्पना के आधार पर गढ़ी या बुनी नहीं जाती है, बल्कि इसमें वैज्ञानिक तथ्य और परिकल्पना तथा संभावना का महत्वपूर्ण योग होता

है। इसी प्रकार सुभाषचंद्र लखेड़ा का कहना है कि, "जिस कथा का ताना–बाना विज्ञानसम्मत संभावनाओं को केंद्र में रखकर बुना जाए वह विज्ञान कथा कहलाती है"।[2] साहित्य की तरह ही विज्ञान की विषय–वस्तु की परिधि बहुत व्यापक है जिसको कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। विज्ञानकथा की परंपरा जैसे–जैसे समृद्ध होती गई, उसी के अनुसार उसकी विषयवस्तु के चुनाव में विविधता आती गई। वर्तमान दौर में विभिन्न प्रकार की हिंदी विज्ञानकथाएँ लिखी जा रही हैं। आज के सूचना और प्रौद्योगिकी समाज ने साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान स्थापित किया है। शुरुआती दौर में परंपरागत साहित्यकारों ने इसके प्रति उपेक्षा का भाव रखा था। लेकिन अब साहित्य को विज्ञान की जरूरत है। वर्तमान समय में विज्ञान कथाओं से संबंधित विश्व में विभिन्न पत्रिकाएँ प्रकाशित और संपादित हो रही हैं।

विज्ञानकथा की संकल्पना

विज्ञानकथा के लिए अंग्रेजी साहित्य में मुख्य रूप से दो शब्द प्रचलित हैं– 'साइंस फिक्शन' और 'साइंस फैंटेसी'। 'फिक्शन' एक लैटिन शब्द है जिसका अर्थ होता है 'आविष्कार करना'। बांग्ला साहित्य में इसे 'विज्ञान गल्प अथवा 'वैज्ञानिक कहानी' भी कहा जाता है। लेकिन आमतौर पर यह 'विज्ञानकथा' के रूप में जानी जाती है। विज्ञानकथा को परिभाषित करें तो संक्षेप में कहा जा सकता है कि जो कथा विज्ञान को केंद्र में रखकर बुनी जाए वह विज्ञानकथा कहलाती है। यदि इस परिभाषा को थोड़ा और विस्तार दिया जाए तो कह सकते हैं कि जो कथा वैज्ञानिक सिद्धांतों, प्रक्रियाओं के फलस्वरूप उपजी हो, जो रचना विज्ञान–संभाव्य कहानी को केंद्र में रखकर कल्पना की बेलौस उड़ान भरती हो, वह विज्ञानकथा कहलाती है। लेकिन इस उड़ान के लिए यह भी जरूरी है कि इसमें विज्ञान के ज्ञात नियमों को ध्यान में रखा जाए और वर्तमान ज्ञात नियमों से कोई और परिकल्पना प्रस्तुत की जाती है तो उसका पर्याप्त वैज्ञानिक आधार होना चाहिए। इसे यह निम्न अवधारणाओं के आधार पर देख सकते हैं–

• **संतोष चौबे : "साइंस फिक्शन यानी विज्ञानकथा अथवा विज्ञान गल्प आधुनिक साहित्य की वह विधा है जिसके माध्यम से विज्ञान कथाकार मानव जीवन पर वैज्ञानिक खोजों व प्रौद्योगिकी के प्रभाव, विज्ञान जन्य सामाजिक परिवर्तनों, बदलते मूल्यों और आसान संकटों के ताने–बाने से अपनी कहानियों का सृजन करता है"।**[3]

• **सुबोध जावड़ेकर : "विज्ञान साहित्य आज और कल के वैज्ञानिक परिवेश में मानवीय रिश्तों और अस्तित्व की रचनात्मक खोज है"।**[4]

विज्ञानकथा विज्ञान के बारे में नहीं बल्कि मानव के बारे में है। वही मानव जो आज की दुनिया में नहीं बल्कि कल की दुनिया में रहता है। बेशक उनकी जिंदगी

के सवाल आज अलग हैं। इनका निर्माण विज्ञान की प्रगति से हुआ है। विज्ञानकथा हमें बताती है कि मानव इन सारी समस्याओं का सामना कैसे करेगा। हमारे चारों ओर जो घटित हो रहा है, उसका प्रतिबिंब साहित्य में उभरता है। 'विज्ञानकथा' साहित्य में सामाजिक जीवन परिलक्षित होता है। लेकिन यह सामाजिक जीवन आज का नहीं बल्कि आने वाले भविष्य का है।

विज्ञानकथा की परंपरा :

कुछ विद्वान विज्ञानकथा की शुरुआत सन 1488 से मानते हैं, जब विश्व प्रसिद्ध चित्रकार लियोनार्दो द विन्सी ने 'लाइंग मशीन' की कल्पना की थी। लेकिन हकीकत में वह सिर्फ एक मशीन की कल्पना भर थी, जबकि विज्ञानकथा के लिए 'कथा' तत्व की भी आवश्यकता होती है। इस नजरिए से पहली विज्ञान कथा लिखने का श्रेय अंग्रेजी के कवि पी.बी. शैली की पत्नी मेरी शैली को जाता है। उन्होंने 'फ्रेंकेंस्टीन' नामक उपन्यास लिखा जो 1818 में प्रकाशित हुआ। शैली के बाद अगर किसी ने विज्ञानकथा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया, तो वे थे फ्रेंच लेखक जूल्स वर्न। उनका पहला उपन्यास 'फाइव वीक्स इन ए बैलून' 1863 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद उन्होंने 'ए जर्नी टू द सेंटर ऑफ अर्थ', 'फ्रॉम द अर्थ टू द मून', 'एराउंड द मून', 'एराउंड द वर्ल्ड इन 80 डेज' आदि वैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की जिन्होंने साहित्यिक जगत में हलचल मचाई। वहीं एच.जी. वेल्स ने अपने वैज्ञानिक उपन्यासों के द्वारा विज्ञानकथा को एक साहित्यिक विधा के रूप में स्पष्ट पहचान दिलाई। उनका सबसे पहला उपन्यास 'द टाइम मशीन' 1897 में प्रकाशित हुआ। उन्होंने उसके अतिरिक्त 'द इनविजिबल मैन', 'द वार ऑफ द वर्ल्ड्स' और 'द फर्स्ट मैन इन द मून' आदि चर्चित उपन्यास लिखे। जूल्स वर्न और एच.जी. वेल्स की रचनाओं ने न सिर्फ लोकप्रियता के नए आयाम स्थापित किए, वरन संपूर्ण विश्व में विज्ञान कथाओं की अलख भी जगाई। जाहिर सी बात है कि इसका असर हिंदुस्तान के लेखकों पर भी पड़ा।

हिंदी में पहली विज्ञानकथा लिखने वालों में अंबिकादत्त व्यास का नाम आता है जिन्होंने जूल्स वर्न के लोकप्रिय उपन्यास 'ए जर्नी टू द सेंटर ऑफ अर्थ' से प्रेरित होकर 'आश्चर्य वृत्तांत' नामक उपन्यास लिखा। यह उपन्यास 1884–88 के मध्य प्रकाशित हुआ। इसके काफी समय बाद 'सरस्वती' के जून 1900 में केशव प्रसाद सिंह की विज्ञानकथा 'चंद्रलोक की यात्रा' प्रकाशित हुई। लेकिन इस पर भी जूल्स वर्न के उपन्यास 'फ्रॉम द अर्थ टू द मून' की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इसलिए इन दोनों रचनाओं को हिंदी की पहली मौलिक विज्ञान कथा का दर्जा नहीं दिया गया बल्कि सत्यदेव परिव्राजक की कहानी 'आश्चर्यजनक घंटी', जो सन् 1908 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी, विज्ञानकथा के सभी मानदंडों पर खरी उतरती है।

सत्यदेव परिव्राजक के बाद विज्ञानकथा के क्षेत्र में कुछ ही प्रयास हुए जिनमें 1915 में प्रकाशित प्रेम वल्लभ जोशी की कहानी 'छाया पुरुष' तथा अनादिधन बंद्योपाध्याय की रचना 'मंगल यात्रा' के नाम शामिल है। लेकिन इस दिशा में पहली बार अगर किसी ने गंभीर कार्य किया, तो वह नाम है दुर्गाप्रसाद खत्री। उन्होंने 'सुवर्ण रेखा', 'स्वर्गपुरी', 'सागर सम्राट' और 'साकेत' जैसे वैज्ञानिक उपन्यास भी लिखे। हिंदी विज्ञान कथाओं के क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन द्वारा रचित 'बाईसवीं सदी' का भी महत्वपूर्ण स्थान है, जिसमें उन्होंने आने वाले भविष्य की वैज्ञानिक कल्पना की है। राहुल सांकृत्यायन के बाद इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने वालों में डॉ. ब्रजमोहन गुप्त– दीवार कब गिरेगी, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'–अस्थिपंजर, शैलगाथा, श्रेष्ठ वैज्ञानिक कहानियाँ, डॉ. संपूर्णानंद– पृथ्वी के सप्तर्षि मंडल, डॉ. नवल बिहारी मिश्र–अधूरा आविष्कार आदि के नाम प्रमुख हैं। यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' ने जहाँ अपनी मौलिक विज्ञान कथाओं के द्वारा विज्ञानकथा साहित्य के भंडार को भरा, वहीं नवल बिहारी मिश्र ने अंग्रेजी साहित्य की विज्ञान कथाओं का हिंदी अनुवाद करके उसे समृद्ध बनाया।

इसके बाद हिंदी में विज्ञान कथाकारों की एक लंबी परंपरा दिखाई पड़ती है, जिनमें डॉ. ओमप्रकाश शर्मा–महामानव की मंगल यात्रा, जीव और मानव, आचार्य चतुरसेन शास्त्री–खग्रास, सत्य प्रभाकर–पराजय, रमेश वर्मा–सिंदूरी ग्रह की यात्रा, अंतरिक्ष स्पर्श, अंतरिक्ष के कीड़े, रमेशदत्त शर्मा–प्रयोगशाली प्राण, हरा मानव, हंसोड़ जीन, कैलाश शाह– मृत्युंजयी, मशीनों का मसीहा, माया प्रसाद त्रिपाठी–आकाश की जोड़ी एवं साढ़े सात फुट की तीन औरतें, राजेश्वर गंगवार–शीशियों में बंद दिमाग, साढ़े सैंतीस वर्ष, प्रेमानंद चंदोला–खामोश आहट आदि के नाम मुख्य रूप से लिए जा सकते हैं।

हिंदी विज्ञान कथाएँ यूँ तो समय–समय पर 'सरस्वती', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' और 'धर्मयुग' जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं, लेकिन अगर किसी पत्रिका ने इनके प्रकाशन को सबसे ज्यादा प्रोत्साहन दिया है, तो उसमें 'विज्ञान' (इलाहाबाद) एवं 'विज्ञान प्रगति' का प्रमुख योगदान रहा है। इसके अतिरिक्त नौ वर्षों से निरंतर प्रकाशित हो रही 'विज्ञानकथा' (त्रैमासिक) पत्रिका भी विज्ञानकथा की मशाल को लगातार जलाए रखे हुए है। इन तमाम प्रयासों के कारण वर्तमान में हिंदी विज्ञान कथाकारों की एक बड़ी जमात सक्रिय नजर आती है। इन रचनाकारों में शुकदेव प्रसाद – 'हिमीभूत और अन्य विज्ञान कथाएँ', 'भारतीय विज्ञान कथाएँ', डॉ. अरविंद मिश्र – 'एक और क्रौंच वध', देवेंद्र मेवाड़ी–भविष्य, कोख, राजीव रंजन उपाध्याय – आधुनिक ययाति, 'सूर्य ग्रहण', ज़ाकिर अली 'रजनीश' – 'गिनीपिग', 'विज्ञानकथाएँ', हरीश गोयल – 'तीसरी आँख', 'आपरेशन पुनर्जन्म', जीशान हैदर जैदी – 'प्रोफेसर मंकी', 'ताबूत', मनीष मोहन गोरे– '325 साल का आदमी', विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी – 'अंतरिक्ष के लुटेरे', कल्पना कुलश्रेष्ठ – 'उस सदी की बात', अमित कुमार – 'प्रतिद्वंद्वी', इरफान– 'ह्यूमन' आदि के नाम मुख्य रूप से लिए जा सकते हैं।

विज्ञानकथा के पिछले सौ सालों के इतिहास पर नजर डालने पर यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि इसके जुड़े हुए लेखक मूल रूप से विज्ञान की पृष्ठभूमि से जुड़े हैं लेकिन आमतौर पर ऐसे रचनाकार साहित्य से उतना जुड़ाव न रखने के कारण न तो साहित्य की बुनियादी प्रवृत्तियों को समझ पाते हैं और ना ही उसकी जिम्मेदारी को। यही कारण है कि ज्यादातर रचनाकार अपनी रचनाओं को एक रहस्य और रोमांच कथा के आगे ले जाने में समर्थ नहीं हो पाते।

विज्ञानकथा ने भले ही सौ सालों का सफर तय कर लिया हो, उसके सामने चुनौतियाँ अभी वैसी ही हैं जैसे सौ साल पहले थीं। इसके साथ एक कटु सत्य यह भी है कि हिंदी में विज्ञानकथा आज तक अपनी एक सर्वसम्मत परिभाषा निर्धारित नहीं कर सकी। यदि विज्ञानकथा को साहित्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करना है तो उसे सामान्यजन तक पहुँचना होगा अन्यथा यह सवाल ज्यों का त्यों बना रहेगा कि विज्ञान कथाएँ भविष्य कथाएँ हैं या फिर हिंदी में विज्ञान कथाओं का भविष्य कैसा है?

संदर्भ–

- देवेंद्र मेवाड़ी– सभ्यता की खोज, भविष्य विज्ञानकथा संग्रह, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, प्रथम सं. 1996, पृ.सं. 33
- शुकदेव प्रसाद– विश्व विज्ञानकथाएँ, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सं. 2012, पृ.सं. 17
- संतोष चौबे–इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए, विज्ञानकथा विशेषांक, अक्टूबर–नवंबर–2022, वर्ष–34, अंक–10–11, पृ.सं. 08
- प्रा. डॉ. म. सु. पगारे– मराठी विज्ञान साहित्य, प्रशांत पब्लिकेशन, पुणे, प्रथम आवर्ती, पृ.सं. 79

❑❑❑

यात्रा–वृत्तांत

शिवसागर की राजधानी यात्रा



सागर देसले
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, श्री गोविंद गुरु विश्वविद्यालय, विंझोल, गुजरात

मनुष्य जीवनपर्यंत यात्राएँ करता रहता है। मनुष्य का संपूर्ण जीवन ही एक यात्रा है। बचपन से मुझे घूमने–फिरने का बहुत शौक था। स्कूली दिनों में खेलों की प्रतियोगिताओं के लिए मैं एक राज्य से दूसरे राज्य की यात्राएँ करता था। इन यात्राओं ने मुझे भारतीय संस्कृति, सभ्यता को जानने, समझने का अवसर दिया। मेरी रुचि इसमें और बढ़ी, मैं जानना चाहता था और देखना चाहता था कि संपूर्ण भारत की विविधता, समाज व्यवस्था, भौगोलिक परिवेश किस तरह का है। इस जिज्ञासा ने मेरे अंदर एक के बाद एक यात्राओं को जन्म दिया एवं यात्रा के महत्व को और बढ़ा दिया।

2021 में शोधकार्य में पंजीकृत होने के बाद से मेरे मन में भारतभर में होने वाले पुस्तक मेलों के आयोजन देखने की इच्छा तीव्र हो रही थी। लेकिन कोरोना काल ने मेरी यह इच्छा दो वर्षों तक पूर्ण नहीं होने दी। कोरोना महामारी ने दुनिया भर में समाज और अनेक देशों को बहुत प्रभावित किया। यही कारण था कि पिछले दो तीन वर्षों से पुस्तक प्रेमी पुस्तक मेले का लाभ नहीं ले सके।

2023 दिल्ली के प्रगति मैदान में पुस्तक मेले का आयोजन होगा, यह जानकारी मिलते ही मुझे बड़ी खुशी हुई। आखिरकार मेरी इच्छा पूर्ण होने वाली थी। बिना विलंब किए मैंने मेरे मित्र शिव कैलाश यादव से इस पर बात की। शिव मेरे ही विभाग का शोध छात्र है और मेरे यात्रा के आयोजन पर हमेशा मेरे साथ नियोजन करके अगले पड़ाव के लिए तत्पर रहता है।

फिर क्या था! 27 फरवरी, 2023 को हम दोनों विश्वविद्यालय के हंसा मेहता पुस्तकालय में बैठे पढ़ाई कर रहे थे। दोनों के बीच विभिन्न विषयों की पुस्तकों को लेकर चर्चा हो रही थी। दोपहर के एक बजे थे। बात अब दिल्ली में हो रहे पुस्तक मेले की शुरू हो गई। हम दोनों ने बातें ही बातों में यह तय किया कि आज ही दिल्ली जाया जाए। हम दोनों बड़े उत्साही थे और तब तक हमारे बीच ट्रेन टिकट की कोई

चर्चा नहीं थी। केवल दिल्ली जाने की चर्चा हो रही थी। लेकिन यह यात्रा बिना ट्रेन और टिकट के संभव नहीं थी। फिर मैंने तत्काल दिल्ली जाने वाली ट्रेनों की सूची को खँगालना शुरू किया।

ढूँढने पर पता लगा कि छायापुरी से दिल्ली जाने वाली ट्रेन मिल सकती है। छायापुरी जो बड़ोदरा से 6 किलोमीटर की दूरी पर है। ट्रेन नंबर–12917 संपर्क क्रांति एक्सप्रेस जो आज शाम पाँच बजे छायापुरी से दिल्ली जाने वाली है। हमने उसी दिन जाने का प्लान बनाया तो रिजर्वेशन का कोई चांस ही नहीं था। हमने इस ट्रेन के जनरल डिब्बे से दिल्ली जाने का मन बना लिया। तुरंत शिव और मैं पुस्तकालय से निकलकर अपने–अपने कमरे पर गए और पैकिंग करना शुरू कर किया।

दो दिन रुकना हैं, यह तय हुआ। इसलिए दो दिन को ध्यान में रखकर जरूरी सामान और कपड़े वगैरह बैग में रख लिए और स्टेशन की ओर चल दिए। स्टेशन पहुँचकर हमें पता चला कि ट्रेन अपने निर्धारित समय से आधा घंटा देरी से चल रही थी। इससे पहले मैंने रेल से कई बार सफर किया था इसलिए भारतीय रेल की इस अदा से मैं बखूबी परिचित था। इसे अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने की कोई जल्दी नहीं होती।

भारतीय रेल में जनरल डिब्बे में सफ़र करना एवं बैठने के लिए जगह मिलना अपने आप में बड़ी उपलब्धि है। ऐसा मुझे तब ज्ञात हुआ जब ट्रेन के रुकते ही दस यात्री उतरने वाले थे और एक सौ यात्री चढ़ने वाले थे। ऐसे में हमने बड़ी हिम्मत जुटाकर भीड़ को धक्का देकर अपनी जगह बनाई। मैं और मेरा मित्र हम अंदर घुस गए। अंदर घुसते ही मुझे बहुत गर्व हुआ कि वाकई हम दुनिया की सबसे अधिक जनसंख्या वाले राष्ट्र हैं। इसका सीधा दृश्य मैंने अपने सामने देखा। कुछ यात्री जो शक्ल से एकदम खूँखार लग रहे थे, कुछ निश्चिंत, कुछ जल्दी से ट्रेन आगे बढ़े, इस आशा में थे। तो कुछ ये सोच रहे थे कि कहाँ इस जनरल डिब्बे में चढ़ गए।

अब ट्रेन ने चलना प्रारंभ किया। हमने सोचा, ऐसे खड़े–खड़े तो हालत ख़राब हो जाएगी। मैंने पास में बैठी एक महिला से कहा, दीदी थोड़ा अंदर सरकिए न। दीदी गुस्सा हो गई। बोली कहाँ जाऊँ मैं? तब मैंने भारतीय रेल के जनरल डिब्बे के नियमावली का हवाला देते हुए कहा, दीदी एक सीट पर चार यात्री बैठ सकते हैं। दीदी ने फिर गुस्से से कहा और मैं समझ गया कि दीदी जगह नहीं देंगी। अब हर तरफ दृष्टि दौड़ाने के बाद हमें लगा कि कोई सरकने को तैयार नहीं हैं। ऐसे में हमने सबसे ऊपर की बर्थ जो पूरी तरह से लोहे की थी, उसमें सॉफ्ट गद्दी नहीं थी। वहाँ पर दो–तीन हमउम्र यात्री बैठे थे। उनसे रिक्वेस्ट की तो उन्होंने हमें बैठने के लिए थोड़ी जगह दे दी। अब सोने की व्यवस्था न होने के कारण हम उनके साथ मोबाइल में लूडो खेल खेलते हुए सुबह पाँच बजे नई दिल्ली पहुँच गए।

नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर यात्रियों के लिए रेल प्रतीक्षालय गृह के समान ही अन्य निजी प्रतीक्षालय गृह बनाया गया है। हमें पुस्तक मेले में दस बजे जाना था। थोड़ा विश्राम करने की इच्छा हुई। यहाँ का शुल्क तीन सौ रुपए प्रति यात्री था। यात्रियों के लिए यहाँ सोने, रुकने, नहाने–धोने की उत्तम व्यवस्था मैंने देखी। साफ–सफाई यहाँ नियमित रूप से हो रही थी। कुछ समय आराम करने के बाद हम नहा–धोकर तैयार हुए और जिस उद्‌देश्य के लिए दिल्ली आए थे, उसे पूर्ण करने के लिए अगला कदम बढ़ाकर स्टेशन से बाहर आए। सुबह के आठ बज रहे थे। वातावरण में शीतलता थी। ऐसा वातावरण बड़ोदरा में फरवरी–मार्च के महीने में नहीं होता है। दिल्ली के इस वातावरण से हम अवगत नहीं थे। तो थोड़ी–सी ठंड को झेलना पड़ा। ऑटो स्टैंड से ऑटो लिया और चालक से कहा कि पुस्तक मेले में दस बजे पहुँचना हैं। तब तक आप जहाँ संभव हो, दिल्ली दर्शन कराइए।

अब ऑटो वाले भइया ने हमें दिल्ली घुमाना शुरू किया। सबसे पहले उन्होंने हमें विभिन्न देशों के दूतावास के कार्यालय दिखाए जिसे हमने चलते ऑटो से, बाहर से ही देखा। इन दूतावास के बाहर फूलों के गार्डन बने थे। इनकी सुंदरता मानो आप धरती के स्वर्ग में हों। लोग ख़ामख़ा दिल्ली को प्रदूषित शहर कहते हैं। एक बार आप ये दूतावास के बाहर के गार्डन देख लीजिए, दिल्ली से प्यार हो जाएगा। खैर, हमने यहाँ कई तस्वीर खींची, फिर आगे बढ़े। अब अगला पड़ाव था प्रधानमंत्री आवास। हालाँकि हम अंदर नहीं गए। केवल बाहर से ही देखा। इसका वर्णन करना मैंने इसलिए जरूरी समझा क्योंकि इसकी सबसे बड़ी विशेषता यानी, प्रधानमंत्री आवास के बाहर की सुरक्षा में जिन जवानों की ड्‌यूटी लगी थी, वे बहुत तेज–तर्रार, स्वस्थ, एकदम फिट बंदे थे जिनकी नजर बाज जैसी तेज और शरीर किसी तेजस एयरक्राफ्ट से कम न था। मैंने कुछ फोटो लेने चाहे लेकिन तुरंत ऑटो वाले भैया ने कहा– मोबाइल अंदर रखो। मैंने कहा– क्यों? तब उन्होंने बताया कि कोई जवान देख लेगा कि फोटो ले रहे हो, तब आपको संदेह की नजर से देखा जाएगा, फिर पूछताछ भी होगी कि क्यों फोटो ले रहे थे? कौन हो? कहाँ से आए हो? वगैरह–वगैरह। मैं और मेरा मित्र खूब हँसे, फिर हम आगे बढ़े।

यात्रा की अगली कड़ी में हम इंडिया गेट आ पहुँचे। इसकी सुंदरता का बखान जितना करो, कम है। अत्यंत सुंदर और युवाओं को प्रेरणा देती सुभाषचंद्र बोस की प्रतिमा और ज्योत आकर्षण का केंद्र बिंदु थे। अब हमने यहीं से दूर राजपथ जहाँ गणतंत्र दिवस पर प्रत्येक वर्ष परेड का आयोजन होता है, स्थान को देखने का प्रयास किया जो ओस के कारण पूरा साफ तो दिख नहीं पाया लेकिन थोड़ा बहुत देखने को मिला और खुशी–खुशी हम आगे बढ़े।

अब सुबह के दस बज चुके थे और दिल्ली आने के मकसद को पूर्ण करना था। ऑटो वाले भइया ने प्रगति मैदाना पहुँचा दिया था। हम पुस्तक मेले में प्रवेश करने को आतुर थे। टिकट लिया और हमें प्रवेश मिल गया।

प्रगति मैदान में प्रवेश करते ही मैंने विशाल भीड़ और उस भीड़ का आकर्षण यानी विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी प्रकाशनों के स्टॉल देखे जिसमें मैंने भी कई पुस्तकों की छानबीन करना प्रारंभ किया। यहाँ केवल साहित्यिक किताबें नहीं थीं बल्कि खेल, विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी, धर्म, अध्यात्म, छोटे बच्चों की किताबें आदि विभिन्न क्षेत्रों की पुस्तकें यहाँ उपलब्ध थीं। हमने कुछ पुस्तकें खरीदीं, फिर आगे बढ़े। अब जो नजारा था, उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। मन वहीं ठहर (रुक) जाने का हुआ।

जगह–जगह पर संगोष्ठियाँ चल रही थीं। कई जगह मंच बने थे जहाँ लेखकों को पुरस्कार दिए जा रहे थे। कई जगह पुस्तक का विमोचन किया जा रहा था। कई स्टॉल के पास पुस्तकों की चर्चा हो रही थी। कई जगह साहित्यकारों के व्याख्यान चल रहे थे। वे अपनी बात श्रोताओं के सामने रख रहे थे। युवा लेखकों को विराट मंच से अपनी पुस्तक विमोचन से लेकर अपने अनुभव पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के अवसर प्राप्त थे। प्रकाशन मंडल की एक विशेषता जोड़ना चाहूँगा। जिन लेखकों की पुस्तकों का विमोचन होता है, उन्हें प्रकाशन मंडल द्वारा आमंत्रित किया जाता है एवं पुस्तक पर चर्चा एवं विचार करने का अवसर उन्हें प्रदान किया जाता है। वे अपनी बात, विचार, लेखन–यात्रा के अनुभवों को पाठकों से साझा करते हैं। वर्तमान समय में एक लेखक को उच्चकोटि का प्लेटफार्म उपलब्ध कराने का यह सुगम कार्य प्रकाशन मंडल (प्रकाशक) कर रहे हैं। यह सराहनीय कार्य है। समग्र दृश्य मेरी आँखों के सामने घटित हो रहा था। इसे मैं ज्ञान का महाकुंभ ही महसूस कर रहा था।

हिंदी युग्म स्टॉल के आयोजकों ने मेरा साक्षात्कार लिया। वे बड़े प्रसन्न थे। एक शोधार्थी जो गुजरात से दिल्ली विशेषतः पुस्तक मेले के अवसर पर आया है। उन्होंने हिंदी युग्म के बारे में मुझसे सवाल पूछे जिनका मैंने सुव्यवस्थित ढंग से जवाब दिया। हिंदी युग्म की टीम ने मेरे साक्षात्कार को अपने चैनल पर अपलोड किया एवं मेरा उल्लेख किया। यह मेरे लिए हर्ष की बात है।

पुस्तक मेले में किताबों की विशेषताओं के साथ–साथ मैंने अन्य सूक्ष्म विशेषताओं को भी अपनी आँखों से देखा। प्रतिदिन भिन्न–भिन्न साहित्यकारों, कवियों, आलोचकों, युवा लेखकों की उपस्थिति इस पुस्तक मेले का आकर्षण था। मानव कौल, गोपेश्वर सिंह एवं लेखक मृणाल जी तथा अनेक विदेशी कवि एवं कई युवा हिंदी लेखकों से मिलने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। मुझे इन साहित्यिक सितारों को प्रत्यक्ष रूप से करीब से देखने, उनके विचारों को जानने तथा उनके जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त करने का मौका मिला।

इन साहित्यकारों से मुझे लेखन की कला, साहित्य लेखन की भूमिका एवं लेखन की बारीकियाँ सीखने को मिलीं। उक्त लेखकों द्वारा शोध विषय से संबंधित अनेक यात्रा–वृतांतों की जानकारी भी मुझे प्राप्त हुई। यह मेरे लिए केवल पुस्तक मेला नहीं था। यहाँ मुझे जो साहित्यिक माहौल मिला, वह अद्‌भुत था क्योंकि हम नवयुवकों को जैसा वातावरण मिलता है, हम वैसे वातावरण में ढलते, बढ़ते और खिलते हैं। मैं इन साहित्यिक सितारों से मिलने पर एक नवीन ऊर्जा को महसूस कर पा रहा था। इस यात्रा ने मेरे भीतर उत्साह को जन्म दिया। यह मेरे लिए किसी प्रेरणा से कम नहीं थी। ये सारी बातें इस पुस्तक मेले की वजह से ही संभव हुई। आलोचकों से बातबीच करने पर हमारे मस्तिष्क का फैलाव होता है। हमारी तर्कशक्ति का विकास होता है। हमारे सोचने–समझने की शक्ति का विकास एवं दृष्टिकोण का भी विस्तार होता है। इसका मुझे साक्षात् दर्शन हुआ।

यह पुस्तक मेला ज्ञान के संगम के समान है। मैंने पिछले पाँच–छह घंटे में जीवन एवं साहित्य के महत्व को बहुत करीब से देखा और जिया है। अनेक छोटी–छोटी बातें सीखीं जिसे आम आदमी अपने जीवन में नजरअंदाज करता है। हम कक्षा में, घर में, व्यवसाय में जो बातें नहीं समझ सकते, जिन पहलुओं को नहीं सीख सकते, वह इस पुस्तक मेले में चार–छह घंटों में सीख सकते हैं।

अब समय हो चला था पुस्तक मेले को अलविदा कहने का। रात तक दिल्ली से बड़ौदा की रेल भी पकड़नी थी। अब मैं और शिव बड़ोदरा जाने वाली रेलगाड़ी की सूची देखने लगे। यह कार्य हम पुस्तक मेले से बाहर आकर कर रहे थे। बाहर एक मंच बना हुआ था। यहाँ साहित्य से इतर नाट्य का विधान होता है। प्रायः यहाँ नाटक की प्रस्तुतियाँ, साहित्यिक नाटक का मंचन होता रहता है। रंगमंच के कार्यक्रम यहाँ नियमित रूप से होते हैं। हमें साहित्य के अलावा सिनेमा के तत्व भी देखने को मिले तथा लोकसाहित्य एवं लोककलाएँ और सांस्कृतिक लोकपरंपरा की झलक भी देखने को मिली। पुस्तक मेले के साथ–साथ प्रायः सांस्कृतिक कार्यक्रय नियमित रूप से यहाँ होते रहते हैं। दोनों कार्यक्रमों का हमने लाभ उठाया और रात साढ़े नौ बजे नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर पहुँच गए।

यहाँ से हमें गाड़ी संख्या–12472 स्वराज एक्सप्रेस से बड़ोदरा जाना था जो अपने निर्धारित समय से एक घंटा देरी से चल रही थी। साढ़े दस बजे ट्रेन आई। हम फिर से जनरल डिब्बे में चढ़ गए और फिर से शुरू हुआ लोगों से अनुरोध करना। जैसे–तैसे करके हमने नीचे की लोअर बर्थ पर जहाँ तीन यात्री बैठे थे, अपनी जगह बना ली और बड़ौदा के लिए निकल पड़े।

जीवन में यात्रा के दौरान विभिन्न प्रकार के लोगों से हमारा सामना होता है और अनेक प्रकार के सुखद व दुखद अनुभव इन यात्राओं के माध्यम से होते हैं। कई बार

हम अपना व्यवहार अपना स्वभाव सरल सादगीपूर्ण रखते हैं तो लोग हमें घास–फूस की तरह समझ कर कुचलना चाहते हैं इसलिए कभी–कभार आवश्यकता पड़ने पर हमें शक्ति का भी प्रदर्शन करना चाहिए। कई बार जनरल डिब्बे में कछ हट्टे–कट्टे लोग दुबले–पतले, कमजोर लोगों पर अपनी शक्ति दिखाते हैं। ऐसे में हम यात्रियों को स्वयं अपनी सुरक्षा का ध्यान रखना होता है। हमारे साथ भी ऐसी मामूली–सी घटना घटी। एक भारी भरकम शरीर वाला नवयुवक अपने चार–पाँच मित्रों के साथ ट्रेन में चढ़ा। उसने पूरी बोगी में दहशत मचा दी। जहाँ मन करे, वहाँ के सीट से यात्री को हटाकर स्वयं बैठ जाता। सोने का मन करता तो पूरी बर्थ पर बैठे यात्रियों को हटा देता। किसी के इनकार करने पर उसको धमकियाँ देता। यह सारे दृश्य हमारे सामने घटित हो रहे थे।

अभी तक उसने हमें कुछ कहा नहीं था। लेकिन जब ट्रेन रतलाम जंक्शन पहुँची। उसने हमारे बर्थ के तीन बुजुर्गों को धक्का देकर उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया। उन्हें नीचे धकेल दिया। वह बेचारे बिना कुछ बोले चुपचाप नीचे बैठ गए। अब भाई साहब बर्थ पर लेट गए। मैं और शिव अभी तक बैठे थे। उसने करीब बीस–पच्चीस मिनट बाद हमसे भी बर्थ खाली करने को कहा। इस पर शिव को बुरा लगा। हमारे बीच खूब कहासुनी हुई। लोगों ने माहौल शांत किया। हमने अभी तक अपनी जगह छोड़ी नहीं थी। कुछ समय बाद टीसी साहब आए तब मेरे मित्र ने उनसे शिकायत की।

मित्र की हिम्मत से पूरा दृश्य बदल गया। टीसी ने टिकट माँगा तब पता चला कि वह व्यक्ति और उसके मित्र सभी बिना टिकट के ट्रेन में चढ़े थे। वे टीसी साहब से जुबान लड़ाने लगे। टीसी ने सभी को मिलाकर दो हजार का जुर्माना स्लिप बनाई। इनमें से एक ने कहा ''घंटा, इतने पैसे नहीं देंगे''। तब टिकट मास्टर बोले ''तुम जैसो को हम रोज, घंटा क्या होता है, बता देते हैं। चुपचाप जुर्माना भरो''। उन्होंने टिकट मास्टर को दो हजार रुपए दे दिए और शांत पड़ गए। टिकट मास्टर ने जुर्माना भी लिया और रेलवे पुलिस को भी बुला लिया। इस तरह पूरे जनरल डिब्बे में आतंक के माहौल का अंत हुआ। इस प्रसंग का जिक्र करना मैं इसलिए जरूरी समझता हूँ कि किस तरह ड्यूटी पर तैनात अधिकारी के साथ भी अमानवीय व्यवहार किया जाता है। उन्हें डराया–धमकाया जाता है और परेशान किया जाता है। तो सोचिए, सामान्य व्यक्ति के क्या हाल होते होंगे?

मैं विचार कर रहा था। एक पढ़ा–लिखा व्यक्ति, जिसका मैंने पिछले कई वर्षों से शांत, सरल, गंभीर मिलनसार स्वभाव देखा था, परंतु विपरीत परिस्थिति आने पर उसने अन्याय का डटकर सामना किया। जहाँ कोई अन्याय के खिलाफ कुछ बोलने को तैयार नहीं था, वहाँ शिव ने गलत का विरोध किया। अधर्म के सामने बिना

डगमगाए, विरोध के गुण मुझे शिव से सीखने को मिले। दिल्ली यात्रा के माध्यम से शिव के व्यक्तित्व का एक और नया पहलू मुझे जानने को मिला। देश ऐसे युवाओं का इंतजार कर रहा है। ऐसे लोगों की इस देश में बहुत जरूरत है और वही इस देश की राह बनाएँगे।

खैर, अब हम सुबह ग्यारह बजे बड़ौदा पहुँच गए थे। स्टेशन से हॉस्टल तक पहुँचते समय मेरे मन में कई विचार चल रहे थे। ज्ञान ही हमें परिमार्जित करता है। वर्तमान में हमारे समाज में तरह–तरह की विसंगतियाँ पैदा हो रही हैं। इन सब का परिष्कार हम कहाँ से करेंगे? जब हमारी चेतना में हम इतने संवेदनशील हो जाएँगे कि हमें हर चीज के प्रति, पर्यावरण के प्रति, समाज के प्रति, मनुष्यता के प्रति, धर्म अध्यात्म के प्रति, हर एक पहलू के प्रति जब हम जागरूक व सतर्क रहेंगे, तभी हम इन सभी तत्वों को बचा सकते हैं। इसीलिए हमें पुस्तकों की शरण में जाना जरूरी है। मैं समझता हूँ कि एक आदर्श समाज व सभ्यता स्थापित करने, उसका विकास करने का अगर कोई मार्ग है, तो वह पुस्तकें ही हैं। कोई दूसरा मार्ग नहीं है। पुस्तकें हमारे जीवन को प्रभावित एवं परिवर्तित करती है। इसलिए हमारे यहाँ ज्ञान की परंपरा हमारी विरासत है और ज्ञान को सिद्धि का साधन कहा गया है। पुस्तक मेले की यात्राएँ यह बताती है कि हम ज्ञान प्राप्ति के लिए कितने उत्सुक हैं। मैं प्रस्तुत यात्रा को मनुष्यता की राह पर ले जाने वाली यात्रा के रूप में देखता हूँ।

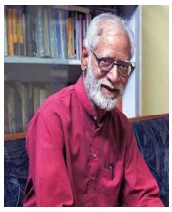
❑❑❑

''बारह का वक़्त है,
भुसभुसे उजाले का फुसफुसाता षड्यंत्र
शहर में चारों ओर
ज़माना भी सख्त है!!
'चाँद का मुँह टेढ़ा है'

–मुक्तिबोध

साक्षात्कार

केवल साहित्य है जो संवेदना को बचाए हुए चल रहा है : काशीनाथ सिंह



काशीनाथ सिंह
प्रसिद्ध वरिष्ठ साहित्यकार
वाराणसी, उत्तर प्रदेश



पल्लवी फताटे
शोध छात्रा, अक्क महादेवी
महिला विश्वविद्यालय, कर्नाटक

साहित्य अकादमी से सम्मानित काशीनाथ सिंह हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध रचनाकार हैं। इनके कथा साहित्य में राजनीति, समाज, मिथक, ग्रामीण परिवेश, वृद्ध–जीवन, स्त्री–संवेदना, दलित–जीवन, पर्यावरण, भाषा की संस्कृति आदि विषयों की विविधता दिखाई पड़ती है। प्रस्तुत है उनसे की गई एक खास बातचीत।

पल्लवी फताटे : आपने केवल उपन्यास–कहानी लिखे हैं, कविता में आपकी रुचि नहीं है क्या?

काशीनाथ सिंह : शुरुआत मैंने कविता से ही की थी। लगभग बी.ए. जब कर रहा था तो कुछ कविताएँ लिखी थी लेकिन मुझे लगा कि कविता लिखना मेरे बस में नहीं है और उसके बाद मेरे भाई, जो आलोचक है डॉ. नामवर सिंह, ने संयोग से वो कविताएँ देखीं और देखने के बाद उन्होंने कहा कि फिलहाल आप बी.ए., एम.ए., पी.एच.डी. करके नौकरी करने लायक हो जाइए, तब कविताएँ लिखिए। जो लिखना होगा, लिखिएगा। तो इस तरह से फिर मैंने कविताएँ लिखने की हिम्मत नहीं की। एम.ए करने के बाद जब लिखा तो कविता नहीं, वो कहानी हुई, तो कहानी ही लिखने लगा फिर।

पल्लवी फताटे : 'उपसंहार' उपन्यास में कृष्ण को वृद्ध रूप में दिखाने के पीछे क्या कारण है?

काशीनाथ सिंह : वृद्ध के रूप में कृष्ण कहीं नहीं है। मेरे मन में आया कि ये आदमी बूढ़ा भी हुआ होगा, यानी ऐसा नहीं है कि केवल महाभारत के लिए पैदा हुए थे, महाभारत किया और खतम हो गए– ये भी जिक्र नहीं मिलता, तो महाभारत का पूरा वर्णन तो मिलता है जिसमें बाल रूप का और युवा रूप का वर्णन तो मिलता है कि बाल रूप में कैसे थे और युवा रूप में कैसे थे? यानी ऐसे युवक के रूप में उन्हें दिखाया जाता है जो महाभारत कर सकता है। भगवान अवतार के रूप में, जबकि ऐसा

मिथक है जो एक गाँव के रहने वाले ग्वाले के बेटे से विकसित हुई थी, यानि अवतारों में से कृष्ण ही हैं जिनके पालक पिता राजा नहीं थे, बाकी अधिकांश अवतारों में उनके पिता राजा है, पहले पिता राजा रहा करते थे। राम के पिता राजा दशरथ। लेकिन इनके यहाँ ऐसी दिलचस्पी पैदा होती है जिसका जन्म जेल में हुआ। कारागार में हुआ। माँ–बाप ने जिसे पाला नहीं, पाल ही नहीं सकते थे, पालने वाली दूसरी थी, यानी देवकी का जिक्र मिल जाए– मिल जाए वरना यशोदा के रूप में सब जानते हैं। कृष्ण का पालन यशोदा ने किया, नंद बाबा ने किया। गाँव में हम लोगों के बचपन में अखाड़े हुआ करते थे, दंगल में जाते थे, कुश्ती लड़ते थे, दंड–बैठक करते थे, तो वहाँ जमुना के कछारे में खेलते हुए गाय चराते हुए आदमी इतना समर्थ अपने को बना लेता है गाँववालों के बीच रहते हुए कि कंस को परास्त कर सकता है। और कंस साधारण आदमी नहीं था। उसकी एक बीवी थी जो सबसे मजबूत थी महाभारत में। पूरे महाभारत पढ़ो तो पता चलेगा कि जरासंध की बेटी ब्याही हुई थी कंस से। जब कंस मारा गया और रोते–गाते हुए उसकी विधवा बेटी घर गई तो उसे कुछ नहीं सूझ रहा था। केवल कष्ट सूझ रहा था। जरासंध मगध का राजा था। मथुरा पर सत्रह बार आक्रमण किया और हर बार ग्वालों ने मार भगाया उसे। कृष्ण को लगा कि ग्वालों का वंश ही खत्म हो जाएगा एक दिन और कब तक हमारे सिर के लिए पूरा ग्वाल वंश समाज लड़ेगा, उसे कुछ नहीं चाहिए था, हमारा सिर चाहिए और मथुरावासियों ने तय किया था कि सिर हम नहीं देंगे यानी कृष्ण को। चाहे जितना तुमसे युद्ध करना पड़े, कृष्ण का सिर तुम्हें नहीं मिलेगा। तो वहीं से जाने के लिए कितने दिन लग गए द्वारका जाने में! कच्छ के पास है द्वारका, समझीं! क्योंकि कितने कुल हैं यादव के– 18 कुल, सब मथुरा के ग्वालों का इलाका था, अलग–अलग वंश के थे। वो गए द्वारका, यहाँ से महाभारत खत्म हो जाता है। वहाँ जाने के बाद क्या हुआ? ये महाभारत नहीं बताता, अंत में द्वारका का विनाश कैसे हुआ? सागर में कैसे डूब गया पूरा का पूरा द्वारका? इससे ये संकेत मिलता है कि लगभग अस्सी वर्ष के पास वे रहे होंगे। ऐसे तो अवतार हैं तो हमेशा हैं, लेकिन उनकी मृत्यु उसी समय हुई, अस्सी के आस–पास। मेरे दिमाग में आता है कि द्वारका गए तो द्वारकाधीश बोले जाते हैं। ये कायदे से बड़े भाई बलराम, वे, द्वारका नरेश के माता–पिता जीवित थे, उन्हें लेकर गए थे, उग्रसेन भी गए थे, मथुरा नरेश भी, ये सारे लोग गए थे और कृष्ण ने द्वारका बसाई, द्वारकाधीश हुए। महाभारत के अनुसार हमारा खयाल है कि यौवन में अर्जुन और कृष्ण की उम्र लगभग एक जैसी थी और अनुमान लगाया जाता है कि जब महाभारत हुआ था उस समय ये लोग 45 उम्र के आस–पास रहे होंगे यानी यौवन में। भीष्म के बारे में कहा जाता है कि अस्सी के उम्र में भीष्म ने युद्ध किया था महाभारत का, तो इतना उल्लेख मिलता है कि महाभारत खत्म होने के 36 साल तक जीवित रहे। मेरे दिमाग

में बार–बार आता था कि 36 साल अगर जीवित रहे, तो महाभारत कराने वाला आदमी महाभारत के बाद ही आता है। उल्लेख मिलता है कि अंतिम घटना जब हुई थी, अंतिम युद्ध जो हुआ तो वो दुर्योधन और भीम के बीच गदायुद्ध था। गदायुद्ध खत्म हुआ और उसके बाद दुशासन ने और जो बेटा था द्रोणाचार्य का अश्वत्थामा इसने एक षड्यंत्र रचा था, इसमें कृष्ण के परिवार के सारे लोग शुरू में नष्ट हो गए थे, जल गए थे, आग लगवा दी थी। कृष्ण को मालूम था कि ऐसा होगा फिर भी कुछ करने लायक नहीं हुए। जैसे महाभारत खत्म हुआ यानी युद्ध खत्म हुआ उसके बाद कृष्ण लौट गए, इतना मालूम है। महाभारत में कहीं–न–कहीं जिक्र मिलता है (इस समय याद नहीं है) कि 36 साल तक जीवित रहे। उसके बाद तो जिस द्वारका को बसाया था इन्होंने, उसके अधीश्वर ने तो द्वारका को यों ही नहीं रहने दिया होगा, एक लाख लोग युद्ध करने के लिए गए थे और हुआ कि युद्ध जब खत्म हुआ तो पाया गया कि नौ लोग बचे हैं, इसका मतलब वे एक लाख भी मारे गए थे जो द्वारका से गए थे। कृष्ण की सेना उन्होंने दुर्योधन को दे दी थी। खुद अर्जुन के साथ चले गए थे तो सेना भी मारी गई थी। ये बात बड़ी जटिल जैसी लग रही थी, उलझी हुई और उन्हें युद्ध के समय जो कुछ भी मिला था जैसे सुदर्शन चक्र, मंत्र आदि ये परशुराम का दिया हुआ था। जो अस्त्र–शस्त्र मिले थे, किसी–किसी के दिए हुए थे। युद्ध जब खत्म हुआ तो ये भी वर्णन आता है कि सारी चीजें सारे दैवी शस्त्र थे। सब–के–सब चले गए तो एक तरह से सभी निहत्थे हो गए थे। युद्ध खत्म होने के बाद कुरुक्षेत्र और द्वारका का क्या हुआ होगा? समुद्र भी पलकें बिछाए रहता था उनके लिए, उसने कैसे बरताव किया होगा? ये सारी बातें मेरे दिमाग में आती रहीं इसलिए मैंने और कुछ लिखने के लिए पढ़ाई नहीं की, लेकिन महाभारत से संबंधित जो सामग्री मिली सारा–का–सारा पढ़ लिया था। पढ़ने के बाद बूढ़े कृष्ण का क्या रूप हो सकता है यानी मेरी कल्पना कहें, बलराम और कृष्ण रात को मिलते भी हैं तो खटिया पर मिलते हैं गाँव के आदमी की तरह। ये कल्पना का ज्यादा रोल है, कृष्ण मिथक के रूप में मेरे सामने तो नहीं हैं, जितने काल्पनिक है। फिर भी द्वारका बसाई थी उन्होंने और द्वारका का विनाश हुआ और नष्ट होने के साथ ही उनका वंश भी नष्ट हो गया। सब–के–सब खत्म हो गए।

पल्लवी फताटे: आप अपने सभी उपन्यासों में किस उपन्यास को प्रमुखता देते हैं? और क्यों?

काशीनाथ सिंहः मुझे सबसे प्रिय उपन्यास लगता है, वह है 'काशी का अस्सी'। 28 साल लगभग रहे अस्सी पर देखा है, जाते हैं, रहे हैं वहाँ उसके पास हमेशा बीमार होने के पहले तक। फिर मैंने दुकान छोड़ दी, अस्सी भी छोड़ दिया लगभग, हाँ लेकिन इसलिए पसंद है वो कि उसे पढ़ने वाले केवल हिंदी के लोग नहीं है। जब मैं यात्रा में निकलता था ट्रेन में कई बार अचानक एक आदमी किताब लेके आता था और ऑटोग्राफ माँगता था। पहले आश्चर्य से देखता था कि जैसे तुमने चेहरा

मिला के देखा उसमें इसी तरह किताब से चेहरा मिला के देखता था, फिर आता था, पूछता था कि आप ही हैं 'काशीनाथ सिंह'? अब ऐसे ढेरों आदमी जिनका साहित्य से कोई लेना–देना नहीं है, डॉक्टर हैं, इंजीनियर हैं, पुलिस में काम करने वाले आदमी हैं, ये दुकानदार हैं, ले मैन हैं, साधारण लिखा–पढ़ा आदमी साहित्य की सीमा का आक्रमण करता है 'काशी का अस्सी'। इसलिए मुझे पसंद हैं। केवल साहित्य के लोग तो गालियाँ देते है, वो साहित्य का मानते ही नहीं है साहित्येतर मानते है। साहित्य से बाहर 'काशी का अस्सी' भदेस है, लेकिन जैसे प्रायः अगर कई बेटे पुराने जमाने में होते थे, तो जो बेटा निकम्मा होता था बाप का ज्यादा ध्यान उसी पर रहता था, है ना? (सच है सर) है ना (हँसते हुए) मान लो निकम्मा है, साहित्यिक लोगों ने स्वीकार नहीं किया, इसलिए भी मेरा लगाव है।

पल्लवी फताटे : जब आप 'काशी का अस्सी' उपन्यास लिखे रहे थे, तो तब से लेकर अब तक यहाँ का सांस्कृतिक परिवर्तन कितना हुआ है?

काशीनाथ सिंह : बहुत ज्यादा हुआ है, जब हम लिख रहे थे तो तब अस्सी में लोकतंत्र था, जनतंत्र था, संविधान था उसका। आज वह संविधान या लोकतंत्र पप्पू की दुकान से गायब है, यही सब फर्क है।

पल्लवी फताटे : आपके अधिकांश कथा–साहित्य में स्थानीय बोलचाल का प्रयोग हुआ है जिससे अहिंदीभाषी लोगों को समझने में कठिनाई होती है।

काशीनाथ सिंह : यह हर महत्वपूर्ण लेखक के साथ हुआ करता है, जैसे निर्मल वर्मा को सारे लोग पसंद कर सकते हैं, कमलेश्वर को पसंद कर सकते हैं, रेणु के यहाँ ऐसे बहुत सारे शब्द मिलेंगे। समझने में दिक्कत हो सकती है यानी जब तुम पैदा भी नहीं हुई थीं तब मैंने दक्षिण की यात्रा की थी और चेन्नई तब मद्रास था। मद्रास में एक हिंदी के ही आदमी ने पूछा कि रेणु की मैला आँचल का अनुवाद कैसे हो, उसका अनुवाद तो बड़ा मुश्किल है। उनकी कहानियाँ कुछ ऐसी हैं उनका अनुवाद कैसे किया जाना चाहिए। यानी हिंदी प्रेमी आदमी था, लेकिन वो क्रीटिसाइज कर रहा था इस चीज के लिए कि देशज और भदेस शब्दों का प्रयोग किया गया है जो हमारे समझ में नहीं आता। हिंदी से एम. ए किया है मैंने तो किताबों की हिंदी तो मैं जानता हूँ, लेकिन जीवन की हिंदी नहीं जानता, तो अनुवाद लेखन किताब का नहीं होता, जीवन का होता है, जो हम जिंदगी में देखते हैं, उसके बारे में लिखते हैं।

पल्लवी फताटे : आज की भाग–दौड़ की जिंदगी में साहित्य समाज को कितना प्रभावित कर रहा है, इस पर अपने विचार प्रस्तुत करें।

काशीनाथ सिंह : प्रभावित तो कर रहा है, दिखाई नहीं पड़ता है, कुछ प्रभाव ऐसे होते हैं, जो नजर आते हैं। हम एक किताब पढ़ते हैं या तुम ही एक किताब पढ़ती हो। प्रत्यक्ष रूप से कोई लाभ न दिखाई पड़े लेकिन तुम्हारा अवचेतन कहीं न कहीं प्रभावित होता है, उसके चरित्र–चित्रण से या संवेदनाओं से यानी आज समाज इतना संवेदनहीन

हो गया है। करोना से ये बात ज्यादा पुष्ट हुई है। संवेदना की सबसे ज्यादा चर्चा उन्हीं दिनों में हुई और अहसास लोगों को हो रहा था कि संवेदना शून्य हो रहा है। बगल के घर में आदमी को करोना हुआ है, लेकिन हम जा नहीं सकते क्योंकि हमको भी खतरा हो सकता है। केवल साहित्य है जो संवेदना को बचाए हुए चल रहा है।

पल्लवी फताटे : 'जंगलजातकम्' कहानी में पेड़ों की संवेदनाओं को आधुनिकता में समझ सकते हैं क्या?

काशीनाथ सिंह : अरे! क्या बात कर रही हो! अभी हमारे यहाँ NSD से पैदा हुई पढ़ी–लिखी एक महिला है जो सोलन में एक गाँव में रहती है और वहाँ से अपनी 'अभिव्यक्त' नाट्य संस्था भी चलाती है। 'जंगलजातकम्' का मंचन कराया था बच्चों से, बच्चे पेड़ बने हुए थे। और उन्होंने लिखा कि उसका ऐसा असर पड़ा है यहाँ दर्शकों पर कि दर्शकों की माँग पर और शिमला में होने वाला है या हो सकता है या हो गया हो 13 अक्टूबर को। हो सकता है वहाँ जो अंग्रेजों के जमाने का थियेटर है, उसमें होने वाला था 'जंगलजातकम्'। बच्चों ने अभिनय किया था कि पेड़ कैसे हिलते हैं, अगर कई पेड़ हैं तो उनसे आवाज किस तरह की निकलती है। तो पेड़ों की अपनी संवेदनाएँ हैं यानि उनसे बहुत कुछ मनुष्य सीख सकता है।

पल्लवी फताटे : अधिकांश लेखक एक विषय के इर्द–गिर्द लिखते हैं। आपके साहित्य में विषय–वैविध्य है। इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

काशीनाथ सिंह : इससे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि पाठकों के जाने कितने स्तर मुझे मिले हैं क्योंकि एक ही विषय पर मैं लिखता रहता तो पाठक भी लगभग एक ही तरह के होते। अलग–अलग विषयों को लेने का सबसे बड़ा लाभ ये हुआ है कि यानी अभी मैं दवा कर रहा हूँ तीन दिन से होम्योपैथिक। वो एडवोकेट हैं, इलाहाबाद हाइकोर्ट में उनके पिता की उम्र 86 साल है, उनका फोन आया था कि पिताजी आपसे बात करना चाहते है। 'उपसंहार' पढ़ रहे है इन दिनों और 86 साल का उम्र, वो पढ़ रहे हैं 'उपसंहार' जिन्होंने फोन किया था। उन्होंने 'काशी का अस्सी' और 'रेहन पर रग्घू' को पढ़ के फोन किया था, लेकिन बात कर रहे हैं उनके पिताजी भी, तो इस विविधता का असर पाठकों के फैलाव–विस्तार पर पड़ा है। कई स्टेजेस के या उम्र के पड़ाव को पार करते हैं ये अलग–अलग विषय। जैसे महिलाएँ हैं, अब 'महुआचरित' में उनकी रुचि हैं, 'रेहन पर रग्घू' बूढ़ों के लिए हैं, कृष्ण अस्सी के आस–पास है। तो ये विविधता, विषय की विविधता से एकरसता भंग होती है, टूटती है। लोग ऊब जाते हैं तो एक तो एकरसता टूटती है, पाठकों का विस्तार होता है, और दूसरा ये कि एक लेखक खुद अपनी खोज करता है। मैं अपने को discover करता हूँ। बूढ़े दोनों हैं। कृष्ण भी हैं, ये भी हैं लेकिन 'रेहन पर रग्घू' का 'बूढ़ा' 'उपसंहार' का बूढ़ा दोनों एक नहीं है, दोनों अलग–अलग हैं।

❑❑❑

हिंदी कहानी

पक्की स्मृतियों के कच्चे आँगन



नीरज नीर
प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित, विविध साहित्यिक सम्मानों से सम्मानित, राँची–झारखंड

एयरपोर्ट से बाहर निकलते ही हवा में उत्सवी गंध महसूस होने लगी थी। शहर की सीमा में घुसते ही झुंड की झुंड पीले वस्त्रों में सजी लड़कियाँ चलती–फिरती कनेर कुसुम–सी इधर–उधर घूम रही थीं। वसंत पंचमी का दिन था, सरस्वती पूजा का दिन। पूजा पंडाल दिखने लगे थे। वातावरण में हवन की महक और लाउडस्पीकर पर गानों की आवाज ने उसे पक्की स्मृतियों के कच्चे आँगन में ला खड़ा किया था। पुरानी स्मृतियाँ चलचित्र के समान सामने आने लगीं।

"अरे सरसतिया..... चंदे का पैसा जल्दी से लाकर जमा कर दे" राजू ने कहा था, जो अभी तक जमा हुए पैसे का हिसाब–किताब लगाने बैठा था। पैसे की अचानक जरूरत आ पड़ी थी।

स्मृतियों ने उसे इतनी जोर से झकझोरा कि उसे लगा वह नींद में थी और किसी ने उसे जोर से हिला कर जगा दिया।

"भैया!! जरा अटल नगर ले लेना" उसने टैक्सी वाले को कहा।

वह इतनी जोर से बोली कि टैक्सी ड्राइवर ने घबराकर यकायक ब्रेक लगा दिया था।

"क्या हुआ मैडम? सब ठीक है ना?" ड्राइवर ने अचकचाकर पूछा।

अचानक से ब्रेक लगाने से थोड़ी देर के लिए ट्रैफिक गड़बड़ा गया था। आगे जाने वाले ड्राइवर टैक्सी वाले को खा जाने वाली नजरों से घूरने लगे थे।

"आपको तो इंदिरा नगर जाना था न, मैडम?" ड्राइवर ने पूछा

"हाँ इंदिरानगर ही जाना है, आप थोड़ी देर के लिए अटल नगर ले लीजिए। मैं एक्स्ट्रा पैसे दे दूँगी, आप चिंता न करें।" उसने अनुनय करते हुए कहा। "न... न पैसे की चिंता नहीं, अटल नगर में कहाँ जाएँगी? बुरा मत मानिए, मैं अटल नगर में ही रहता हूँ। इसलिए पूछा। अटल नगर तो स्लम एरिया है। आप किसी को जानती हो वहाँ, ऐसा नहीं लगा।" टैक्सी वाले के बातचीत के तरीके से वह पढ़ा–लिखा व सभ्य आदमी मालूम पड़ता था।

"अटल नगर" इस शब्द के साथ ही उसके भीतर कुछ तड़कने लगा था। एक लंबा समय–अंतराल सीमा–रेखा बनाकर उसके इर्द–गिर्द घूमने लगा। उसे लगा वह किसी और ही ब्रह्मांड की प्राणी है, जो अंतरिक्ष से धरती को, यहाँ घट रही घटनाओं को निश्चेष्ट देख रही है। उसके अवचेतन के गहरे समंदर में स्मृतियों की विशाल लहरों की आवृत्तियाँ उठने–गिरने लगीं और वह भी उन्हीं स्मृतियों के आरोह–अवरोह में उतराने लगी।

दो चौकियों को जोड़कर एक प्लेटफॉर्म बनाया गया था। उस पर एक पुरानी चादर बिछाई गई थी। प्लेटफॉर्म को चारों तरफ से घेरने के लिए साड़ियों का इंतजाम किया गया था, लेकिन साड़ियाँ कम पड़ जाने के कारण एक तरफ अभी तक घेरा नहीं पड़ा था।

आसमान में बादलों ने डेरा डाल लिया था। सुबह से ठंड जरा बढ़ गई थी। बसंत पंचमी के समय अक्सर बिना मौसम बरसात हो ही जाती है।

अटल नगर में वह कहाँ जाएगी, क्या बताए वह ड्राइवर को? बहुत सोचकर उसने कहा :

"भैया! वो जो नदी किनारे वाला बड़ा सा मैदान है, वहीं ले चलो"

मैदान!!! लगता है आप बहुत सालों के बाद इधर आई हैं मैडम, वहाँ कोई मैदान नहीं है। अटल नगर से तो क्या इस शहर से ही मैदान, नदी, तालाब, बाग–बगीचा सब खतम हो गए।

"सब खतम हो गए" उसे आश्चर्य हुआ। "कैसे खत्म हो गए?"

"यहाँ बहुत, बहुत बड़ा निर्माण यज्ञ हो रहा है जिसमें सब कुछ होम किया जा रहा है।" ड्राइवर ने हँसते हुए कहा।

"इस यज्ञ में बिल्डर 'होता' की भूमिका में हैं और सरकार 'यजमान' है। अब तो साँस लेने भर की भी खुली जगह कहीं नहीं मिलती।" ड्राइवर भीतर से दुःखी था पर हँसते हुए कह रहा था।

टैक्सी ड्राइवर पढ़ा–लिखा और संवेदनशील व्यक्ति लग रहा था जिसके भीतर व्यवस्था के प्रति नाराजगी थी जो उपयुक्त पात्र देखकर प्रस्फुटित होने लगी थी।

"चलिए, आपको फिर भी अटल नगर ले चलता हूँ।" कहते हुए टैक्सी ड्राइवर ने टैक्सी अटल नगर की ओर बढ़ा दी।

टैक्सी के आगे बढ़ने के साथ–साथ स्मृतियों ने फिर से उसका हाथ पकड़ लिया था।

राजू के सामने सरस्वती ने वादा तो कर दिया था कि वह अपने हिस्से का चंदा लेकर आएगी पर जाने वह अपनी बात पूरी भी कर पाएगी कि नहीं, इसी सोच में उसके मन में जोर की उठा–पटक मची हुई थी। सात साल की सरस्वती अनिश्चय से भरी हुई उदास कदमों से अपने घर की ओर जा रही थी। चंद कदम भी बहुत दूर मालूम पड़ रहे थे। मानो वह पानी पर चल रही थी। उसके दोस्तों को उससे बड़ी उम्मीद

थी कि वह पैसे लेकर जरूर आएगी। लेकिन उसे यकीन नहीं था कि उसकी माई उसे पैसे देगी। एक बार तो वह उसे मना कर ही चुकी थी। रात में तो उसके मन में आया था कि चुपके से माँ के पैसे चुरा ले। उसे पता था कि उसकी माँ पैसे कहाँ रखती है। लेकिन उसके अंतर्मन ने ऐसा करने से उसे रोका था। मुहल्ले के अन्य बच्चे ऐसा ही तो करते थे। चुराए पैसे से वे चाट–पकौड़ी खाते थे। उसने आज तक ऐसा नहीं किया था। वह मुहल्ले के अन्य बच्चों से, जिनके साथ वह खेलती थी, भिन्न जो थी। उसकी माँ ने उसे हमेशा ही अच्छी बातें सिखाई थीं। उसके माँ–बाप उसके लालन–पालन पर बहुत ध्यान दे रहे थे और उनकी बड़ी तीव्र इच्छा थी कि उनकी बेटी पढ़–लिख जाए और बड़ी अधिकारी बन जाए, इसीलिए उन्होंने यह सोचकर कि नाम का कुछ तो असर होगा, उसका नाम सरस्वती कुमारी रखा था। सरस्वती विद्या, बुद्धि की देवी है, उनके नाम का कुछ प्रभाव तो रहेगा ही।

सरस्वती के सभी दोस्तों राजू, संगीता, अशोक, गुलाबो, बबलू आदि ने अपने–अपने हिस्से के पैसे जमा भी कर दिए थे। अशोक ने तो पाँच सौ रुपये इकट्ठा कर लिए थे और लाकर दे भी दिए थे। उसका बाप आजकल खूब पैसे कमा रहा था। हाल के दिनों में अशोक की वेशभूषा भी बदल गई थी। दिवाली पर उसने मुहल्ले में सबसे ज्यादा पटाखे जलाए थे। सरस्वती के पापा ने तब कहा था कि अशोक का बाप दारू का धंधा करने लगा है। सरस्वती ने मन ही मन सोचा था कि उसके पापा भी दारू का धंधा करते तो कितना अच्छा होता। लेकिन उसने पिता के डर से यह बात जाहिर नहीं की थी। यह तो उसे बाद में समझ में आया था कि दारू का धंधा करना गलत काम था।

जब उसके दोस्तों ने यह तय किया था कि इस बार वे भी सरस्वती पूजा करेंगे तो वह भी उत्साह से उनके साथ शामिल हो गई थी। सबके हिस्से में सौ रुपये का चंदा तय हुआ था। उसने जब अपने हिस्से का चंदा देने के लिए माँ से पैसे माँगे तो उसने सख्ती से मना कर दिया था। फालतू का पैसा हमारे पास नहीं है, चुपचाप पढ़ाई करो। मुहल्ले के बच्चों के साथ आवारागर्दी करने की जरूरत नहीं है। पढ़ाई सबसे बड़ी पूजा है। सरस्वती माता बच्चों को पढ़ने के लिए बोलती है, पूजा करने के लिए नहीं। उसका नन्हा मन इस बात को मानने को तैयार नहीं हुआ। सरस्वती माता पूजा करने के लिए नहीं बोलती है तो इतने लोग पूजा क्यों करते हैं? दिए गए वादे को पूरा नहीं करने पर दोस्तों के बीच उसका सर नीचा हो जाएगा। वह इस बात से दुःखी हुई।

पूजा के लिए अड़ोस–पड़ोस के कुछ आंटी और अंकल से भी दस बीस रुपए करके चंदे मिले थे। पूजा की तैयारी में सबसे पहले मूर्ति की जरूरत थी। मूर्ति का ऑर्डर कर दिया गया था। पंडाल के लिए साड़ी से चारों तरफ घेर कर पंडाल बना लेने की योजना थी। रश्मि, सुनीता, गुलबिया अपने घर से साड़ी ले आए थे लेकिन सरस्वती की माई ने साड़ी देने से भी मना कर दिया था। उसके पास दो ही साड़ी

थी, जिसे वह बारी–बारी से पहनती थी। पूजा के एक दिन पहले मूर्ति ले आने की बात थी। लेकिन उसी दिन सुबह से ही आकाश में बादलों ने डेरा डाल दिया और बूंदा–बांदी शुरू हो गई। अब क्या हो? अब तो एक ही उपाय है कि टेंट से वॉटरप्रूफ तिरपाल लाकर ऊपर से डाला जाए। लेकिन उसके लिए पैसे चाहिए। सबका ध्यान सरस्वती की ओर गया। उसने अभी तक पैसे नहीं दिए थे।

सरस्वती को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। उसे अच्छा अनुभव नहीं हो रहा था। वह समझ नहीं पा रही थी कि वह अपने दोस्तों का सामना कैसे करे। उसके माँ–पिता आखिर ऐसे क्यों हैं? उसे बुरा लग रहा था। उसने सोचा कि कहीं जाकर छुप जाए। लेकिन छुप जाने से माई बहुत परेशान हो जाती है, यह सोचकर उसने ऐसा नहीं किया।

आखिरकार उसने अपना आखिरी ब्रह्मास्त्र प्रयोग कर लिया। रात में उसने खाने से मना कर दिया। अनशन में बड़ी ताकत होती है। अनशन के सामने तो बड़ी–बड़ी सरकार झुक जाती है। मजदूरी करके लौटे पिता ने उसे फुसलाने, मनाने की भरपूर कोशिश की लेकिन वह टस से मस भी नहीं हुई। आखिरकार पिता झुक गए। उन्होंने कहा कि ठीक है कल पचास रुपए जाकर दे आना।

"लेकिन सबने सौ रुपये दिए हैं" उसने ठुनकते हुए कहा।

"बेटे हमारे पास उतने पैसे नहीं है, लेकिन हम लोग तुमको दुःखी नहीं देखना चाहते, इसलिए पचास रुपये दे रहे हैं।"

कल होकर वह पचास रुपये लेकर पंडाल में गई। बारिश थम चुकी थी। पूजा की तैयारियाँ पूरी थी। पंडाल के ऊपर वाटर प्रूफ तिरपाल लगा था। सब बच्चे नए कपड़े पहने खुश दिख रहे थे। कुछ बच्चों की माँएँ भी वहाँ पहुँच कर पूजा की देख–रेख कर रही थीं। सरस्वती ने अपने पचास रुपए निकाल कर रजुआ को दिए। लेकिन रजुआ ने लेने से मना कर दिया।

सबने उसे भला बुरा कहा कि कल जब जरूरत थी तो पैसे लेकर क्यों नहीं आई। सबने उसे धोखेबाज कहा। कल तिरपाल नहीं होने से पंडाल में पानी भर गया था। मूर्ति भी भीग गई थी। अब पैसे की जरूरत नहीं है। वहीं पता चला कि घटे हुए पैसे की भरपाई अशोक ने कर दी थी। सब उसे हीरो की तरह मान रहे थे। नए स्टाइल के कपड़े पहने अशोक अकड़ कर चल रहा था।

सरस्वती निराश होकर अपने घर लौट आई और चुपचाप अपने घर में ही पड़ी रही। आखिर उसके मम्मी पापा अन्य बच्चों के मम्मी–पापा की तरह क्यों नहीं है? उसके मन में यह सवाल घुमड़ता रहा। उसे अन्य बच्चों की तरह कोई छूट नहीं मिलती, न पैसे मिलते हैं और न कहीं भी जाने–आने की आजादी। गुस्सा और खीझ आखिर आँसू बन कर बह निकले। आँसू नींद में जाकर सूखे।

कल होकर मूर्ति विसर्जन का दिन था।

बाहर बच्चे नारा लगा रहे थे "सरसती माता की जय"

"बेटी बाहर आओ देखो सरसती माता जा रही हैं, देखना नहीं है?" उसकी माँ ने बाहर से आवाज दिया।

वह चुप रही। घर के अंदर ही रही।

लो मैडम, आ गया आपका अटल नगर। टैक्सी ड्राइवर ने सड़क के किनारे ही टैक्सी खड़ी कर दी थी।

वह अचानक जैसे नींद से जागी!

अटल नगर में अब टाट और कच्चे घरों के बदले पक्की ईंटों के घर बन गए थे। हालाँकि सभी घर बेतरतीब, जैसे–तैसे बने थे। पक्के घर बनने से गलियाँ और भी संकीर्ण हो गई थी। ड्राइवर ने ठीक कहा था, सारी खुली जगह नए बने घरों से भर गई थी।

ड्राइवर के साथ वह पैदल ही अंदर बस्ती में चली गई। एक जगह कुछ छोटे–छोटे बच्चे साड़ियों से घेर कर पंडाल बना रहे थे।

वहाँ ड्राइवर ने आवाज देकर एक बच्ची को बुलाया।

बच्ची जो पंडाल में खेलने में व्यस्त थी, उसे देखकर दौड़ती हुई आई।

"ये मेरी बेटी है मैडम... रूही" ड्राइवर ने उसका परिचय करवाया।

"रूही मैडम को नमस्ते करो।"

"कितना समझाता हूँ, कि पूजा करने से कुछ नहीं होगा, मेहनत से पढ़ाई करो पर सुनती ही नहीं। कल से ही जिद कर रही है कि पाँच सौ रुपए पूजा के चंदा के लिए चाहिए। मैं ठहरा ड्राइवर, पाँच सौ रुपए कहाँ से लाऊँगा?"

ड्राइवर की आँखों में अपने बच्चों के लिए सपने थे साथ ही लाचारी का भाव भी जिसे उसने साफ अनुभव किया था।

बच्ची एक अजनबी के सामने पिता के द्वारा ऐसी बात करने से असहज अनुभव कर रही थी। फिर भी उसने हिम्मत करके कहा "मैं पढ़ाई तो करती हूँ, क्लास में फर्स्ट आती हूँ"।

उसके चेहरे पर मुस्कान आ गई। उसने बच्ची के सर पर हाथ फेरा।

टैक्सी वहाँ से चलकर इंदिरा नगर में नियत स्थान पर खड़ी हो गई।

उसने ड्राइवर को किराया दिया।

"मैडम इसमें पाँच सौ रुपये ज्यादा आ गए हैं"। ड्राइवर ने रुपये को गिनकर बताया।

हाँ.... उससे रूही के लिए किताबें खरीद दीजिएगा।

❑❑❑

संत्रास



मंगला रामचंद्रन
कई पुरस्कारों से सम्मानित लेखिका,
आकाशवाणी, भोपाल/इंदौर से संपृक्त

यशी साधारणतया शाम के बाद ही टी.वी. लगाया करती थी। दिन भर की व्यस्त दिनचर्या के बाद शांत चित्त से समाचार सुनना, फिर दो एक पसंद के कार्यक्रम देख लेती। पर उस दिन अपेक्षाकृत समय अधिक था सो दिन में ही समाचार लगा लिया। मानों इसी वज्रपात के लिए ही टी.वी लगाया हो। पर्दे पर जिसकी तस्वीर दिखाई जा रही थी, उसे पहचानने में भूल कैसे कर सकती है! अभी पिछले सप्ताह ही तो वो यशी से मिलने घर आया था। अचानक, अनायास स्कूल कालेज की शिक्षा पूर्ण कर लगभग बीस वर्षों पश्चात्! बीच के दरम्यान ना कोई संपर्क ना कोई खबर, मानों एक दूसरे के अस्तित्व से भी अनजान हों।

उस दिन जब अर्दली ने यशी को सूचना दी कि बाहर कोई व्यक्ति आपसे मिलना चाहता है तो वो आश्चर्य और कौतूहल से भर गई थी। ऐसा अनजान व्यक्ति कौन होगा जो उससे मिलना चाहता है, क्योंकि एस पी साहब से मिलने आने वाले बाकायदा चिट भिजवा कर बाहर के आफिस में मिलते। अक्सर अर्दली उनको चीन्ह जाते थे और पहचानने लगते थे। यशी से मिलने आने वालों में अधिकांश महिलाएँ ही होती थीं जिनको भी सारे अर्दली अच्छे से जानने–पहचानने लगे थे। अब ये नया व्यक्ति कौन हो सकता है, यही सोचते हुए जब उस व्यक्ति को ठीक अपने सामने पाया तो विस्मय से चकित रह गई। स्कूल में दस ग्यारह वर्षों का साथ कक्षा के हर छात्र–छात्राओं के बीच लगभग–लगभग एक मित्रता का एहसास दिला ही देता है। हाँ, किसी के प्रति कुछ आसक्ति हो सकती है तो किसी और के साथ मित्रता का भाव अधिक गहरा हो जाता होगा। स्कूली शिक्षा के बाद पृथक् राहों पर निकल जाने पर भी कुछ के संपर्क सूत्र बने रहे और कुछ ऐसे थे जिनका कोई अता–पता ही नहीं था कि कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं। चैतन्य की बस इतनी खबर थी कि उसने खड़गपुर से बी.टेक किया, उसके बाद कहाँ गया, क्या कर रहा, कुछ अता–पता नहीं था। यशी को जानने की

उत्सुकता भी तो नहीं थी और कदाचित् कक्षा के किसी भी छात्र को उसके बारे में जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता रही भी नहीं होगी। उसका स्वभाव ही कुछ विचित्र सा था, बातें करते हुए कभी तो लगता मानों वह समक्ष खड़े व्यक्ति के दिल में ही झाँक रहा है और कभी कहीं इतनी दूर देखता हुआ लगता मानों अंतरिक्ष में टकटकी लगाए हो। उसके पिता किसी स्कूल में शिक्षक थे और कभी अपने बेटे के स्कूल आए हों, ऐसा हुआ नहीं। उसकी माँ भी या तो जीवित नहीं या उसके पिता को छोड़कर चली गई। ये सारी खबरें बस सुनी–सुनाई होती जिनकी सत्यता का किसी को कुछ पता नहीं था।

चैतन्य का कक्षा के छात्रों के साथ संभाषण अत्यंत अल्प था, पर शिक्षक–शिक्षिकाओं से पढ़ाई से संबंधित प्रश्नों का एक जखीरा सदा रहता। कभी तो जीनियस की तरह लगता और कभी ऐसे बेतुके सवाल पूछता मानों शिक्षकों को मात्र खिझाना चाहता हो। अब इतने लंबे अंतराल के बाद उस शख्स को अनायास अचानक अपने सम्मुख देखने पर स्कूल की मीठी स्मृतियाँ ज़ेहन में आई और यशी के होंठ स्मित में खिल उठे। हो सकता है अर्दली ने उसकी खुशी को चैतन्य के आगमन से जोड़कर देखा हो। उस समय तो स्वाभाविक रूप से हुई क्रिया और प्रतिक्रिया थी पर अब इस खबर को देखकर उसके मन में विचारों का बवंडर–सा उठ खड़ा हुआ।

चैतन्य कट्टर नक्सली है और किसी मकसद से उस जिले में घूम रहा है। खासकर प्रमुख सरकारी अधिकारियों के घरों में घुसने का कोई ना कोई बहाना बनाकर अंदर प्रवेश कर रहा है। आम लोगों से सावधानी बरतने और फोटो पर दिख रहे व्यक्ति को देखने पर सूचना देने के लिए संपर्क नंबर दिया गया था। जिस दिन वो यशी से बंगले पर मिला था उस दिन, उस वक्त को यशी अपने ज़ेहन में लाकर मन ही मन दोहराती है कि क्या–क्या बातें हुई थी, चैतन्य ने ऐसा कुछ विशेष कहा हो जिसका यशी कुछ अर्थ निकाल सके। पर ना ही कुछ याद आ रहा था ना समझ जिससे कोई संकेत मिले कि किस मकसद से आया था। यशी ने पूछा था कि उसे कैसे पता कि वो यहाँ है, जिसका जवाब उसने एकदम सहजता से दिया..... ''अरे भाई, तुम ठहरी जिले पुलिस अधीक्षक की पत्नी तो तुम्हारे पति देव जहाँ तैनात होंगे वहीं तो रहोगी।''

चैतन्य से यशी ने एक साथ अनेक प्रश्न पूछ लिए थे, वो कहाँ है क्या कर रहा है और यहाँ किस काम से आया है। उसने यूँ ही गोल–गोल–सा उत्तर दिया था, ... ''खंडवा जा रहा था, जीप खराब हो गई, सुधर रही है। वो सब छोड़ो, तुम कैसी हो? एस पी साहब के साथ मजे ही कर रही होगी, पुलिस विभाग में तो दोनों हाथों में लड्डू ही तो है।''

''क्या मतलब है तुम्हारा; चौबीसों घंटों में कभी भी काम आ जाना, जान सांसत में पड़ी रहती है सो अलग। फिर ऐसे–ऐसे अपराधियों के साथ डील करना पड़ता है ये सब तुम्हें मामूली और सरल लगता है?''

जोश में आकर इतना बोल गई। फिर तनिक साँस लेते रुककर अवहेलना और तंज कसते स्वर में बोली –''तुम तो शायद इंजीनियर हो और तुम्हारे काम के घंटे तो तय होंगे।''

अब जब उस दिन के पूरे संभाषण को याद करती है तो साफ समझ आता है कि कितनी सफलता से बात को टालते हुए कुछ यूँ कहा था.... ''सरकारी अफसरों को इतनी सहूलियत और अन्य सुविधाएँ मिलती हैं, उस अर्थ में कह दिया था। बुरा लगा हो तो माफी चाहूँगा।''... कहते हुए उसके चेहरे पर विद्रूप एवं अवहेलना भरी हँसी साफ देख पा रही थी।

यशी ने बेमन से चाय के लिए पूछा अवश्य और जब वो ये कहते हुए निकल गया.... ''कहीं जल्दी पहुँचना है, जीप ठीक हो गई होगी, पर हाँ, चाय पीने कभी आऊँगा जरूर।'' तेजी से निकल गया।

अब जब उस दिन की घटनाओं को सिलसिलेवार याद करती है तो सिहर उठती है। अच्छा हुआ चाय पीने रुका नहीं, पर आया क्यों था? पुलिस अधीक्षक के बंगले पर उनकी पत्नी से मिलने आना, भले ही वो स्कूल में साथ में रही हो, पर इस तरह अचानक और चंद मिनटों के लिए आना रहस्यमयी मुआयना करने जैसा लग रहा है। यशी ने तो उसी दिन पति समीर को चैतन्य के अचानक आने और तुरंत चले जाने की बात कही थी, उसी सहजता से जितनी किसी भी परिचित के आगमन पर बताती थी।

समीर ने भी तो सदा की तरह सरलता से कहा था... ''मैं घर पर होता तो मिल लेता पर ये नौकरी ही ऐसी है। कोई बात नहीं, उसे किसी दिन बुला लेंगे।''

यशी कहना चाहती थी कि चैतन्य उसके लिए तनिक भी अहमियत नहीं रखता है कि बुलाया जाए और वैसे भी उसने संपर्क बनाए रखने के लिए अता–पता अथवा नंबर दिया ही नहीं। अब टी. वी. पर उसका चित्र देखते और खबरें सुनते हुए वो स्वयं को एक जाल में फँसता हुआ महसूस कर रही थी। चैतन्य अचानक अथवा अनायास नहीं आया था वरन् योजना बनाकर ही आया होगा। समीर तो कुछ दिनों से मुख्यमंत्री और प्रदेश के गृहमंत्री के साथ मीटिंग में इतने व्यस्त हैं कि खाने–पीने का भी ठिकाना नहीं है, यशी और उसकी ढंग से बात भी नहीं हो पा रही है।

यशी का मन असाधारण रूप से बैचेन हो रहा था, उसे इस बाबत जल्द से जल्द समीर से बात करनी है। अपने मन की उलझन को और किसी के साथ बाँट भी नहीं सकती और मन ऊटपटाँग सोचों से ऐसा कोहराम मचा रहा था कि यशी स्वयं को अपराधी की तरह महसूस कर रही थी। बाहर खड़े संतरी और अर्दली ने चैतन्य को

देखा ही था तो आपस में या किसी और से उसके यहाँ आने की बात पता चलेगी ही। शायद ये लोग ऐसा कह रहे हों कि कप्तान साहब की बीबी का दोस्त तो नक्सली है। अब तक तो ये समाचार लगभग सभी ने देखा और पढ़ लिया होगा। अच्छा हुआ कि बेटी दादा–दादी के साथ राजधानी में शिक्षा ग्रहण कर रही है। यशी तड़प रही थी कि समीर के साथ आमने–सामने खुल कर लंबी चर्चा हो जाए पर पिछले कुछ समय से समीर किसी प्रमुख मुद्दे को लेकर अत्यंत व्यस्त हैं। लगातार मीटिंग भी चल रही हैं मानों कोई व्यूह रचा जा रहा हो। तभी उसका माथा ठनका, कहीं चैतन्य के खिलाफ ही कोई घेराबंदी तो नहीं हो रही? वो फड़फड़ाने लगी कि समीर से जल्द से जल्द बता दें कि चैतन्य से उसका ना कोई लगाव है, ना उसे उसके नक्सली होने का पता था। पर समीर का तो खाना–सोना सब कुछ इतना अनियमित और अनिश्चित–सा हो गया है कि उसे लगने लगा था कि उस बड़े बंगले में वो अकेली ही रहती है। अभी तक दूसरे अफसरों की बीवियों से बात करते, मिलते, आपस में मिलकर गेम्स खेलते या लेडीज़ क्लब की योजना बनाते समय आसानी से कट जाता था। अब इस खबर के बाद यशी चिंतित हो गई थी, एक हिचक और झिझक उसे किसी से भी बातें करने से रोक रही थी।

बंगले का गार्ड और अर्दली जिन्होंने चैतन्य को देखा था वो क्या सोच रहे होंगे या फिर आपस में इस बारे में बातें तो नहीं कर रहे होंगे? उसकी मनोदशा ऐसी हो गई कि लगा, सांस लेने में दिक्कत हो रही हो, सिर में ऐसा भारीपन महसूस कर रही थी कि लगा फिर गर्दन पर टिक ही नहीं पाएगा। बेचैनी के कारण ना बैठ पा रही थी, ना लेट पा रही थी। बाहर इतना बड़ा हरी मुलायम घास का लॉन तथा सुंदर बगीचा है पर एक अनजानी जंजीर पैरों को जकड़ रही थी और वो घर के बाहर कदम बढ़ाने में भी झिझक रही थी। खाना बना रखा है पर खा नहीं पाएगी, गला सूख रहा है पर उसे गीला करने की चेष्टा करने की भी इच्छा नहीं हो रही है। बस एक ही विचार मन को मथे जा रहा है कि समीर से तुरंत बात करनी है। सिर के अंदर मानों भट्टी जल रही और फिर कभी भी फट जाएगा। यशी समझ गई थी कि उसका ब्लडप्रेशर इतना बढ़ गया है कि हेमरेज हो सकता है। तभी उसे लगा कि स्वयं को शांत और संयत रखना उसकी प्राथमिकता होनी चाहिए वरना समीर के आने पर अपने मन की बात को सही तरीके से नहीं रख पाएगी। लंबी–लंबी साँसें लेकर शाँत चित्त से मेडिटेशन करने की कोशिश करने लगी। आखिरकार समीर का फोन आया कि वो रात आठ साढ़े आठ बजे तक पहुँच जाएगा और खाना भी खाएगा। फोन पर उसकी आवाज सुन कर यशी का ऑक्सीजन लेवल ही मानो बढ़ गया हो, वो समीर की पसंद का कुछ बनाने की योजना बनाने लगी। दिल में बैठा भय और शंका का भूत मानो भाग गया था। धीरे–धीरे वो सामान्य हो रही थी और आश्वस्त भी कि उसने कुछ

गलत तो किया ही नहीं, चूक उससे हुई ही नहीं तो वो क्यों घबरा उठी। समीर आते ही बोले ''दस मिनिट दो, नहा कर आ जाता हूँ। फिर साथ खाना भी खाएँगे और बातें भी कर लेंगे।''

एक लंबे अर्से के बाद समीर का सान्निध्य मिलेगा। वो अपनी तरफ से स्पष्टीकरण में अधिक समय जाया ना कर दे। दोनों टेबल पर बैठे और यशी ने कहा ''बस एक बात आपसे कहनी है, कह दूँ फिर साथ खाएँगे। समीर उसकी ओर देख कर बोला ''यार जल्दी से बता दो, बहुत तेज भूख लगी है और थकान भी महसूस हो रही है।''

समीर की हड़बड़ाहट देखकर ना जाने कैसे यशी के मुँह से सीधे–सीधे, बिना भूमिका बाँधे निकल गया ''उस दिन जो क्लास मेट चैतन्य मिलने आया था वो तो . ..... बात पूरी होने से पहले ही समीर ने खाना प्रारंभ कर दिया और कहा ''यही बात थी, अधिक परेशान मत हो जाओ। उस पर हम लोग लगातार नजर रख रहे हैं। बस कुछ समय की बात है, फिर उसका खेल खत्म।''

यशी खुले मुँह से उसे ताक रही थी, इतनी गंभीर बात को ऐसी सहजता से कहना मानो कोई मसला हो ही नहीं। ''अरे ऐसे क्या देख रही हो, खाना नहीं खाना है क्या? जल्दी सोना भी है, सुबह से बहुत व्यस्त हो जाऊँगा।'' समीर का खाना समाप्ति पर था। यशी ने अपने अचरज पर काबू पाया और समीर के लिए बनाई ख़ास मीठी डिश ले आई। स्वयं का खाना आनन–फानन में समाप्त कर बेडरूम में आई। मन में उठते प्रश्न उसे पूरी तरह से आश्वस्त नहीं कर पा रहे थे। कमरे में प्रवेश करते हुए उसने पूछा– जब आपको उसका इतिहास पता था, नज़र भी रख रहे थे तो फिर मुझसे मिलने क्यों दिया? तुम्हारी ये अर्दलियों की फौज मेरे बारे में कितना गलत सोच रही होगी!''

''तुम यूँ ही तनाव मत लो, बस इतना समझ लो कि हम लोगों की एक प्रणाली होती है जिससे इनकी प्लानिंग और मकसद जान सकें। यदि चैतन्य के खिलाफ तुरंत कोई कार्रवाई करते हैं तो दल के बाकी लोग चौकन्ने हो जाएँगे और वो कितना और किस तरह का नुकसान पहुँचा सकते हैं, ये पता ही नहीं चलेगा।'' यशी को असमंजस में पड़े देख कर समीर बोला ''यार प्लीज, आज और कुछ मत पूछना, अगले चंद दिन बहुत व्यस्तता भरे रहेंगे। पर इतना वादा करता हूँ कि तुम पर तनिक भी आँच नहीं आएगी और आश्वस्त रहो कि तुमने कुछ गलत नहीं किया है। अब मुझ पर भरोसा कर खुद भी सो जाओ और मुझे भी सोने दो।'' समीर की थकान से भरी, मुँदती आँखों को देख यशी का दिल भर आया। वो आश्वस्त होकर उसके करीब लेट गई और उसके बालों को उंगलियों से सहलाने लगी।

यशी भी सो गई थी और ऐसा सोई कि सुबह जब आँखें खुली तो समीर को यूनिफॉर्म में पूरी तरह तैयार पाया। ''मुझे जगाया क्यों नहीं, एकदम चले मत जाना,

जल्दी से चाय नाश्ता तैयार कर लेती हूँ, खा कर ही जाना।'' बहुत तेजी से सब बना कर टेबल पर रखा।

''अब अगले कुछ दिनों के लिए मेरा कोई तय समय नहीं रहेगा, जब समय मिल जाए या जब सुविधा हो जाए, आ जाया करूँगा। पर तुम बहुत चौकस रहना, आसपास के बंगलों में भी पूर्व की तरह टहलते हुए अकेले मत निकल पड़ना। असल में ये लोग सरकारी अफसरों के बंगलों में जा जाकर टोह ले रहे हैं, या तो अपने हथियार छुपाने या सदस्यों को पनाह देने तथा छुपाने की जगह की तलाश कर रहे हैं। हम पूरी टोली को रंगे हाथों पकड़ने के लिए जाल बिछा रहे हैं। बहुत ही गुप्त तरीके और धैर्यपूर्वक कार्य करना होगा। तुम्हारे लिए वैसे तो कोई खतरे वाली बात नहीं है पर लापरवाही मत बरतना।''

यशी का चिंतित मुख देखकर बोला ''अरे यार, चिंता वाली कोई बात है ही नहीं क्योंकि उन लोगों के हर कदम से हम वाकिफ हैं। बस तुम सहज और सामान्य बने रहना। एक और बात, खास हिदायत के तौर पर बोल रहा हूँ, भूल से भी मेरी इन बातों को किसी से भी साझा मत करना, ना आमने–सामने, ना फोन पर। वरना हमारी योजना में सेंध लग गई तो सब चौपट हो जाएगा।''

समीर उसे अवाक एवं सन्न छोड़ गया और तब से यशी ने वो सात दिन एक रोबोट की तरह गुजारे। टी.वी लगाने से कतराने लगी, फोन पर किसी से खुलकर बात करना दुष्कर हो गया था, कहीं मुँह से कोई गोपनीय बात निकल ना जाए। ना कुछ पढ़ने में मन लगता, ना दूसरे कामों में। बस स्वाति नक्षत्र के चातक की तरह समीर का इंतजार करती और उस अल्प क्षणों में मानो जी जाती। समीर के चेहरे के हाव भाव में जो आत्मविश्वास और दृढ़ता झलकती, उससे यशी को भी कुछ ऊर्जा मिल जाती। इन हालातों का असर यशी के स्वास्थ्य पर तो पड़ ही रहा था, शारीरिक रूप से तो वो एक कमरे में कैद हो ही गई थी, पर मानसिक रूप से भी बुरी तरह प्रभावित हुई। बैठे–बैठे ऊल–जलूल सोचों में डूबी रहती और थककर झपकियाँ लेते हुए अचानक चौंक कर यूँ चारों ओर देखती मानो तंद्रावस्था से जागी हो।

फोन लगातार घनघना रहा था और यशी नीम बेहोशी की हालत में सुनते हुए भी समझ नहीं पा रही थी। अर्दली ने उसके बंद दरवाजे पर जोर से दस्तक दी, तब जाकर चेतना में आई।

''मैडम काफी देर से फोन बज रहा है।''

''हाँ, हाँ, मैंने उठा लिया,'' फोन के दूसरी तरफ कलेक्टर साहब की पत्नी थी। ''यशी बधाई हो..... यशी पूछने वाली थी ''किस बात की बधाई,'' पर अच्छा हुआ उन्होंने उसे मौका ही नहीं दिया और बोलती चली गईं।

''समीर ने जिस तरह योजना बना कर नक्सलाईट के इस दल को घेरा कि जीत तो मिलनी ही थी। इस मामले से ये लोग फारिग हो जाएँ तो पार्टी वगैरह करते हैं।''

ज़िले की किसी भी मुहिम में पुलिस अधीक्षक के साथ जिलाध्यक्ष का साथ और सहयोग होता है। इस जिले के जिलाध्यक्ष समीर से वय और अनुभव में काफी वरिष्ठ हैं और दोनों पति–पत्नी का समीर और यशी के प्रति स्नेह मात्र दोस्ताना ना होकर कुछ अधिक है।

खबर पाकर यशी के शरीर में मानो विद्युत की तरंगें दौड़ गईं और लगा वो ऊर्जावान हो उठी। स्वयं को फ्रेश किया और एक अच्छी–सी पोशाक निकाल कर पहनी और बहुत दिनों के बाद आईने में स्वयं का मुआयना किया। सूखा बुझा–बुझा–सा चेहरा साफ–साफ समझा रहा था कि पिछले दिनों अनायास घटी एक घटना ने चेहरे की रौनक को किस तरह धूमिल कर दिया। वास्तविकता में इस लड़ाई का जो मैदान पर सामना कर रहा है, उसके संघर्ष को तो यशी ने नज़र अंदाज़ ही कर दिया था। वो स्वयं तो कल्पना और ऊटपटांग सोच से स्वयं को पीड़ित मान किसको सजा दे रही थी या बेचारगी का तमगा लगाना चाहती थी। झटके से उठी और मन में भरी सारी शंकाओं को एक वायरस की तरह भगा दिया। सदा की तरह समीर के संघर्ष और विजय में शामिल होने के लिए तैयार हो गई।

❑❑❑

वह बहुत पहले की बात है
जब कहीं निर्जन में
आदिम पशुता चीखती थी और
सारा नगर चौंक पड़ता था
मगर अब–
अब उसे मालूम है कि कविता
घेराव में
किसी बौखलाए हुए आदमी का
संक्षिप्त एकालाप है

–सुदामा पांडेय 'धूमिल'

मराठी कहानी

माँ



विजया वाड
मराठी लेखिका



अनुवाद : डॉ. अशोक बाचुळकर
अध्यक्ष, हिंदी विभाग, आजरा महाविद्यालय, महाराष्ट्र

सुलक्षणा बेंगलुरु से अचानक आ धमकी। उसके इस तरह आने से तिलाताई अचंभित हो गई। उसका मॉडलिंग करियर, 'काया' क्लीनिक में भागदौड़ तथा अपना शरीर सुडौल रखने की कशमकश इन सबसे फुरसत मिलने पर पति जय का ख्याल। इन पाँच सालों में तिलाताई और प्रभाकर पंत मात्र दो बार ही साथ बेंगलुरु में रह आए। जय–सुलू के साथ दो–दो महीने बिताए।... लेकिन उन्हें मुंबापुरी के पास शांत एवं रमणीय वसई ही अच्छा लगता था।

हरे–भरे पेड़–पौधों के बीच उनका 'वास्तु' बंगला था। सुबह आठ से रात आठ तक घर काम के लिए दो–दो औरतें थी। कारचालक देवजी चाचा उन्हीं के साथ रहते थे। उनका खान–पान घर के सदस्यों के साथ ही होता था। वे परिवार के ही एक सदस्य बन गए थे।

तिलाताई ने उम्र के पचास साल पूरे कर लिए थे। बावजूद उनकी सुंदरता में कोई कमी नहीं आई थी। हाँ, प्रभाकर पंत थोड़े मोटे हो गए थे, लेकिन थे तंदुरुस्त। तिलाताई पचास की, तो प्रभाकर पंत पचपन के। जय उनकी अकेली संतान, लेकिन वह जॉब के निमित्त बेंगलुरु में गया और वहीं का हो गया। माँ–बाबूजी जब चाहे फोन पर, स्काईप पर दिखाई पड़ते थे। सुलक्षणा नामक हवाई सुंदरी के साथ शादी करके उसने अपनी गृहस्थी बसाई थी। सुलू ने नौकरी छोड़कर विज्ञापन क्षेत्र में पदार्पण कर लिया था। वहाँ अपनी पहचान बनाने में वह कामयाब हो गई थी। अपनी कांति तेज पुंज रखने के लिए उसका शुरू किया 'काया' क्लीनिक अच्छा खासा चल रहा था।

''अरे, तुम! अचानक! व्हॉट ए प्लेजंट सरप्राइज!'' तिलाताई ने उसका स्वागत किया। ''जय को साथ नहीं लाई?'' उन्होंने पूछा। ''आया है वह, लेकिन किसी काम से वह एअरपोर्ट से साउथ बॉम्बे चला गया। मैं सीधे इधर वसई चली आई।''

''बहुत अच्छा! कॉफी बनाऊँ? या फ्रूट जूस चाहिए? फ्रेश... शुगर फ्री? भीमाबाई बनाएगी।''

"नहीं, नहीं। मैंने जहाज में नाश्ता लिया है। अब दोपहर में फ्रूट जूस और दो उबले अंडे काफी हैं। रात में बाबूजी और जय के साथ खाना खा लेंगे हम।''

''मुझे दोपहर में खाना चाहिए।'' तिलाताई ने कहा।

''हाँ–हाँ, माँ जी आप खा लीजिए ना। आप क्यों भूखी रहेंगी!'' वह मुस्कुराई।

''ऐसा क्या काम आ पड़ा अचानक? .. लेकिन उसने कहा है न कि रात में बात कर लेंगे। कर लेंगे बात! तब तक धीरज रखना होगा।'' तिलाताई ने खुद को समझाया।

रात तक उन्होंने धीरज से काम लिया। हँसी–मजाक में खाना हो, ऐसी उन दोनों की कोशिश थी। तिलाताई को लग रहा था कि शायद यह उनका वहम हो। लेकिन उनका वहम गलत नहीं निकला।

''फिलहाल हम दोनों टेंशन में हैं, माँ–बाबूजी।'' जय के कहते ही तिलाताई का कलेजा धकधक करने लगा।

''किस चीज का टेंशन है तुम दोनों को?'' भर्राए आवाज में वे बोलीं। उनकी आँखें डबडबाईं।

''इसका गर्भाशय कमजोर है। इसलिए बच्चा सरोगेसी से ही पाना होगा हमें। मैं सब कुछ बता ही देता हूँ आपको। कल हमने यहाँ एक औरत को इंटरव्यू के लिए बुलाया है। नेट पर सर्च किया है।''

''दिस इज द राइट टाईम टू हैव अ चाइल्ड। इसलिए यह स्टेप लेना मैंने और जय ने तय कर लिया है। हमारी निगरानी में वह औरत रहेगी और मुझे माँ होने का सौभाग्य प्राप्त होगा।''

बोलते–बोलते सुलक्षणा एकदम रो पड़ी। उसकी यह हालत देखकर प्रभाकर पंत का हृदय पसीज उठा। वे बोले, ''मत रो बेटा। तुम्हारे लिए हम जो चाहे कर लेंगे। क्यों है ना, तिला?''

''हाँ–हाँ, क्यों नही! मैं चौबीस घंटे निगरानी करूँगी। उस औरत का पूरा खयाल रखूँगी। आखिर हमारी वंशबेल ही तो बढ़ाएगी वह!''

''चलो, हो गया फैसला! बी हैप्पी! अब किस बात की फिकर?'' अपनी बहू की पीठ पर हाथ फेरते हुए प्रभाकर पंत ने कहा। रात में अपनी पत्नी से वे बोले, ''इतनी भावुक कैसे हो गई अपनी बहू? मेरा तो जी उड़ गया।''

''अजी, अपना बच्चा पेट में पालना हर स्त्री के लिए एक अलग अनुभूति होती है। आपको क्या पता ! माँ का रिश्ता बहुत गहरा होता है बच्चे से। बच्चे से बातें करती रहती है माँ, पेट में भी। माँ खुश होती है, तो बच्चा खिलखिलाकर हँस पड़ता है और हाथ–पाँव मारता है।''

''अच्छा! तीस साल पहले का सब कुछ याद है तुझे!'' प्रभाकर पंत ने आश्चर्य व्यक्त किया। तिलाताई प्रसन्नतापूर्वक मुस्कुराई।

"हाँ, याद है! जय और मेरा वह गहरा रिश्ता याद है मुझे! याद है, आपका वह प्रथम स्पर्श! उस स्पर्श के बाद पूरे शरीर में दौड़ी वह सिहरन याद है मुझे!''

माहौल खुशनुमा बन गया।

''अब भी मैं उतना ही प्यारा हूँ, तिल्लू तेरे लिए?'' पास खिंचते हुए प्रभाकर पंत ने कहा।

''उससे भी इकतीस गुना!''

''कुछ भी!''

''हटो जी, पागल कहीं के! अजी, इकतीस साल हो गए अपनी शादी को!''

प्रभाकर खुश हो गया। इतना कि सरोगसी... कमजोर गर्भाशय, औरत का इंटरव्यू सब उलझनें प्रणय में बह गईं।

उन दोनों की गृहस्थी मुरब्बे की तरह थी। लेकिन प्रणय भी उतना ही परिपूर्ण था। अपने बेटे को, बहू को संसार के सभी सुख मिले ऐसी कामना करते हुए। तिलोत्तमा तृप्त मन से सो गई।

''कितने बजे आनेवाली है वो औरत?'' उन्होंने पूछा।

''आ जाएगी साढ़े दस तक।'' सुलू ने जवाब दिया।

''भीमाबाई, लीलाबाई को कहीं बाहर भेज दूँ?''

''नहीं कोई जरूरत नहीं माँ। भीमाबाई तो आपके विवाह से इस घर में हैं।'' वह बोली।

''कितनी समझदार है अपनी बहू।'' तिलोत्तमा ने मन ही मन कहा।

''ब्राह्मण है?''

''हाँ।''

''पता सही दिया है ना?''

''आपके बेटे ने ही दिया है। उसकी तत्परता, योग्यता पर यकीन है ना आपको?''

''हाँ, बाई।''

''मैंने उस औरत का मोबाइल नंबर लिया है सेफ साईड के लिए।'' सुलू ने कहा।

''नाम क्या है?''

''अनुसूया भट्ट।''

''उम्र?''

''चौबीस। शिक्षा, बी. एस.सी.। अनाथ है। विदेश जाकर आगे की पढ़ाई पूरी करना चाहती है। इसलिए यह बोझ उठा रही है। फोन पर दस लाख बताए हैं, पर बोली कि निगोशिएबल है। ठाणे में घोडबंदर रोड पर रहनेवाली है।''

''चलो अच्छा हो गया। हाँ, पर अनाथ लड़की की जाति?''

''माँ–बाप जल्दी गुजर गए ना। बुआ ने कस्तूरबा गांधी विद्यालय में एडमिशन कराया। जिंदगीभर के झंझटों से छुटकारा।

''बाप रे! हाँ, लेकिन एक बात ठीक हो गई। उसने तुमसे कुछ भी छिपाया नहीं। पढ़ी–लिखी होने के कारण बच्चे पर संस्कार अच्छे होंगे।''

''ऐसा कुछ नहीं है माँ। एकाध अनपढ़ मेहनतकश औरत भी चल सकती है। बस, उसका गर्भाशय मजबूत होना चाहिए जिससे उसके गर्भ में पलनेवाले हमारे बच्चे का समुचित विकास हो।''

''अच्छा! यह तो कमरा किराए पर लेने जैसा हो गया।''

''एक्जेक्टली।''

''तो अब?''

''इस औरत के साथ निगोशिएशन ठीक–ठाक हो तो इसकी मेडिकल जाँच करेंगे, फिर प्रोसेस। उसके पेट में फलित अंड विकसित करना है। प्रसूति के बाद बच्चा अपना, पैसे उसके।''

सुनने में कितना आसान है, लेकिन वह भावात्मक स्तर पर उलझ गई तो? सारी मेहनत पर पानी!

सास के मन में चल रही खलबली जानकर सुलू ने कहा, ''डोंट वरी माँ, आपकी निगरानी में रहेगी वह। पढ़ी–लिखी लड़की प्रिफर करने का यही तो कारण है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कि आगे की पढ़ाई के लिए वह विदेश जाने वाली है। अत. उसके लिए यह मात्र एक बिजनेस प्रोसेस है। बच्चे में वह इन्वाल्व नहीं होगी। सो चिंता मत कीजिए।''

उसके उत्तर से तिलाताई की अनेक शंकाओं का समाधान हो गया।

वह लड़की निश्चित समय पर पहुँच गई। दिखने में सात्विक थी। ''मुझे पैसों की सख्त जरूरत है। इसीलिए मैं नौ महीनों की यह इंवेस्टमेंट कर रही हूँ। मुझे कैश पहले चाहिए।''

''पूरी कैश पहले.. ऐसी अपेक्षा करना गलत है ना। हम तुम्हें हर माह एक लाख रुपए देंगे। वो भी पेट से रहने के बाद। पहले तुम्हारी मेडिकल जाँच। उसके बाद बाकी बातें।'' सुलक्षणा ने दृढ़तापूर्वक कहा। ''मंजूर, लेकिन बीच–बीच में मैं घोड़बंदर रोड जाऊँगी। पूरा समय इधर वसई में...।'' झिझकते हुए उसने कहा।

''क्यों? तुम्हारी तो शादी भी नहीं हुई है अभी। तुम अविवाहित हो। सही है ना?''

''मित्र रहता है घोड़बंदर में।''

''होगा।... चलो ठीक है। हमें उससे कोई लेना–देना नहीं है, लेकिन पेट से रहने के बाद यह कांट्रैक्ट खत्म होने तक नो सेक्स। वी डोन्ट वान्ट एनी रिस्क।''

''तो फिर पंद्रह लाख का कांट्रेक्ट कीजिए। पर मंथ डेढ़ लाख।''

''एग्रीड।''

तिलाताई बेचैन हो गई। एक कोमल भावना का इस तरह कचरा होते देख उनके दिल को ठेस पहुँची। परंतु वे कौन थी, बोलनेवाली? उनके बहू–बेटे इसी तरह बच्चा चाहते थे। वे केवल बच्चे की केयरटेकर थी।

यथासमय 'ऑलवेल' हो गया।

मेडिकल जाँच, फलित अंड का आरोपण हो गया। इस प्रकार अनुसूया वसईवासी हो गई।

''मच ऑफ माय टाइम इज वेस्टेड। अब हम जल्द से जल्द बेंगलुरु चलेंगे और अपना काम शुरू करेंगे। एक फॉरेन फेशिअल प्रॉडक्ट का मॉडलिंग मुझे मिल रहा है। दैट विल फेच अ बिग फैट लमसम...।'' वह शुरू हो गई।

अपनी बहू की यह भावनाशून्यता देखकर तिलाताई उलझन में पड़ गईं। पति प्रभाकर पंत की नजरों से बात नहीं छूटी। तिलोत्तमा को समझाते हुए वे बोले, ''तिलू हमारी पीढ़ी दिल से सोचती थी। आज की नई पीढ़ी दिमाग से सोचती है। वह अनुसूया इस प्रतीक्षा में है कि नौ महीने कब पूरे होंगे और कब वह पढ़ाई के लिए विदेश के लिए निकल पड़ेगी। ... तो उसके गर्भाशय का किराया बाहर ही कोई असाइनमेंट पाकर कैसे चुकता किया जा सके, इस सोच में हमारी बहू है। और हमारा बेटा इस नए जमाने का मूकनायक है।''

'ठीक से खयाल रखना' अनुसूया को कहकर दोनों बंगलुरु चले गए। अनुसूया से तिलाताई को कोई शिकायत नहीं थी। कंप्यूटर से अमरीका की परीक्षाएँ देने में, अलग–अलग विश्वविद्यालयों से संपर्क करने में वह व्यस्त थी। वह वसई के प्रकृति संपन्न परिसर में थी, स्नेहसिक्त माहौल था। फिर भी आधा समय अपने प्रिय साथी के साथ बातें करती रहती थी। तिलाताई को सब कुछ अजीब लग रहा था। 'चोर कोंछ' इसकी उसे मिलेगी। दूरस्थ शिक्षा की तरह प्रश्नपत्र उधर का और लिख रही है अनुसूया! वर्तमान में तिलाताई के मन में कई खयाल आ रहे थे। फिजूल में पैसे खर्च किए जा रहे थे।

छठा महीना शुरू हो गया। अब कहीं अनुसूया का पेट थोड़ा दिख रहा था। एक दिन सुबह उसने कहा, ''मुझे वीजा प्रोसेसिंग के लिए अमरीकन ऐंबेसी में जाना है, तिलाताई। बाद में मेरे लिए मुश्किल हो सकता है।''

''मतलब? बच्चे को जन्म दिए बगैर यहाँ से न जाने का निश्चित हुआ है ना?''

''मैं कहीं भागकर तो नहीं जा रही। वीजा प्रोसेसिंग के लिए जा रही हूँ। बच्चा जनने की प्रोसेस पूरी हो गई कि आपकी चीज आपके हवाले करके मैं तुरंत निकल सकूँ। इट्स मैटर ऑव कन्विनियंस। समझने की कोशिश कीजिए।

''जब वे घर पर थे, तभी क्यों नहीं बोली? वे अब काम पर निकल गए।''

''उनके आने तक दिन ढल जाएगा। मैं अपना समय क्यों बरबाद करूँ?''

''यह संभव नहीं। मैं नहीं जाने दूँगी उनकी अनुमति के बगैर।''

''अरे व्वा! यह तो सरासर अन्याय है।'' वह लाल हो गई। तिलाताई घबराकर उसके पीछे दौड़ पड़ी। वैसे वह भी भागने लगी। भागते–भागते नीचे गिर पड़ी।

तिलाताई अनुसया को अस्पताल में ले जा रही थी। मुँह से अखंड हरिनाम जप शुरू था!

''तिलोत्तमा जी इस औरत का पूरा ड्रेस खून से भर गया है। शी हैज... शी हैज।'' डॉक्टर के मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे।... लग रहा था कि किसी ने पिघला हुआ सीसा उनके कानों में डाल दिया है।

''क्या, सब कुछ खतम? बोलिए ना डॉक्टर।''

''मिसकैरेज हुआ है। नसीब कि औरत बची है।''

तिलोत्तमा ने साहस करके पति प्रभाकर पंत को फोन किया। ''अजी सुनते हो, खाना खा रहे होंगे, तो हाथ धोने के लिए वसई में आ जाइए। सुन रहे हैं ना आप? सब कुछ खतम अनुसूया का गर्भपात...'' सिसकियों में तिलाताई के शब्द बह गए।

वसई के 'वास्तु' बंगले में मूक सभा भर गई। अनुसूया बेड पर। इर्द–गिर्द प्रभाकर, तिलाताई, जय और सुलू। सबके सब निःशब्द...

आखिरकार अनुसूया ने ही नीरव शांति भंग की। ''गर्भवती स्त्रियाँ नौ मास पूरे होने तक काम करती हैं। लेकिन तिलाताई मुझ पर पाबंदी लगाने लगी। आपकी सभी शर्तें तकलीफदेह थीं। फिर भी मैंने वे मान ली, क्योंकि मुझे रुपयों की आवश्यकता थी। लेकिन वीजा फॉर्मेलिटिज जिसके लिए मैं मातृत्व के लिए राजी हो गई, वह फॉरेन का सपना...।'' वह एकदम फूट–फूटकर रोने लगी।

उसके रोने का मतलब न समझे, इतना कोई दूध पीता नहीं था वहाँ।

''अनुसूया, रोना बंद करो। छह गुना डेढ़ लाख, यानी नौ लाख तो तुझे मिल गए हैं ना? कोई तुझसे वापस नहीं माँगेगा। ये मेरे शब्द हैं।'' निर्णयपूर्वक पंत ने कहा।

जय और सुलक्षणा कुछ बोलने वाले थे। तभी प्रभाकर पंत ने कहा, ''देखिए शी वॉज नॉट रांग। यह सारी मेहनत वह क्यों कर रही थी? विदेश में जाकर वह उच्च शिक्षा लेने वाली थी। वह हमें फँसाकर तो नहीं जा रही थी। बेटा हम तुम्हें बिल्कुल दोष नहीं देंगे। तुम पढ़ना चाहती हो ना? मैं भेज दूँगा तुझे अमरीका।''

अनुसूया जैसे फ्रीज हो गई। इस इंसान से कोई रिश्ता–नाता तो है नहीं। ये मुझे क्यों भेजेंगे विदेश?

''बाबू जी, मैंने जानबूझकर नहीं किया गर्भपात। आप जान गए कि यह मात्र एक दुर्घटना थी। मुझ पर कितने उपकार हैं आपके! बहुत बड़े उपकार हैं!''

''अब यह चर्चा बंद। हमेशा–हमेशा के लिए बंद। तुम निशंकतापूर्वक अमरीका

जाने की तैयारी जारी रखो। पिछले छह महीनों से मैं तुम्हारे कष्ट देख रहा हूँ। कोशिश करने वालों की हार नहीं होती अनुसूया।''

वह लड़खड़ाती हुई उठी और प्रभाकर पंत के पाँव पकड़ लिए।

''बाबूजी, मैं तो हमेशा से प्रेम की प्यासी थी। हमेशा की प्यासी, हमेशा की भूखी; लेकिन आज लग रहा है कि मेरा जीवन कृतार्थ हो गया।''

प्रभाकर पंत ने उसे धीरे से उठाया। बेड पर सुला दिया और सभी से कहा, ''उसे आराम करने दो। शी नीड्स रेस्ट।''

जय, सुलक्षणा, तिलाताई और बाबूजी सभी उस कमरे से बाहर आए। बाहर आने पर बाबूजी बोले, ''सुलू, तुझे ऐसा लगना स्वाभाविक है कि तेरे नौ लाख रुपए पानी में गए और तेरे ससुर ने उदारता की डींगें हाँकी। लेकिन कसम मुझे गणेश जी की, वे सब मैं तुझे अपनी सेविंग में से दूँगा।

''बाबूजी, मैंने माँगे हैं?''

''तूने नहीं माँगे तो क्या? वादा मैंने किया है ना!''

फिर कोई कुछ नहीं बोला। सब अपने–अपने कमरे में सोने चले गए।

प्रभाकर पंत के व्यवहार से तिलोत्तमा स्तंभित रह गई थी। उसकी आँखें खुली ही थी।

''सो जाओ तिलू। अपनी बेटी होती जय के बाद, तो इतनी ही होती। पाँव फिसलकर गिर गई तू और गर्भपात हो गया। ... तिलू, वह गर्भ लड़की का ही था ना?''

''अजी, आपका मन बहुत बड़ा है। वह लड़की डर गई कि कही ये लोग वापस रुपए तो नहीं माँगेंगे, लेकिन आपने कितना दिलासा दिया उस अनाथ को!''

''अब वह अनाथ कैसे, तिलू? उसे नए माँ–बाप मिल गए ना! अब देखना, चार ही दिनों में कैसे प्रफुल्लित हो जाएगी, वह।''

''वो सब ठीक है, पर अपने बच्चों का क्या? कितनी गहरी चोट पहुँची है उन दोनों को! रुपए भी गए और गर्भ भी। यह गर्भ लड़की का ही था जी।''

''जो बीत गई सो बात गई! तिलू, देअर इज ऑलवेज सेकंड चांस! भगवान इतना क्रूर नहीं है। उसकी बगल में हर एक के लिए दो–दो कटोरे रखे होते हैं। एक सुख का, दूसरा दुख का। दोनों में बराबर प्रसाद! अपने हिस्से का दुख का कटोरा खत्म! अब टर्न सुख के कटोरे का! सो जाओ, तिलू। मत कष्ट दो खुद को।'' वह क्षण तिलू को सौंपकर प्रभाकर पंत निद्रा के अधीन हो गए। तिलोत्तमा अपने पति के इस नए रूप को निहार रही थी। लोग शो पीस की तरह प्रतिक्षण नए–नए रूप धारण करते हैं। आज एक, कल दूसरा! इस क्षण भी प्रभाकर उसके लिए एक पहेली थे। सुबह तिलाताई जग गई। बाहर बगीचे में आम के पेड़ के नीचे बैठे बेटे और बहू को देखकर वे भी बाहर आ गईं।

''अरे, सोए नहीं तुम दोनों?''

''मैं सोया था। यह नहीं दिखी। इसलिए मैं भी जग गया।''

''सुलू, बेचैन हो?''

वे उसके पास गई। सुलक्षणा का मस्तक सहलाते हुए उन्होंने उसे अपने सीने से लगा लिया।

''परेशान मत हो। कोई न कोई रास्ता जरूर निकलेगा।''

''कैसा रास्ता माँ?''

''मैं दूँगी अपनी कोख।''

वह झट से उठ खड़ी हो गई। आँखें फाड़कर अपनी सास को देखने लगी। उसके होंठ खुल गए।

''आप!''

''पगली, मुझ जैसी पवित्र कोख कहाँ मिलेगी तुझे? परसों अखबार में पढ़ा था मैंने, पैंसठ साल की औरत ने एक बच्चे को जन्म दिया। मैं तो पचास की हूँ। मैं एकदम स्वस्थ हूँ। ना डायबिटीज, ना बी. पी.। पीरियड्स नियमित हैं। मेरे बेटे को जो कोख मिली, वही मेरे पोते को बिना किराए दूँगी। क्यों ठीक है ना?''

सुलक्षणा ने अपना मुँह फेर लिया। वह अंदर चली गई। तिलाताई समझ नहीं पाई... क्या हो गया।

''क्यों रे! गुस्सा आया?''

''पता नहीं! कुछ समझ में नहीं आता। बड़ा विचित्र बर्ताव है। एकदम अकल्पनीय अनप्रेडिक्टेबल!'' वह भी उठकर अंदर चला गया।

''सुलू, ये सुल्या... ये क्या अचानक?''

लेकिन वह वहाँ से उठी और प्रभाकर पंत के कमरे में चली गई।

''बाबूजी... उठिए बाबूजी।''

प्रभाकर पंत हड़बड़ाकर उठ बैठे।

''क्या हुआ बेटा?''

''मैं!... क्या मैं एक बुरी लड़की हूँ?''

''किसने कहा यह? तेरी सास ने?''

''नहीं बाबूजी।''

''तो फिर हुआ क्या सुलू?'' प्रभाकर पंत ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते ही सूलू का गला भर आया। तब तक जय और तिलाताई भी कमरे में पहुँच चुके थे।

''अनुसूया की तरह मैं भी आपकी बेटी ही हूँ ना, बाबूजी?''

''मतलब? सवाल कहाँ उठता है? अगर तुम पर कोई आपत्ति आए, तो पहले मैं और तिलू उसका सामना करेंगे। तुम दोनों अपनी जान से भी ज्यादा प्यारे हो तिलू और मेरे लिए।''

यह इस तरह फूट–फूटकर क्यों रो रही है? तीनों भी समझ नहीं पाए।

''माँ, मुझे शर्म आती है खुद पर।'' उसने तिलाताई से कहा।

''बेटा, मेडिकल प्रॉब्लेम है। इसमें शर्म की क्या बात? और हमने इससे रास्ता निकालने की कोशिश भी की ना? मैं खुद तैयार हूँ सरोगेसी के लिए।'' तिलाताई ने समझाने के स्वर में कहा।

प्रभाकर पंत अनिमेष अपनी पत्नी को देखते ही रह गए। उनका मन खिल उठा।

''नहीं माँ। अब यह बोझ मुझसे और बर्दाश्त नहीं होता''

''कैसा बोझ, बेटा? पगला गई है क्या तू?''

''आप सबके भलेपन का।''

एकदम पिन ड्रॉप साइलेंस।

''सच! समझ में नहीं आ रहा है, कैसे बताऊँ मैं आपको? जय को बच्चा बहुत पसंद है। और मैं! फिगर कॉन्शस की वजह से टाल रही हूँ। जय तुम्हें कष्ट देने का मतलब खुद को कष्ट देना है। जय! मैं तुम्हें बहुत चाहती हूँ! उतना ही अपने करियर को। इस शो बिजनेस में विचित्र स्थिति है, 'आऊट ऑव साईट आऊट ऑव माइंड'। इसलिए मैं बहुत डर गई। गर्भधारण, मॉर्निंग सिकनेस, पेट का आगे आना, वजन बढ़ना, संतान के जन्म तक वेटिंग पीरीयड... फिर वजन कम करने के लिए जद्दोजहद। मुझे लगा कि यह सब टालने का आसान तरीका है सरोगेसी। अनुसूया की कुल प्रोग्रेस से मैं बेहद खुश थी। बेहद खुश... इतनी कि मुझे लगा इस तरह अगर दो एक बच्चे भी होंगे, तो नॉट ए बिग डील! लेकिन हुआ अनएक्सेप्टेड। अपना बच्चा नहीं बचा। पेट में ही ईश्वर को प्यारा हो गया। मैं तो मान रही हूँ कि भगवान ने ही मुझे यह दंड दिया है। झूठ बोली मैं कि मेरा गर्भाशय कमजोर है। लेकिन मेरा बच्चा कैरी करने कि लिए माँ तैयार हो गई। तब मेरी आँखें खुल गईं।''

''व्हॉट एम आय अप टू? क्या अचीव करना चाहती हूँ मैं? क्या? सच में कितनी स्वार्थी हूँ मैं! बस्स, केवल अपना विचार! अपने ही स्वार्थ में मस्त! भाड़ में गया फॉर्म... मैं माँ बनने के लिए तैयार हूँ। जय मुझे माफ कर दोगे ना?''... तीनों भी रो पड़े। जय आगे बढ़ा। उसने सुलू को अपने सीने से लगाया। वे दंपत्ति पुनः नई जिंदगी शुरू करने के लिए तैयार हो गए।

तिलोत्तमा और प्रभाकर पंत एक–दूसरे को देखते रह गए। वजह चाहे जो भी हो, मातृत्व जीत चुका था।

❑❑❑

बांग्ला कहानी

नमक



महाश्वेता देवी
सुप्रसिद्ध बांग्ला लेखिका, ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित



अनुवाद : मीता दास
हिंदी एवं बांग्लाभाषी लेखिका, अनुवादिका, राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं में लेखन

'हाथ से नहीं, रोटी से नहीं, नमक से मारेगा' उत्तमचंद बनिये ने कहा था। वह बनिया है, महाजन भी है और कई पीढ़ियों से उसके वंश ने ही झुझार बेल्ट को अपने अधिकार में रखा। स्थानीय उराँव और कोल जाति के लोग किसी दिन उसकी बात पर 'न' कहेंगे, यह उसने नहीं सोचा था। वही असोचनीय घटना हो गई इस सरकार के राज में। इसके पहले सरकारें आईं, सरकारें गईं, ऐसा कभी नहीं घटा।

पलामू अभय वन के पास आदिवासी गाँव झुझार है। गाँव के निवासी जंगल में गाय–बकरी–भैंस चराते, गिरे हुए काठ से ईंधन जमा कर सकते थे। घर छावन के लिए पत्ते भी ले जाते थे, इसके सिवा वे बांस के अंकुर, कंद और इमली के पत्ते भी चोरी करते थे। जंगल–विभाग आँखें मूंदे रहता। साही, खरगोश और चिड़ियों को भी मारते। इन सारे जंगली प्राणियों और पक्षियों की जनगणना सही–सही और बिल्कुल ठीक हुआ करती थी। इसी से वन–विभाग इस मामले में भी आँखें बंद किए रहता। पर शिकार करने से इनको माँस कम ही मिलता था क्योंकि जंगल के प्राणी भी होशियार हो गए थे। वे आसानी से जाल में फँसते नहीं थे।

अभयारण्य की गोद में बसा हुआ गाँव था, कोइल नदी से लगा हुआ सामान्य सा गाँव। लेकिन जमीन उत्तमचंद की थी। 1831 ई. के कोल–विद्रोह के बाद इस अंचल में हिंदू बनिये नए सिरे से आए। उत्तमचंद के पुरखे उनमें से ही थे। जंगल में आबादी वाली आदिवासियों की जमीनों को उन्होंने खुले हाथों से खरीद लिया था। जमीन खरीदकर आदिवासियों को उखाड़ फेंकना उन दिनों बहुत सहज था, आजकल की ही तरह। उन दिनों के आदिवासी भी हिसाब–दस्तावेज–पट्टा– कानून–सब से डरते थे, आज कल के ही आदिवासियों की तरह। उसके परिणामस्वरूप अब झुझार के आदिवासी जानते भी नहीं कि कब उनकी अपनी जमीन थी। कब वे अपनी मेहनत की फसल को अपने घरों में रख पाते थे।

इसी उत्तमचंद के पास बैठबेगारी की जंजीरों से सारा गाँव बँधा हुआ था, कई पीढ़ियों से। पुरखों का अलिखित ऋण चुकाने ये लोग हर बरस फसल के समय बारह मील पैदल चलकर उत्तमचंद के गाँव टाहाड़ जाते, खुराकी और मामूली–सी फसल के बदले में बेगारी दे आते। जो फसल मिलती वह भी कर्ज के खाते में जुड़ जाती। बेगारी गैरकानूनी है इस बात को भी वे नहीं जानते थे। इसका पता चला था आदिवासी दफ्तर के इंस्पेक्टर के सौजन्य से। जानकर भी उन्होंने बेगारी बंद नहीं की, क्योंकि बेगारी लेने वाले उत्तमचंद के विरुद्ध अदालत में नालिश करना उनसे हो नहीं सकता था, इसे वे जानते थे। इसके लिए क्या डाल्टनगंज जाना संभव था? वकील कहाँ है? उनको सुबुद्धि से सलाह देने वाले लोग कहाँ थे? आदिवासी कल्याण दफ्तर भी उनकी पहुँच के बाहर था। दफ्तर शहर में था। वे गाँव में थे। यह रेल या बस–मार्ग पर पड़ने वाला गाँव नहीं था। केवल सत्रह परिवारों के छिहत्तर लोगों के आदमियों का गाँव था। स्वतंत्रता के बाद तीसरे चुनाव तक तो उसके अस्तित्व का ही सरकार को पता न था। वे चौथे चुनाव से वोट दे रहे थे। चुनाव का समय अच्छा रहता। उत्तमचंद कहता, 'जंगल की ओर से सबका वोट वह दे आएगा। जाओ, एक–एक रुपया सब ले जाओ, सब बाप–माँ लोगों का मैं ही वोट दे दूँगा।

चौथे चुनाव से यही व्यवस्था चल रही थी। इस सतहत्तर में सब उलट गया। झुझार गाँव में निकटतम प्राइमरी स्कूल का एक मास्टर बालकिशन सिंह आता रहा। वही उन्हें समझा–बुझाकर गाँव से तीन लड़कों को स्कूल में ले गया। उसी ने समझाया कि छठा चुनाव बहुत महत्वपूर्ण है। वे खुद वोट दे आएँ। हर एक को एक रुपया नहीं, उससे कहीं ज्यादा रुपये मिलेंगे। उससे कहीं ज्यादा रुपयों का काम बालकिशन की मेहनत से हुआ। झुझार गाँव में पंचायती कुआँ बना। अच्छा–सा कुआँ था, बहुत पानी था। अब तक नदी से पानी लाना पड़ता था, गर्मियों में पानी लाने में जान निकल जाती थी।

उत्तमचंद पहले वोट के मामले में नाराज हुआ। चुनाव के बाद नया मंत्रिमंडल बना। पुराने दफ्तर और पुराने लोगों यानि अफसरों को नई भूमिका में आना पड़ा। झुझार गाँव तक पैदल रास्ता छोड़कर कोई रास्ता ही न था। उसी राह से संगठित युवकों का दल आया और झुझार का कौन–सा परिवार क्या ऋण चुकाने के लिए बेगार देता है, यह लिख लिया जाता। पूर्ति मुंडा गाँव का सबसे अधिक बोलने वाला व्यक्ति था। गाँव–भर में वही एक आदमी था जिसने रांची और डाल्टनगंज देखा था और धनबाद में कुलीगीरी कर आया था। सब जगह उसकी आर्थिक अवस्था एक–सी ही रही, इसलिए वह बाहरी दुनिया पर थूक कर झुझार लौट आया। वह बोला – 'हमसे पूछने से क्या फायदा? उत्तमचंद के खाते में सब लिखा है। तुम लोग उससे पूछो।' बेगार गैरकानूनी है, यह मालूम है? हमारे मालूम होने से क्या फायदा? बेगार

न देगा।' अबकी महाजन को पता चलेगा।' 'तुम लोग देखो, तुम हमारे साथ चलो।' पूर्ति मुंडा के सामने उत्तमचंद से लड़कों ने कहा, –'इस साल से इस अंचल में कोई आदिवासी बेगारी न देगा। अगर किसी को दबाया गया तो उसे कानून के मारफत कैसे छुटकारा मिले, वह हम देखेंगे। ''वही होगा''। उत्तमचंद बोला, और काम में भी यह अनुशासन मानने के लिए तैयार हुआ। उसकी जमीन जोतने से भी झुझारवासियों को रोका नहीं गया। युवकों का दल कह गया, जो बारह बरस से ज्यादा समय से यह जमीन जोत रहे हैं, आधे हिस्से पर इनका हक है। ''आधा भाग मेरा है।''

''फसल खड़ी होने पर आपके सामने हमारी समिति फसल का हिस्सा कर देगी।''

''वही होगा।''

पूर्ति मुंडा लड़कों से कह बैठा, 'दो रुपये दो। ताड़ी पीकर घर जाऊँ। कैसा दिन रहा आज? किसका मुँह देखकर उठा था? युवक बोले, 'नहीं। शराब पीना छोड़ो। इसी नशे की वजह से हम आदिवासियों का यह सर्वनाश हुआ है।'

पूर्ति मुंडा ने लौटते वक्त जेब से आठ आने की ताड़ी पी और हँडिया में हाथ फेर कर बोला,– 'सर्वनाश! बाबू लोग क्या समझें? इससे हम पेट की आग भूले रहते हैं!'

उत्तमचंद हार मानकर भी प्रतिशोध लेने कमर कस कर तैयार हो गया। बोला, 'उनको नमक से मारूँगा।'

उसकी ऐसी उद्धत घोषणा उस पर ही सजती है क्योंकि झुझार के लोग बाजार करने पलानी या मुरू आते। दोनों हाटों में परचून सौदे की दुकान उत्तमचंद की ही थी।

उत्तमचंद बोला, नमक के बिना घाटो खाने में कैसा लगता है, देखो? इतने दिनों तक हमारा खा–पहिन कर ऐसी नमकहरामी!

हाट में नमक न मिलने की बात को पहले तो पूर्ति ने महत्व नहीं दिया। जब दिया, तब डाल्टनगंज भागे। युवकदल के ऑफिस में। ऑफिस में बैठा एक युवक ट्रांजिस्टर सुन रहा था। उसने सब–कुछ सुनकर कहा, 'यह हमारे अख्तियार में नहीं आता। जिसकी दुकान है वह न बेचे तो बताओ, हम क्या कर सकते हैं? अब चारों ओर भागना पड़ा। और भी बहुत बड़ी समस्या लेकर।

पूर्ति और बाबू लोगों के स्वभाव में कोई संवादों का आदान–प्रदान न था, हो भी नहीं सकता। पूर्ति किसी तरह समझा न सका कि नमक के बिना उनका जीवन बेकार है। नमक के सहारे ही वे घाटो खाते हैं।

जोश में उन्होंने बस का किराया बचाकर दस किलो नमक खरीदा। फिर अठारह मील पैदल चलकर गाँव लौटे। गाँव में घर–घर नमक बाँटकर कहा, बचा–बचा कर खाना'।

किंतु दस किलो नमक अजर–अमर तो होता नहीं। अबकी पूर्ति ने वन–विभाग के ठेकेदार को पकड़ा। 'हमें काम दो पैसा मत देना, नमक देना।

'नमक दूँगा?''

अब भी इतना दाम बढ़ने पर भी चूँकि नमक ही आज भी भारत में सबसे सस्ती चीज है, इसलिए नमक की मजूरी पर काम करने के प्रस्ताव पर ठेकेदार को चक्कर आ गया। तभी उसे लगा कि इन लोगों के बारे में जानना जरूरी है। उत्तमचंद की जमीन जोतते हैं, इसलिए ठेके द्वारा उत्तमचंद के पास हो गया। जाकर जो सुना उससे लगा कि ये लोग बिलकुल खचड़े हैं। शहर के झगड़ालू लड़कों के साथ होकर सदा के जाने हुए बनिये से झगड़े का फैसला कर बैठे हैं। इन्हें काम देने से ठेकेदार जरूर फँस जाएगा। इसलिए ठेकेदार ने पूर्ति आदि को भगा दिया और काले–काले आदमी सिर झुकाए सफेद बालू पार कर चले गए। इसके बाद इन्होंने फसल के वक्त फसल से नमक खरीदने की कोशिश की। नतीजा हुआ कि फसल बँट गई, नमक मामूली–सा ही मिला। अब पूर्ति को सभी ने दोषी बताया और कहा, महाजन के पास उनके कहने से तुम गए। अब हमें नमक दिलाने की व्यवस्था करो। उस समय तो अपने को मरद मान कर बहुत भरोसा दिलाने गए थे! लीडर बनने चले थे!'

'बिना गए बेगारी बंद होती?''

'नहीं होती तो देते।'

'फसल में हक होता?'

'नहीं होता तो उपवास करते।'

झुझार गाँव वालों को अब बेगार खटने के बाद भी फ़सल न मिलने के दिन बहुत सुख के दिन लगते थे। उन्होंने मन ही मन डंडी और पल्ले का हिसाब लगाया। काला–काला–सा ढेला नमक ही वजन में भारी पड़ा। उनके लिए बेगार के बंद होने और फसल में हिस्से का अधिकार हलका पड़ गया।

गाँव के बूढ़े बोले, नहीं तो अलोना घाटो खाएँगे। लेकिन सीने में सांसें क्यों फूलती हैं? हाथ–पाँव हिलना नहीं चाहते।

'सबको ही लगता कि इसका कारण नमक है, असल में देवी–देवता रुष्ट हैं। गाँव के बुड्ढे सांस छोड़कर कहते, 'सबका ही हो रहा है। अबकी हरम् देउर के थान पर पूजा करना होगा। मेरे घर दो मुर्गियाँ हैं, फारेस्ट गार्ड के पास बेचकर नमक ले आ, पूर्ति। किसी दिन हमें नमक का तो स्वाद मिले।

फारेस्ट गार्ड ऐसे आश्चर्यजनक प्रस्ताव से बहुत खुश हुआ। बोला, स्टोर से नमक लाकर दूँगा, ठहरो।

'दो मुर्गी सस्ती भी खरीदने से आठ रुपए से कम में नहीं मिलेगी।

वह तो है।'

'आठ रुपए का कितना नमक होता है?''

'सोलह किलो।'

'वही ला।

बहुत ही काला कच्चा नमक।

'इतना काला?''

'हाथी खाते हैं, हिरन खाते हैं, वे सफेद को काला समझते हैं ? नमक खाते हैं नमक।'

''हाँ रे बेटा ! उनको नमक माटी देनी होती है।'

'नहीं तो क्या होता है?''

'सूख जाएँगे।'

'कहाँ देते हो?'

'जगह है।'

पूर्ति सोचते–सोचते नमक लेकर गाँव लौटा। हाथी और हिरन साल्ट–लेक से नमक खाते हैं। इस ख़बर से वह बहुत परेशान होने से समझ नहीं पा रहा था, पीठ पर के बोरे के नमक का वजन किसी तरह भी सोलह किलो नहीं है। पूजा के दिन खस्सी काटकर खूब खाना–पीना हुआ। बाद में पूर्ति आकर नदी के किनारे बैठ गया। अकेले में वह शराब पीते–पीते जंगल की ओर ताकता है। बड़े सवेरे और शाम को हाथी खाते–फिरते नदी की बालू पर घूमते हैं। दिन में वे नहीं दिखाई देते। निमकमाटी वे कब खाते हैं और, कहाँ? जंगल बहुत बड़ा है। पूर्ति जंगल को चीर–चीर कर देखेगा, नमक कहाँ मिलता है?

हाट के दुकान उनको नमक नहीं बेचते। इस खबर को संगठित युवकदल ने एकदम छोड़ नहीं दिया। उनके मन में यह बात कहीं लगी रह गई और एक ने किसी मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव को पकड़ कर पूछा, 'मानवदेह में लवण कितना होता है? मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव हाल ही में काम में लगा था और जो सारा इल्म सीखा था उसे उद्धरण का कोई मौका नहीं मिल रहा था। उसने जो कुछ कहा, उसे सुनकर युवक को चक्कर आ गया।

वक्तव्य इस प्रकार था, नमक और पानी शरीर के इनऑरगनिक या मिनरल उपादान हैं। जीने के लिए ये अनिवार्य हैं और शरीरकोष के फंक्शन में यह विशेष भूमिका का पालन करते रहते हैं। प्रमुख लवण है क्लोराइड, कार्बनेट, बाइकार्बनेट, सल्फेट और फ़ास्फ़ेट। यह सोडियम, पोटाशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, क्लोराइड के साथ लोहा, सी.ओ. टू सल्फर और फ़ास्फ़ोरस के यौगिक हैं। साधारण रूप से कहा जाता है कि लवण पूरे जीव–शरीर में ये सब काम करते हैं– (1) शरीर की आस्रवण अवस्था को देखभाल कर ठीक रखना। (2) देह में जल का संतुलन और रक्त का वॉल्यूम ठीक रखना। (3) शरीर का एसिड–बेस भार–साम्य ठीक बनाए रखना। (4) शारीरिक चुस्ती के लिए आवश्यक सामग्रियों को जुटाना, विशेष रूप से अस्थि और दाँतों को। मांसपेशी और नर्वसेल की प्रॉपर इरिटेबिलिटी के रख–रखाव के लिए भी लवण आवश्यक है। आवश्यक है रक्त संचन या कोआगुलेशन के क्षेत्र में। (5) लवण

कई एन्ज़ाइम– सिस्टम श्वास–प्रश्वास के पिगमेंट और हार्मोन की आवश्यक सामग्री है। (6) लवण जीवदेह में सेल–मेम्ब्रेन और कैपिलरी की क्रिया को नियंत्रण में रखता है और उनको चलाता है।

इतनी कठिन बातें जानकर युवक को और भी चक्कर आ गया और बोला, ''क्या यार, मैंने क्या इम्तहान के लिए पूछा था? तब क्यों पूछा? नमक न खाने से क्या–क्या नुकसान हो सकते हैं?'' ''नुकसान क्या होगा? हाई कैलोरी खाना मत खाओ, मामूली नमक से ही काम बन जायेगा।'' 'अरे, ऐसे लोग भी तो हैं, जो किसी भी कैलोरी के पास नहीं फटकते!' 'हाँ हाँ, भारतीय लोगों की फूड हैबिट ठीक नहीं है।' 'अरे, मैं जिनकी बात कह रहा हूँ...।' युवक समझ गया कि वह छाया के साथ कुश्ती लड़कर मन के शरीर में दर्द पैदा कर रहा है। डाल्टनगंज की चाय की दुकान, झुझार गाँव से कोई लाखों योजन की दूरी पर नहीं है। लेकिन ये दो जगहें महान विश्व के या नक्षत्रों पर स्थापित हैं, और किसे नहीं मालूम, आकाश के तारों पर तमाम कविताएँ और गीत क्यों न लिखे गए हों, यह करोड़ों सूर्यों से भी विशिष्ट ताप हैं और उनका मध्यवर्ती काला आकाश वास्तव में करोड़ों मील के व्यवधान पर उक्त क्रुद्ध और घूमते हुए नक्षत्रों में अंतर रखता है। डाल्टनगंज गरम है, लकड़ी के रोजगार की गर्मी से। झुझार गरम है, अभागे और आधुनिक भारत से निर्वासित कुछ आदिवासियों की वंचना के उत्ताप से। पूर्ति मुंडा की समस्या इस टेरीक्लॉथ और पाउडर से शोभित चटक–मटक वाले लड़के को समझाना छायाचित्रों की–सी एक बेकार कोशिश है।

किसकी बात कह रहे हो?' वे लोग खाते हैं केवल घाटो या मड़वा या उबाले भुट्टे। तरकारी या फल या मछली या मांस...।' वे नमक नहीं खाते? क्यों? 'मिलता नहीं।' नमक सबसे सस्ती चीज़ है।' 'उन्हें नमक नहीं बेचते...।' 'झूठ।' 'जो लोग लो कैलोरी के सीरियल खाते हैं, उनको नमक न मिले तो क्या होगा?'

'किन्हें? नई फिल्म देखी थी?' 'नहीं। बताओ न।' 'अरे, अनाड़ी को समझाऊँ कैसे?' 'नहीं तो तुम पंडित क्यों हुए?' लवण शरीर के फ्लूइड को कंट्रोल करता है, रक्त का भी। लवण न मिलने से खून का कोआगुलेशन–खून का जमना–बहुत गाढ़ा हो जाएगा।

हार्ट को गाढ़ा रक्त पंप करने में कष्ट होगा, सांस में दबाव आएगा। स्नायुओं में क्रेंप यानी ऐंठन होगी। शरीर चलाने में भी बहुत स्ट्रेन पड़ेगा। शरीर के हाड़ और दाँतों का क्षय तो होगा ही। बॉडी में जनरल डिके–सब तरह का क्षय होगा। छोड़ो फिजूल बात। चलो फिल्म देख आएँ।

फ़िल्म में दुर्धर्ष गनमैन, बंदूकबाजी, उत्तुंग यौवना तांगेवाली और अमिताभ बच्चन थे। किंतु अमजद खां के कानून के हाथों सजा पाकर बनारसी पान खाकर घर लौटने के बाद भी युवक झुझार की समस्या को उसके दिमाग से अलग न कर सका। दूसरे दिन वह टाहाड़ में उत्तमचंद के घर गया।

उसकी शिकायत सुनकर उत्तमचंद बोला, 'आदिवासी पहले झूठी बातें नहीं कहते थे। अब बहुत खच्चड़ हो गए हैं।'

'क्यों?'

'मैं गंदे लोगों को नमक नहीं बेचता।' 'नहीं।' 'अरे, मैं किसी को नमक नहीं बेचता। नमक में कुछ भी मुनाफ़ा नहीं है। मैं पिछले हाट से हाट में नमक नहीं ले जाता। 'इसके पहले भी उन्हें नमक नहीं बेचा? कैसी अजीब बात है! थोड़ा नमक नहीं बेचा? क्या अजीब बात है! थोड़ा नमक, शायद दुकान से उठ गया।' 'नमक नहीं बेचते? क्यों?'

'नफ़ा नहीं है।'

'यह क्या ठीक हो रहा है?' 'मैं उत्तमचंद हूँ, बनिया, जब पहले पार्टी को मदद दी थी, तब तो मेरी सब बात ही खराब है, सब काम ही गलत है।' 'उल्टा समझ रहे हो।' 'नहीं बाबू साहब! पार्टी को मदद दी, जब जो सरकार चलाए, उसे मदद न देने से हमारी तरह गरीब गाँव का बनिया जिंदा नहीं रह सकता। आप लोगों ने कहा, मैंने बेगार बंद कर दी, फसल में हक भी छोड़ दिया। पार्टी के लड़कों ने ये सब बातें नहीं कही थीं। कहते तो तब भी देता। पर अब जो कह रहे हैं, कैसे? जिस चीज में नफा नहीं, उसे देने को कहना तो जबरदस्ती है''। 'वे उधार लेने आते हैं?' 'न, उधार वे क्यों लेंगे? फसल मिल रही है। और हमें तो हाथ झाड़–पोंछ कर जरा–सा दिया।' 'उस जमीन में क्या होता है, बताइए?' 'न होता हो तो मैं क्या करूँ? जमीन कम पैदावार की हो तो वह भी क्या मेरा दोष है? और जानते हैं? उधार चाहें भी तो मैं उधार न दूँगा। क्यों? यही देखिए! उधार देने पर उधार चुकाया जाता है, और वह आपकी सरकार में गैर–कानूनी है। देखिए, ज्यादा नाचने से भी गणेश–पूजा नहीं होती। यह आइन कानून पहले भी था। सरकार आँखें बंद किए रहती थी, क्योंकि सरकार आदमी का दुख समझती थी। वे लोग जानते थे कि महाजन उधार न दे तो आदिवासी जंगली लोग भूखे मर जाएंगे। आप लोग तो समझते नहीं। अच्छा है! जो कर रहे हैं वह अच्छे के लिए ही कर रहे हैं। अंत भला तो सब भला। उन्हें उधार नहीं दूँगा।'

युवक हार मानकर लौट आया और शुभ संकल्प किया कि पहला मौका मिलने पर झुझार बेल्ट में जनता दुकान खुलवाने की व्यवस्था करेगा। संकल्प कुछ दिनों मन में रहा। उसके बाद शराब की गैर–कानूनी दुकान के लिए गड़बड़ दूर करने वह दूसरी जगह चला गया और झुझार की बात भूल गया।

युवकों की सारी शुभेच्छा संग रहने पर भी पूर्ति आदि अलोने अँधियारे में पड़े रहे। पूर्ति अवश्य ही नहीं रहता था। रोजाना वह चुपचाप जंगल छानता था। हिरनों का सॉल्टलिक जंगल–ऑफिस के आस–पास था। इसके बाद उसने एक दिन खरगोश का पीछा करते जाकर हाथियों का सॉल्टलिक खोज लिया। दृश्य बहुत ही रोमांचक था। प्राणों के भय से पूर्ति पेड़ की डाल पर था। थोड़ी ही दूर पर हाथियों

का दल नमकमाटी की मिट्टी चाट रहा था। पथरीला नमक पत्थर के ऊपर मामूली–सा मिट्टी मिलाकर फैला हुआ था। लवण का खेत बना दिया है। उसने मन ही मन कहा। उसके बाद अंधेरा फैलने पर हाथी अपना स्थान छोड़ देते हैं। बेतला के हाथी 'शो बिजनेस' समझते हैं। शाम को जीप पर चढ़कर टूरिस्ट जीव–जंतु देखने निकलते, वे बाँस के पेड़ों को कुतरने लगते, हाथियों का झुंड उन्हें देखने का अभ्यस्त था। हाथी उस ओर जाते। सारे हाथियों के चले जाने पर एक दाँत वाला बुड्ढा हाथी आता। उसके चलने–फिरने से गृहस्थ–सा ढंग नहीं लगता था, यद्यपि हाथी बहुत ही घरेलू जानवर है। 'अकेला'! पूर्ति ने मन–ही–मन कहा और डर के मारे पेड़ पर चिपका रहा। कोई युवक हाथी किसी दल से निकाला जाए तो यूथपति बन जाए। ऐसे हाथी को 'अकेला' कहते हैं और 'अकेला' सबके लिए ही अवॉयडेबल–दूर रहने वाला होता है। 'अकेला' क्या करेगा, इसका पता नहीं। यूथपतित्व और दल से निर्वासन के कारण इसका व्यवहार भी और आचरण भी इरिसपांसिबल–गैर–जिम्मेदारी का होता है। 'अकेला' सॉल्टलिक को मूत से भिगोकर चला गया। पूर्ति समझा कि वह अपनी समझ के मुताबिक खचड़ई करके चला गया।

हाथी का पेशाब बचाकर निमकमाटी को पल्ले में बाँध कर वह घर लौटा। पानी गरम कर उसमें निमकमाटी छोड़ दी। पत्नी से बोला– कल देखना होगा, मिट्टी नीचे थिर जाने पर कितना नमक रहता है? पानी में नमक? हाँ। सवेरे देखा तो मिट्टी और नमक एक साथ नीचे पड़े हैं। पूर्ति ने ठंडी साँस लेकर कहा, फिर भी नमक तो है! साले अब हाट में नमक बिकता ही नहीं। उस नमकीन खारे गंदे पानी को ही कपड़े से छानकर पूर्ति पीता है और औरों को खबर दी, अकेला हाथी के बारे में सबको सावधान किया। अब गाँव वाले बूढ़ों ने कहा, बहुत सावधान! उस बार क्या हुआ? सबको याद आया। हर बरस सारांडा फॉरेस्ट में हाथियों का एक झुंड बेतला आता और लौट जाता। कई बरस पहले किसी नासमझ आदिवासी युवक ने तीर मारकर एक बच्चा हाथी मार डाला था। उससे हाथी खफा हो गए और मरे बच्चे को घेर कर आदमी की समझ में आने वाली प्रतिज्ञा कर चारों ओर घूमते रहे। उसके बाद वे हाथी प्रतिहिंसा की लड़ाई में उतर पड़े। झुझार और कोलना गाँव के रहने वाले आदिवासी भाग खड़े हुए। पहले बरस हाथियों ने दो गाँवों को तहस–नहस कर डाला। दूसरे बरस सारांडा से आकर हाथियों ने काम में लगे जंगल के कुलियों में से दो कुलियों को मार डाला। तीसरे बरस बेतला के जंगल–बंगले के नीचे एक बस और गाड़ी को उन्होंने तोड़ताड़ कर उलट दिया। तीन बरस में आदमियों से बदला लेने की इच्छा को तृप्त करने के बाद वे शांत हुए। उनको रोगी घोषित कर मारा न जा सका क्योंकि वे हमेशा झुंड में घूमते और वयस्क हाथी रिट्रीव्यूशन–प्रतिशोध का काम करते। आजकल बेतला में सब जगह काँटेदार तारों का घेरा है। हाथियों की बुद्धि बहुत होती

है और इन काँटेदार तारों का निषेध उन्होंने समझा और मान लिया। गाँव के बूढ़े बोले, 'और जो भी करना हो करो पर, हाथी को गुस्सा मत दिलाना। और वह भी अकेले को 'वे भूलते नहीं।' युवक लोग अवसन्न शरीर से और सहन न कर पा रहे थे। वे सूखे मुँह से बोले,– सावधानी से ही जाएंगे। पूजा देकर भी कुछ नहीं हुआ। दम निकला जाता है। बोझा खींचने में हाथ–पाँव दुखने लगते हैं।' वे लोग सावधानी से ही गए। सावधानी से निमकमिट्टी चोरी की। "गाछ से पहले न उतरना, देख लेना कि सब हाथी चले गए हैं या नहीं। पूर्ति की बात याद रखी। उसके बाद, संभवतः 'अकेले के कारण ही सॉल्टलिक शिफ्ट की गई। दो–तीन जगह सॉल्टलिक बनाई गई। बहुत दूर पर अकेला, झुझार के आदिवासी, सॉल्टलिक इन कठिन अंकों के उत्तर लेने के बाद वन विभाग की हालत पर बड़ी होशियारी से काम किया। अकेले या झुंड में, एलीफैंट पॉपुलेशन की जिम्मेदारी वन–विभाग की थी। यह 'अकेला' खचड़ा था। यह सॉल्टलिक से निमकमिट्टी चाटने के बाद मूत कर चला जाता। जगह–जगह सॉल्टलिक बनाने पर वन–विभाग की आशा थी कि अकेला एक जगह जाएगा तो दूसरी जगह हाथियों का होगा। 'अकेले' ने हिसाब में बड़ी गड़बड़ की थी। एक बार यहाँ, तो दूसरी बार वहाँ जाता था। झुंड में न रहने से उसके समय का ज्ञान भी बदल गया था। संध्या या सवेरे के सिवा वह बेटाइम भी सॉल्टलिक पर चला जाता, उसे लगता कि निमकमट्टी चोरी हो रही है। बीच–बीच में सड़क पर आकर खड़ा हो जाता। जीप की रोशनी पड़ने पर भी न हिलता। जीप लौटा लेनी पड़ती थी। वह क्या आदमियों पर संदेह कर रहा था? सूंड के राडार हिलाकर क्या वह आदमी की गंध खोज रहा था? वन–विभाग में हाथियों के बारे में एक टेंशन बन गया और बढ़ रहा था कि क्या इस तरह का 'अकेला' अचानक बिगड़ैल आचरण कर सकता है? वन–विभाग की मुसीबत थी कि मैन–किलर या रोग प्रसिद्ध हुए बिना, उस बारे में प्रमाण मिले बिना, संरक्षित हाथी को मारा नहीं जाता था। मन–ही–मन सभी इस तनावपूर्ण स्थिति के फलस्वरूप किसी विस्फोट के होने की अपेक्षा कर रहे थे। वन विभाग में कुली कह रहे थे, 'अकेले' के होने पर उन्हें काम पर जाने में डर लगता है। उन्होंने देखा कि 'अकेला' दूर खड़ा उनको लक्ष्य कर रहा है और वे काम छोड़ कर भाग आए। 'अकेले' के मन में संदेह घुस गया था। सॉल्टलिक पर जो नमक रखने जाता, उनके मन में भी शक था। निमकमाटी खुरच खरचा कर खतम कर दी गई है, ऐसी बात उन्होंने कभी नहीं देखी थी। नमकमाटी जैसी चीज की कोई चोरी करेगा? न उन्होंने रिपोर्ट नहीं की। रिपोर्ट के लायक महत्वपूर्ण घटना–सी लगी नहीं। नमक जैसी चीज़? स्टोर में बहुत–सा है।

एलिफेंट पॉपुलेशन भी संशय में था और असंतुष्ट था। सॉल्टलिक है, पर नमकमिट्टी नहीं रहती है, इसे वे भी कुछ नहीं समझ पा रहे थे। अजीब–सी ही

गड़बड़ थी। इन सारे हालात का कारण पूर्ति और दो युवक थे। पहले वे सावधान रहते थे, बहुत ही सावधान। शाम से पेड़ से चिमट कर चुपचाप फुनगी पर रहते। हाथियों के झुंड और 'अकेले' के चले जाने पर निमक मिट्टी लेते जाते। संभवतः इस नमक के जमा करने से उनकी मांसपेशियाँ तेज और स्वाभाविक गति में काम करने को समर्थ हो गई थी, शरीर की ऑस्मोसिस–स्थित अवस्था लौटाकर, खून में पानी की बढ़ोतरी होने से हृदय अधिक दबाव डालकर स्वाभाविक चाल से ही शरीर में रक्त भेजेगा और शरीर की इलेक्ट्रोलाइट अवस्था ठीक हो जाएगी।

संभवतः! इसके फौरन बाद आदमी की धूर्त बुद्धि फिर दिमाग में भर गई। वे सतर्कता भूल गए। शाम को हाथियों के आने के पहले ही नमकमिट्टी लेकर चले जाते। वे जान भी न पाए कि 'अकेला, उन्हें देख रहा है। अचानक जंगल में 'अकेले' को कम देखा जाता। पता लगा कि शाम के शुरू होने पर नदी की सफ़ेद बालू पर जैसे दूर पर कुछ देख रहा हो। 'क्या देख रहा है?' 'नदी पार कर आदिवासी जा रहे हैं।' यह समाचार कुछ अच्छा नहीं था। किंतु 'अकेले' ने अपने मनोरोग का टारगेट बदल दिया है, इससे ही वन–विभाग का तनाव ढीला पड़ गया। पर कहा गया कि हाथी क्या करेगा, यह जान पाने पर ही बताना होगा। कुछ दिन के बाद फिर कत्थे के पेड़ों का काम छोड़ देना पड़ा। कत्थे के पेड़ों का जंगल, प्राचीन पलामू किले की राह में जंगल के बिलकुल भीतर स्थित है। पता लगा कि प्राचीन पलामू किले के पास 'अकेला' घूमता–फिरता है।

यह प्राचीन पलामू का किला किसी समय पलामू के स्वाधीन राजाओं का दुर्ग था। बेतला के घने जंगल में इस विशाल, पहाड़ से ऊँचे पत्थरों और ईंटों के टूटे किले का दृश्य अवश्य बहुत ही डरावना था। प्रकृति के उत्पन्न किए वनस्पतियों के जंगल में, ऊँचे–से–ऊँचे साल के पेड़ों से भी बहुत ऊँचा था। मनुष्य के बनाए इतने बड़े स्ट्रक्चर के लिए आँखें तैयार नहीं थीं इसीलिए किले को देखकर डर लगता है। जंगल के कुली देखते हैं कि बाघ से भी अधिक निःशब्द सूखे पत्तों से बचता हुआ 'अकेला' किले के पास से चला जा रहा है और सूँड़ बढ़ाकर कुछ खोज रहा है। देखते ही वे लोग वापस चले आए।

पूर्ति मुंडा को स्वभावतः ही ये सारी बातें जानने का मौका ही नहीं मिलता था क्योंकि वन–विभाग के लोगों का आभास पाते ही वे जंगल में छिप जाते थे। वन विभाग के लोगों के लिए यह नमक कुछ भी नहीं था। नमक के लिए ही पूर्ति सोच रहा था कि कभी भी वे लोग उनकी नजर में न पड़ें। देख लेते तो वन–विभाग के लोग उनको नमक चोर कहकर पकड़ लेंगे। यह सब गलतफहमी की वजह से ही सब गलत–सलत अंदाज लगा रहे थे। और 'अकेला' अपने चाटने के और मूत के बहाने निमक से वंचित होकर अपने को अपराधी तय करने पर उतर आया था– उसने ठीक ही समझा था। सॉल्टलिक और झुझार में एक बंधन–सूत्र है। इसी से वह सफेद बालू

पर खड़े–खड़े झुझार की ओर देखता रहता। दृश्य बहुत ही लाक्षणिक था। नदी, बालू, आकाश, रात, पलामू किले की पृष्ठभूमि और खामोश हाथी। बहुत ही प्रशांत और चिरकालीन। केवल अंतर था कि इस हाथी के दिमाग में जो इरादे उथल–पुथल हो रहे थे, वे सफेद कबूतर उड़ाने की तरह नहीं थे।

इसी तरह कई दिन बीत गए। उसके बाद एक रात को किसी को बिना गवाह बनाए हाथी पानी और बालू को पार करता झुझार चला गया और कुएँ के पास खड़ा रहा। सवेरे सब लोग दरवाजा खोलकर प्रातःकालीन नित्यक्रिया के लिए अलग–अलग गए और कुएँ के पास खड़े 'अकेले' के पीछे से सूर्य को निकलते देख उन्होंने अपने–अपने दरवाजे बंद कर लिए और डर के मारे पत्थर–से चुपचाप बैठे रहे। खिड़की की झिरी से उसे पूर्ति मुंडा ने देखा और मन–ही–मन रटने लगा, 'हेई आबा! कोई तीर न मार दे, हेई आबा!' किसी ने तीर नहीं मारा और हाथी मानो किसी संदेह का जवाब पाकर गाँव छोड़ नदी–पार चला गया। उसके जंगल में गायब होने पर ही सब लोग घरों से निकले और गाँव के बुजुर्ग ने कहा, 'जो कहा था वही हुआ न? जरूर तुम लोग असावधानी से गए थे। उसने देख लिया। नहीं तो क्यों आया?' 'देखा ही नहीं। देखता तो हमें पता चलता न, और हम उसे देखते न?' 'हाथी क्या खरगोश होता है, हाथी चींटी होता है– हाथी तितली होता है, हाथी हवा होता है। इतना बड़ा शरीर, जब चाहे तब अलखा बन आकर सिर पर पैर रख सकता है, तुझे पता न चलेगा। अरे बुद्धु! अरे गू के कीड़े! तूने उसे देखा नहीं, उसने तुमको देख लिया है। नहीं तो आया क्यों? ''जो हो गया हो गया, अब इलाज बताओ।' 'पूर्ति, तुझे कौन सी सजा देने से मन भरेगा, पता नहीं। गैर–आदिवासी कोयले के काम में, कुली के काम में जो शहर जाता है, वह वहीं रह जाता है। तू नहीं रहा। लात खाकर चला आया। सोचा, बड़ा ज्ञानी बनकर आ गया है। उत्तमचंद से विवाद किया। वह बाघ है। उसके बाद हाथी बुलाकर गाँव में घुसा दिया।' 'इलाज बताओ।' 'कोई नमक लेने न जाएगा। अपने–अपने छप्पर में बैठो। हाथी दिखाई पड़े तो भागो।' पूर्ति बोला, 'काँटेदार झाड़ी काटकर बाड़ा बना लें? जंगल में लगाते हैं। उससे हाथी डरता है।' 'हा–हा, पथरीला धरती का गाँव है! कहाँ बेड़ा लगाएगा? किधर से अटकाएगा'? तब? 'नमक लेने मत जा। उससे शायद वह भूल जाए।' पूर्ति ने गाँव के बुजुर्ग की बातें सुनीं। फिर वे नमक लेने न गए। बड़े आश्चर्य की बात कि हाथी दोबारा आया ही नही। एक दिन पूर्ति ने जंगल के बीट अफसर से कहा, 'अकेला' उस दिन गाँव गया था। हम बहुत डर गए थे। 'हम भी डर गए थे। अब साला कहीं दिखाई नहीं पड़ता। लगता है, चला गया।' सबको ही लगा कि वह चला गया। मानो हरे जंगल में वह धूसर प्राणी गायब हो गया। जलाशय के पास जानवर के पैरों के छाप देखे गए, जीव–जंतुओं की संगणना बनी। जलाशय या कमलताल देखकर या बिना देखे ही वन–विभाग ने कह दिया कि

'अकेला' गायब हो गया। 'अकेला' नदी के मोड़ पर जहाँ कि जंगल झुका पड़ा था, वहाँ से सब देख रहा था और समझने की कोशिश कर रहा था। सॉल्टलिक पर अब किसी का हाथ न पड़े, आसपास आदमी की अपवित्र गंध न रहे। यह कोई नया आक्रमण–कौशल है? उसे मानो पता था कि आदमी बेसिक रेशनल प्राणी है। 'अकेला' को खफाकर नमक मिट्टी लेना इर्रेशनल काम था। न लेना रेशनल था। लेकिन आदमी बहुत दिनों तक अकल से काम नहीं कर सकता है। पूर्ति आदि भी नहीं कर सकेंगे, इसे जैसे 'अकेला' जानता था। पूर्ति ने वही इर्रेशनल काम ही किया। सबसे बड़ी आश्चर्य की घटना हुई कि जब किया, तो उसके एक सप्ताह पहले से 'एनफ़ इज एनफ़' स्थिर कर उत्तमचंद ने हाट में काफी नमक बेचना शुरू किया था। पूर्ति को यह पता था या नहीं, यह भी मालूम नहीं हुआ। शायद पता न था। अगर जानता, फिर भी विश्वास नहीं करता कि उत्तमचंद उसे नमक बेचेगा। हो सकता है कि 'अकेला' की नाक के सिरे से या 'अकेला' को धोखा देकर उन लोगों की निमकमाटी चोरी करने की तबीयत हुई हो। वे भी मर्द हैं और काम करने वाले हैं, इसे प्रमाणित करने के लिए वही काम करना उनके लिए बड़ी बहादुरी का काम लगा था। शायद! या वन–विभाग को छकाने की इच्छा हुई थी। पूर्ति के मन में क्या आया था, उसका पता नहीं चला। पर बहुत जिरह करने के बाद पता चला कि भोर रात में पूर्ति और दो युवक बोरा लेकर निकले। कह गए, 'बहू, सावधान, सावधान चिल्लाना मत। सावधानी से ही जाएँगे और आएँगे। सूरज निकलने पर हाथी चले जाएँगे, तब जाएँगे। वे भी गए और 'अकेला' भी बढ़ा। हाथी विशालकाय भूमिचर प्राणी होता है। लेकिन खफा हाथी जब आदमी के साथ अक्ल की लड़ाई में उतरता है, तो चाहे तो चींटी से भी निःशब्द चल सकता है। हर सूखे पत्ते को हटाकर होशियारी से कदम रखता है, अविश्वसनीय सतर्कता के साथ। इसीलिए गर्दन घुमाते ही पूर्ति आदि को लगा था कि शायद प्राचीन पलामू का अकाल ही बढ़ आया है। हाथी जितना बड़ा होता है, बहुत पास से उससे भी बड़ा दिखाई देता है।

हाथी ने बिना कोई आवाज किए मुंड और पैर चलाए थे, लेकिन तीन आदमी जोरों से, बड़े जोरों से चीखने लगे। उनके आर्तनाद से दूर–दूर के हाथियों के झुंड भी चंचल हो गए, हिरन उछलकर भाग निकले। इंसान का आर्तनाद झटपट निकल कर निस्तब्ध हो जाता है। उसके बाद हाथी प्रायः मानुषी उल्लास में तेज चीत्कार से आकाश फाड़ते हुए जंगल को रौंदता हुआ चला जाता है। ऐसा क्यों हुआ, इसका ठीक से पता नहीं चला, पूर्ति का कहना था। दलित और पिसे मानव शरीर कोई गवाही या इजहार नहीं दे सकते। निमकमाटी चुराने आकर मरे हैं? नोनामाटी? सबके मन में यही बात उठती और पूर्ति आदि का सारा आचरण बहुत दुर्बोध लगा। अंत में दारोगा ने कहा, 'जरूर शराब के नशे में मतवाला रहा होगा।' सवेरे शराब पीकर आदिवासियों

का मतवाले रहने का समय होता है या नहीं, इस बात को उठाकर किसी ने मामले को उलझाया नहीं। यह निमक माटी चोरी का मामला है, इसे समझना मुश्किल है। नमक ऐसी सस्ती चीज है! शराब पीकर मतवाले हुए बिना ऐसा इर्रेशनल–नासमझी का काम पूर्ति आदि क्यों कर सकते? हाथी का निमक माटी चोरी करने जाकर मरे! दारोगा की कुछ बातें पूर्ति आदि की एपिटाफ़ बन गईं और झुझारवासी किसी भी तरह विश्वास योग्य नहीं हैं, यह प्रमाणित हो गया। तृणभोजी जीवों को नमक की जरूरत होती है, और उस नमक को भी आदमी चुरा ले! मनुष्य के हाथों वन्य–प्राणियों का संरक्षण कितना कठिन होता है, वह जैसे पूर्ति आदि के अस्वाभाविक काम से फिर याद हो आया।

'अकेला' की जानकारी के बिना वह 'रोग' (बदमाश) डिक्लेयर कर दिया गया और इसलिए उसके मरने से हाथियों का झुंड ख़फ़ा न होगा। वह अकेला है, इसलिए कुछ कमीशंड शिकारी लोगों ने उसे गोली से मार डाला। घटना अख़बार में छोटा सा समाचार बनी और मृत 'अकेला' को देखने झुझारवासी भी आए। गाँव के बुजुर्गों को हाथी देखकर बुरा लगा कि यह ठीक नहीं हुआ। प्रत्यक्ष सत्य था कि हाथी ने पूर्ति आदि को मार डाला, जिसके परिणामस्वरूप वह मरा। परोक्ष सत्य मानो कुछ और था। नमक के लिए इतना कुछ! उन्हें नमक नहीं मिलता। नमक खरीद सकते तो तीन आदमी और एक हाथी न मरते। इसके लिए कोई और जिम्मेदार है, कोई और। जिसने नमक नहीं बेचा वह, या कोई और नियम? कोई और व्यवस्था? जिस नियम और व्यवस्था के अंतर्गत रहने पर नमक न बेचने पर उत्तमचंद का कोई अपराध नहीं? उसका विचार गंदा है और बातों के लिए शब्द–भंडार बहुत सीमित होने से किसी को कुछ समझाया नहीं जा सकता। 'यह काम ठीक नहीं हुआ जी!' बाबुओं के लिए इतनी–सी बात कहते हुए वे गाँव वालों को लेकर चले गए और कतार बाँधकर सफेद बालू पारकर सिर हिलाते–हिलाते झुझार लौट गए।

नमक जान लड़ा देने वाली समस्या हो सकती है, इसे बाबू लोग कभी न समझ सकेंगे और यह मामला उनके लिए अवास्तविक रह जाएगा, इसे वे जानते हैं। जानते हैं, इसीलिए एक बार भी पीछे घूमकर नहीं देखा। बालू की छाती पर उनकी शकलें क्रमशः छोटी होती गईं। वे जल्दी–जल्दी चल रहे थे। अपने जीवन में लौटकर ही उनको चैन मिलेगा। जिस जीवन में अविश्वास नहीं है, पूर्ति आदि मृत्यु की सहज व्याख्या नहीं, सहज व्याख्या देकर अपने अस्तित्व के वास्तविक सत्य को अस्वीकार नहीं करना है– वे लौट रहे हैं उसी जीवन की ओर।

❑❑❑

मलयालम कहानी

वेबसाइट



चंद्रमति
मलयालम लेखिका



अनुवाद : जे.एस. तंकमणि अम्मा
पूर्व प्रोफेसर एवं डीन, केरल विश्वविद्यालय केरल

सुंदर, अविवाहित इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर उपाधिधारी, एकाकी युवक (आयुः 39 वर्ष; शौकः संगीत, वाचन, इंटरनेट)। समान अभिरुचि वाली युवतियों से शुद्ध सौहार्द की कामना है। लिखें : बॉक्स 2525 के.जी.डी.।

इस विज्ञापन ने स्मिता के अंतस्थल में घुसपैठ कर उसे छू लिया। स्मिता थी सुंदरी, अविवाहिता, मलयालम साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधिधारी तथा एकाकिनी। उसके शौक भी उपर्युक्त ही जो ठहरे। वह भी शुद्ध सौहार्द न मिलने का अवसाद झेल रही है। ऐसे हाल में वह लिखे बगैर कैसी रहेगी?

अनजान प्रिय मित्र,

विज्ञापन देखा। इसके दो शब्दों ने मुझे मोह लिया। इसलिए यह चिट्ठी लिख रही हूँ। वे शब्द कौन–कौन से हैं। इसके बारे में बाद में लिखूँगी।

पहले पहल मैं अपना परिचय दूँगी। नाम स्मिता। असली नाम सुष्मिता। उसी नाम वाली युवती को 'विश्व सुंदरी' का खिताब मिला तो मैंने पहले अक्षर की उपेक्षा की। यों ही मैंने उपेक्षा नहीं की थी। राजपत्र (गजट) में विज्ञापन देकर नाम बदल दिया था। मैंने ऐसा क्यों किया, यह बात तब आपकी समझ में आएगी जब हमारा शुद्ध सौहार्द आगे बढ़ेगा। मेरी उम्र 28 साल की है। मलयालम में एम.ए. हूँ। अध्यापिका बनने की इच्छा नहीं थी। छात्रों को परोस देने के लिए अपने पास कुछ तो होना चाहिए है न? नए जमाने में जीने के लिए मैंने कंप्यूटर का बेसिक पाठ्यक्रम सीख लिया। पूर्व लिखित परीक्षाओं में किसी एक के परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय के कार्यालय में सेकेंड ग्रेड असिस्टेंट की नौकरी मिली। इस शहर में एक 'पेइंग गेस्ट' के रूप में रह रही हूँ। इंटरनेट और ई–मेल यहाँ से सीख लिए। इस घर का आउट हाउस स्त्रियों के लिए स्त्रियों द्वारा प्रशिक्षण दिया जानेवाला केंद्र है। ज्यादा सीखने की इच्छा न होने के कारण मैं उस ओर ताकती तक नहीं।

यह घर पूरा का पूरा स्त्रीमय है। घर का मालिक दुबई में। नीचे की मंजिल में उसकी पत्नी और दो बेटियाँ हैं। बड़ी बेटी कंप्यूटर कक्षा चलाती है। ऊपरी मंजिल के दो कमरों में हम चार पेइंग गेस्ट हैं। शाम को सात बजे के पहले घर पहुँचने का नियम है। कार्यालय से निकलकर, पुस्तकालय तथा इंटरनेट कैफे में घूम–फिरकर (इंटरनेट के प्रति मेरी मानों सनक ही है।) मैं ठीक समय पर ही घर वापस आ जाती। उसके बाद भी समस्या सामने आती। फिर क्या, पुस्तकें पढ़ती। कैसेट सुनती। ऊपरी मंजिल पर एक ब्लैक एंड वाइट टी.वी है जिसके सम्मुख चार अभिरुचियों वाले चार दर्शक भी। आवाज के बढ़ जाने पर निचली मंजिल के 29 इंच कलर टी.वी. के सामने बैठकर दुबई सुलतान चेतावनी भेजती। सब कुछ सहकर इधर ठहरी हूँ मैं। पाँच फुट दो इंच कदवाली 50 किलो वजनवाली श्वेत रंग वाली, लंबे बालों वाली मैं।

अब आप के विज्ञापन की ओर आऊँ। मेरे पसंद के दो शब्द जो उसमें हैं वे ये हैं–(1) एकाकी (2) शुद्ध सौहार्द। पहला, हम दोनों के लिए बराबर। दूसरा, सदैव ही मेरा सपना रहा है। कोई निर्मल और स्वच्छ सौहार्द हमारा अपना हो। शेष आपकी चिट्ठी के बाद।

सस्नेह

स्मिता

सोमवार को पोस्ट किए पत्र का उत्तर शुक्रवार को मिला। ''स्वयं अपने को ''सुंदर'' पुकारनेवाले विज्ञापन–युवक' के लिए सर्वथा असंगत लगती विकृत लिखावट'' मन ही मन यों सोचकर स्मिता ने पत्र खोला।

डियर स्मिता,

मलयालम मुझे नहीं आती। एस.एस.एल.सी में किसी न किसी प्रकार उत्तीर्ण हुआ। लिखावट भी अच्छी नहीं। कंप्यूटर की–बोर्ड में टंकण करने का आदी हूँ। इंटरनेट की सनकी है तो स्मिता भी मेरे समान कंप्यूटर के सामने ही ज्यादा समय बिताती होगी। मेरे लिए दुनियाभर में मित्र हैं। वे कौन हैं, कौन कहाँ हैं, इसका कोई पता मुझे नहीं। वही तो नेट मित्रता की खासियत है।

मेरा नाम विनोद कृष्णा। कानपुर आई.आई.टी. से एम.टेक किया। अमरीका में नौकरी कर धन कमाया। अब 39 वर्ष की आयु में आराम की जिंदगी। जरूरत से ज्यादा धन क्यों चाहिए? जिंदगी एक ही है न? उसका भरपूर मजा लेना चाहिए। इसलिए मैं 'जोशी' और 'मार्टिन' सुनता हूँ। तकनीकी किताबें और ''पल्प फिक्शन'' पढ़ता हूँ। नेट में सर्च करके थक जाता हूँ।

स्मिता की जिंदगी के समान एक जिंदगी मेरी रुचि की नहीं। किसी दफ्तर में क्लर्की का काम। पेइंग गेस्ट के रूप में कहीं ठहरना। एक 'ब्लैक एंड वाइट' टी.वी. के लिए तीन लोगों के साथ मुठभेड़। फिर भी स्मिता का स्वयं का वर्णन बेहतरीन है।

आमतौर पर भारतीय लड़कियाँ पहले पत्र में ही यों अपना वर्णन नहीं करतीं। सवाल की प्रतीक्षा करती रहती हैं। कद, तौल, बाल आदि की घोषणा नहीं करती। लगता है स्मिता 'ईगो' वाली लड़की है। है न? पूरे पत्र में अहंकार भरा पड़ा है। गज़ट में विज्ञापन देकर नाम बदलना तथा उसका कारण न बताना वगैरह अहंकार ही लगता है।

स्मिता की तर्ज पर ही मैं अपना परिचय दूँगा। मेरा कद छह फुट का है। फिलहाल मापता नहीं। वज़न 70 किलो। घुँघराले बाल। फ्रेंच दाढ़ी। गेहुँआ रंग। काफी है न? अब क्या जानना है? पसंदीदा संगीतज्ञ, लेखक, सर्फ की जगहें, सब के बारे में लिखना। अब समाप्त करता हूँ। अभी ''याहू'' के चैटरूम में मेरा एक अपाइटमेंट है। मेरे कई ई–मेल पतों में एक नीचे दिया जा रहा है। उसका इस्तेमाल करें तो समय बच जाएगा। ओ.के?

विद लव

विनोद

पत्र पढ़कर आगे बढ़ी तो स्मिता की आँखें कर्कश होती गई। परिवार में उसके विरुद्ध ज्यादातर व्यवहार में लाया गया शब्द था घमंडी या 'अहंकारी'। परिवार के बाहर के किसी अपरिचित व्यक्ति ने अकस्मात् ही वह शब्द अपनी ओर से छेड़ा तो वह क्षुब्ध हो उठी। उसे लगा कि केवल नाम के लिए ही वह सुंदर है, वह तो कोई मानसिक रोगी है। नहीं तो अभी तक जिस लड़की को वह न तो जानता है और नहीं देखा है, उसके लिए लिखे पहले पत्र में ऐसी बातें कैसे लिख पाता? ईंट का जवाब पत्थर से देने की उसने ठान ली। उसके ई–मेल पते को निर्मम ढंग से नजरंदाज करते हुए एक कागज पर उसने लिखा–

श्री विनोद कृष्णा जी,

इस दरिद्रनारायणी का प्रणाम स्वीकारें। जिस प्रकार मलयालम आपके वश में नहीं, उसी प्रकार अंग्रेजी मेरे भी वश में नहीं आती। आपको की–बोर्ड प्रिय है तो मेरे लिए हस्तलिपि ही प्रिय है। मेरे कई ई–मेल पते तो नहीं हैं, केवल एक ही है। वह इस पत्र में दिया गया है। आप चाहे तो पत्राचार कर सकते हैं। किंतु हस्तलिखित पत्रोत्तर सादा डाक में ही आएगा। पता है न? अहंकारी लोग हठी हुआ करते हैं।

जब मैंने अपना एकमात्र ई–मेल आईडी लेने की कोशिश की तभी मैं समझ गई कि ऐसे मामले में मैं कितनी पिछड़ी हूँ। वहाँ मेरा नाम स्मिता 1038 है। 1037 स्मिताएँ मेरे आगे हैं। अपने नाम के लिए भी 1037 व्यक्तियों के पीछे खड़ी होने को विवश मेरा ईगो है –– यह बता रहा है कोई व्यक्ति जिससे न तो मेरा परिचय है और जिसने न मुझे देखा है। यह भी क्या बात!

मुझे इसका पता नहीं था कि लड़कियों को पहले पत्र में ही स्वयं अपना वर्णन नहीं करना चाहिए। ''दुनियाभर में मित्र नहीं है। अतः उसको कानूनों की जानकारी

नहीं। मेरे मित्र तो हैं किंतु उंगलियों में गिनने लायक। वे कौन–कौन हैं तथा कहाँ–कहाँ हैं, इसकी भलीभाँति जानकारी मुझे है। हम दोनों के बीच यह फर्क तो है ही।

आपने कहा कि मेरे पत्र में अहंकार छलकता है। यह भी सूचित किया है कि खुद का वर्णन पसंद नहीं। किंतु आपके विज्ञापन के शब्द आपको याद है क्या? सुंदर, अविवाहित, स्नातकोत्तर उपाधिधारी, एकाकी – क्या यह स्वयं का वर्णन नहीं है?

एक ''शुद्ध सौहार्द'' के लिए अंतिम को छोड़कर शेष सारे विशेषण अनावश्यक हैं न? 'दुनिया भर में फ्रेंड्स', 'हाथ भर धन', '39 वर्ष की आयु में आराम की जिंदगी', फिर सुख–आराम से बिताने के लिए ही जिंदगी है –– ऐसा दर्शन भी! क्या ये सब ईगो नहीं हैं? फिर भी आश्चर्य की बात है कि आप की सोच में 'दरिद्र नारायणी' का प्रयोग आया है।

मित्र, यह मित्रता दीर्घकाल तक जारी रहेगी––इसपर मेरा कोई भरोसा नहीं। आपके जैसे हाथ भर पैसे रखकर जिंदगी ऐशो–आराम से जी लेनेवाले ही इस देश के शाप हैं। तुम कभी भी स्मिता जैसी एक लड़की को समझ नहीं पाओगे। क्लर्क का काम तथा घर से दूर पेइंग गेस्ट के रूप में रहना सब मेरी अस्मिता की घोषणा है। दहेज के पीछे बहकर किसी पुरुष के शयनकक्ष में उसके बच्चों को जन्म देना स्त्रीत्व नहीं है––यही मेरा विचार है। मुँह में चांदी के चम्मच के बदले कंप्यूटर लेकर जन्म लेने वाले आपकी समझ में ये बातें नहीं आएँगी। एक ब्लैक एंड व्हाइट टी.वी. के लिए तीन लोगों के साथ मुठभेड़ करने वाली मुझे उन गरीबों का पता अवश्य होगा जिन्हें इसका पता ही नहीं होगा कि टी.वी. किस चिड़िया का नाम है। 'चैटरूम' में शब्दहीन और शरीरहीन लोगों के साथ संवाद में लगे आप मज्जा और मांस वाले किसी को कैसे समझ पाओगे? ज्यादा लिखने का मन नहीं। क्षमा करें।

सस्नेह

स्मिता

पत्र पोस्ट करके पहले आई बस में चढ़कर स्मिता घर की ओर गई। शादी की बातें करने वाली माँ से गुस्सा किया। पिताजी से केंद्र की राजनीतिक गतिविधियों की चर्चा की। पहले कभी 'रैग' की गई लड़की अब पीछे पड़ रही है – इस बात पर छोटे भाई की हँसी उड़ाई। सोमवार होने पर भी कार्यालय न जाने पर उससे माँ ने ''क्या छुट्टी पर है?'' पूछा तो फिर एक बार माँ से क्रुद्ध हो उठी। नारियल के पेड़ों के अहाते से छह फुट लंबे 70 किलो वज़न वाले एक जवान को मन में वहन करके हर पल उसे शाप देती हुई वह चक्कर काटने लगी। प्रज्वलित अग्नि का जैसा भाव था उसका। मंगलवार को वह घर से शहर के लिए निकली। सुबह–सुबह कैफे की ओर उसे आते देख मैनेजर को आश्चर्य हुआ तो भी उसने कुछ नहीं पूछा।

उसके इन बॉक्स में एक संदेश था। एक अंग्रेजी पत्र।

डियर स्मिता,

घोंघा–डाक में आए पत्र को मिले आधा घंटा ही हुआ है। कैसी स्त्री हो तुम! पहले पत्र से मैं केवल तुम्हारे ईगो की ही पहचान कर पाया था। इस पत्र से ईर्ष्या रूपी हरी आँखोंवाले भूत का भी पता चला। तुम भूताविष्टा हो। जिसने तुम्हारे प्रति कोई कसूर नहीं किया है ऐसा कोई दूर बैठकर इंटरनेट, किताब और संगीत का आस्वादन करके जीता है तो उसके प्रति गुस्सा करने की क्या बात है? साहित्य का अध्ययन करके फिर फाइलों में जिंदगी बिताने को लाचार होने की परेशानी है न? बस, मैं इतनी सलाह तो दूँ कि जिंदगी ने मेरे जैसे कतिपय व्यक्तियों के प्रति जो सद्भाव दिखाया है उनके प्रति ईर्ष्यालु होने से कोई फायदा नहीं है। एक बात समझ लो। जिंदगी जो भी प्रदान करती है, उसका दाम जिंदगी अवश्य वसूल करेगी।

स्मिता 1038 नहीं, 10038 बनने लायक है। इतना पीछे खड़े होने की योग्यता और बुद्धि ही तुम्हारी है। नहीं तो बताओ। यदि मैं नेट में सर्फ करना छोड़ दूँ तो क्या यह देश बचेगा? तुमने लिखी 'अस्मिता की घोषणा' की बात। पहले समझ लो कि अस्मिता के माने क्या है? उसके बाद ही घोषणा कर लेना। उस विज्ञापन के जवाब देने वाले सभी से मैंने मैत्री स्थापित की है। केवल तुमने मुझे पीड़ा दी है। तुम एक क्रूर 'सैडिस्ट' हो। मांस और मज्जा अपने पास ही रख लो। एक बात में मैं तुम्हारा साथ देता हूँ। ऐसा एक रिश्ता ज्यादा समय तक जारी नहीं रहेगा। तुम्हारी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

सस्नेह,

विनोद

(चाहो तो तुम मुझे विनु संबोधित कर सकती हो।)

पत्र का प्रिंटआउट लेकर कैफे से बाहर आई स्मिता बेहद परेशान थी। सुबह सुबह ही घर पहुँच गई। उसे देख घर की मालकिन को आश्चर्य हुआ। सिरदर्द, आकस्मिक अवकाश–– यों कहकर वह कमरे की ओर गई। उसे एक पत्र लिखना है अथवा मन में लिखित एक पत्र की नकल करना है। उसने लिखा––

प्रिय मित्र

बेशुमार विवशताओं और विह्वलताओं का बोझ ढोनेवाले एक मन की मालिक हूँ मैं। 'एकाकी' शब्द मेरे लिए मात्र एक काल्पनिक पद नहीं। इसलिए बेचैनी को मोल लेने की लाचारी मेरी नहीं हैं। स्वच्छ जल की भाँति जिस मैत्री को पाने की मेरी आशा थी, वह शुरू–शुरू में ही नष्ट हो गई। जिंदगी हमेशा ही मेरे लिए ऐसी ही रही है। कोई सुविधा नहीं, न सही, कोई सहानुभूति या दया तक नहीं देती। किसी भी दृष्टि से सामंजस्य न रह जाने की वजह से हमारी मैत्री हम यहीं समाप्त करेंगे। तमाम

दुनिया को 'चैट रूम' के रूप में देखनेवाले आप के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। दुनिया के अंत तक गुड बाई।

स्मिता

पत्र पोस्ट करके स्मिता ने अपने मन से उसे बाहर निकालने तथा चोट में मरहम लगाने का यज्ञ शुरू किया। इंटरनेट कैफे जाना उसने पूर्ण रूप से छोड़ दिया। कार्यालय के महिला क्लब के पाककला में भर्ती होकर उसने फ्राइड राइस और चिली चिकन बनाना सीख लिया। टी.वी. में जो केवल समाचार और बौद्धिक कार्यक्रम मात्र देखा करती थी, वह फूहड़ परंपराएँ देखकर कथापात्रों के भविष्य की चर्चा करने लगी। फिर भी मन काबू में नहीं रहा तो उसने 'आर्ट ऑफ लिविंग बेसिक कोर्स' के लिए जाने का निर्णय लिया। वह निर्णय लेकर जिस दिन उसने अपना नाम दर्ज किया, उसी दिन विकृत हस्तलिपि में पता लिखा वह पत्र उसकी खोज में आया।

डियर स्मिता,

फिलहाल ईमेल चेक नहीं करती क्या? मेरे पत्रों से तुम्हारा इनबॉक्स भर गया होगा। दुनिया के अंत तक की विदा माँगी तो भी मैं लिखता रहा। क्योंकि मैं तुम्हें भूल नहीं पाता। मुझे दुःखी बनाने वाली एकमात्र स्त्री तुम हो। मेरे हर पत्र के लिए तुम्हारे मौन की प्रतिक्रिया मिली तो जान गया कि मेरे शब्द मेरी ओर लौट आए हैं। बाद में मुझे लगा कि मेरे प्रति क्रोध के कारण तुम ई–मेल नहीं देखती होगी। इसलिए मैं तुम्हारे घोंघा–डाक की ओर आ रहा हूँ।

जिस मैत्री को जारी करने की इच्छा नहीं है, उस के लिए मैं तुम्हें मजबूर नहीं करूँगा। किंतु तुम एक बार फिर कंप्यूटर के नजदीक आ जाओ। www.vinodkrishna.com वेब साइट देख लेना। मेरे द्वारा डिजाइन किया गया मेरा वेबसाइट है। उसके बाद विदा लेकर चली जाना। आओगी नहीं क्या?

सस्नेह,

विनोद

स्मिता ने निर्णय लिया कि वह उसकी या उससे संबंधित किसी की वेबसाइट पर नहीं जाएगी। कार्यालय से निकलने पर शाम को आर्ट ऑफ लिविंग के लिए जाना है। सोचा कि यदि मन नियंत्रण में आएगा, तो सब कुछ ठीक हो जाएगा।

किंतु, दूसरे दिन शाम को आर्ट ऑफ लिविंग कोर्स के लिए निकली स्मिता इंटरनेट कैफे में ही पहुँच गई। अपने को चकित करते हुए स्मिता ने टाइप किया www.vinodkrishna.com

पंचवाद्य घोष के साथ वेबसाइट प्रकट हुआ। इंद्रधनुष के सातों रंग विशिष्ट अनुपात में फैलकर धीरे–धीरे ओझल हो गए। बारिश के ताल लय के साथ स्क्रीन में विनोद का चेहरा प्रकट हुआ। गेहुँए रंग के चेहरे पर दृढ़ता और कर्कशता से युक्त

पुरुषछवि का दर्शन स्मिता ने किया। पहले पहल उसका ध्यान आकृष्ट कर लिया विनोद के तृष्णा जगानेवाले होंठों ने। उसके जैसे विशिष्ट होंठ उसने और किसी के नहीं देखे थे। विनोद की आँखों में असाधारण तीखापन भरा था। उसकी निगाह के सामने स्मिता एकदम परेशान हो उठी। उसने खुद से पूछा हे भगवान! यह ..... क्या हो रहा है? ए.सी. कमरे में उसे पसीना आ गया। घुँघुराले बाल और फ्रेंच दाढ़ीवाली उसकी छवि में स्मिता ने कामपिपासु यवनदेव को देखा।

कर्सर को 'जीवनी' वाली खिड़की पर ले आकर उसने क्लिक किया। खिड़की खुली–

जन्म – 17.01.1961

शिक्षा –

1. एस.एस.एल.सी., पुल्लुविला स्कूल, फर्स्ट क्लास
2. प्री.डिग्री – सरकारी साइंस कॉलेज, फर्स्ट क्लास, चतुर्थ रैंक
3. बी.टेक – इंजीनियरिंग कॉलेज, फर्स्ट क्लास, सेकेंड रैंक
4. एम.टेक – आई.आई.टी, कानपुर, फर्स्ट क्लास, फर्स्ट रैंक
5. शोध – क्याल टेक्स, कैलिफोर्निया (प्रोफेसर के साथ के मतभेद के कारण पूरा नहीं किया)।

नीचे की ओर गए बगैर पहले पृष्ठ की ओर लौट आकर स्मिता फिर विनोद की आँखों में उलझ गई। प्रोफेसर से भी मुठभेड़ करने वाला अहंकार है, है न? उसने पूछा –– मस्तिष्क है, मान लिया किंतु हृदय? वह भी चाहिए न? अपने स्वर को मृदुल कोमल होता हुआ पाकर स्मिता को आश्चर्य हुआ।

'जीवनी', 'शोध परिणाम', 'अब जो करता है', 'एलबम', 'संदर्शक डायरी', 'संपर्क करें' ये छह खिड़कियाँ स्मिता के सामने आईं। उसने 'संदर्शक डायरी' खोली। दुनिया के कोने–कोने से अनगिनत व्यक्तियों ने वेबसाइट का संदर्शन कर अभिनंदन दर्ज किए हैं। घूम–घाम कर पुनः वह पहले पृष्ठ पर आई। अब किस खिड़की को खोलूँ–यह सोचकर वह 'एलबम' की ओर मुड़ी।

एक लाल रंग का चेक शर्ट पहने हुए सुंदर विनोद कृष्णा ने कंप्यूटर के सम्मुख एक आकर्षणीय 'पोज' में बैठकर उंगलियाँ की–बोर्ड पर रखकर गला मोड़कर उसकी ओर देखा। होंठों के बीच से उसके दांतों के कोर मुस्कान–मुद्रा में प्रकट हुए। उसकी आँखों की शिकारी निगाह ने उसे फिर से परेशान किया। उंगली से उसने उस निगाह को छिपा लिया तो भी उंगली संकोच के साथ पीछे हट गई।

शनैः शनैः उसके सामने अगली तस्वीर डाउनलोड होकर आई।

जलप्रपात की तस्वीर लगाई दीवार के सामने बैठकर विनोद पुस्तक पढ़ रहा है– बैठा है .....

बैठा है?

अपनी आँखों को विश्वास में न लेकर स्मिता ने एक बार और देखा.... हाँ..... विनोद कृष्णा एक बड़े से 'व्हीलचेयर' पर बैठे हुए हैं!

एकाएक चौंककर पीछे की ओर हटी स्मिता 'जीवनी' वाली खिड़की की ओर बढ़ गई। चौंक अभी नहीं हटी कि उसने पढ़ा...

विशेष : 1997 में न्यूयॉर्क में जो मोटर दुर्घटना हुई उसमें दोनों पैर कमर के नीचे से विनष्ट हो गए।

परिवार– नहीं

शौक– संगीत, वाचन.....।

नहीं, अब स्मिता के पास जानने के लिए और कुछ भी नहीं रहा। वेबसाइट के जाल की कड़ियाँ सब घेरकर अपने को पूरी तरह से दबाने के पहले, उसे बाहर कूदकर बच जाना है। उसकी काँपती उंगलियों के नीचे माउस यों ही क्लिक ध्वनि निकाल रहा है किंतु दृश्य मिटता नहीं है। बेहद परेशान हुई स्मिता की ओर अपनी तीखी निगाहें गड़ाकर विनोद कृष्णा 'व्हील चेयर' पर यों ही इंतजार में बैठे रहे।

❑❑❑

एक लकीर
पृथ्वी के सारे अक्षरों से होती हुई
जहाँ
सौर–मंडल के पास
खो जाती है
वहाँ
मैं खड़ा हूँ।

–केदारनाथ सिंह

हर ओर हताश–निराश



कागो मादो
युवा रचनाकार, अरुणाचल प्रदेश

हर ओर हताश–निराश
दुख से भरा
पथ से भ्रमित आज जन!
मेहनत करने वाले
मासूम, सदाचारी, परोपकारी
वे लोग,
आज उनकी हिम्मत, विनम्रता, संवेदना
और सत्य की नींव डगमगा रही।

निर्दोष महिलाएँ और आमजन
अनजानी भीड़ में
प्रतिस्पर्धा की होड़ में
अपने आप को तलाशते हुए
कई बार हालातों से समझौता करते हुए
निर्दयी, निर्मम, दिशाहीनता का हो रहे शिकार।

हर तरफ दिख रहे हैं –
क्षुद्र सोच रखने वालों के दल–बल,
सत्ता–शासन के खाली शब्दों से
श्रमिक, सर्वहारा व दमित वर्गों का समूह, पीड़ितों का अब हो चुका है मोहभंग।
काश!
भीड़ में शामिल लोग
बाह्याडंबर की जिंदगी जीने वाले लोग
सर्वमंगल की संभावना को समझते,
खुद के लिए न सही,

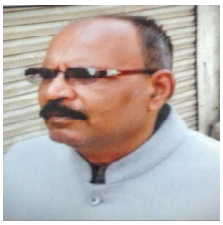
लेकिन आने वाले पीढ़ियों के लिए
निर्मलता का भाव बचा पाते!
और फिर,
जन मन गण को निद्रा से जागना होगा
हर वह स्वार्थ से जुड़ा काम त्यागना होगा
तब वह दिन भी आएगा जरूर
जब भयहीन, निष्पक्ष, मजबूत समाज खड़ा होगा।
और उस दिन
हत्या, बलात्कार और महिलाओं की नग्न परेड नहीं होगी।

❑❑❑

कल से ज्यादा लोग पास मँडराते हैं
ज़रूरत से ज्यादा आस–पास, जरूरत से ज्यादा नीरोग
शक से कि व्यर्थ है जो मैं कर रहा हूँ
क्योंकि जो कह रहा हूँ उसमें अर्थ है।

–रघुवीर सहाय

सारनाथ



नरेंद्र पुंडरीक
वरिष्ठ लोकधर्मी कवि,
'माटी पत्रिका' के प्रधान संपादक

मैं गया था बनारस
और ठहर गया सारनाथ
सारनाथ अच्छा लग रहा था
सारनाथ में लोग अपने को
अपनी आँखों से देख रहे थे,

चंदन–फंदन कुछ नहीं था
चोटी–पोटी का भी झंझट नहीं था
न शिव था
न अशिव
मैं, मैं जैसा भी कुछ नहीं था
न यहाँ फूल का कुछ था
न माला का
न दूध पानी
न पानी–दूध जैसा कुछ था
सिर्फ आँखें थीं
देखने को उदग्र, उत्सुक
और मन था महसूस करता हुआ,

चउंतरिया
चउंतरिया
चउंतरिया
बिल्कुल साफ सुथरी
जैसे अभी–अभी
उठ कर गए हो जिज्ञासु
सो ज्ञान के कण चमक रहे थे

अन्न के दाने की तरह,

मैं अकेला नही था
मेरे साथ बुद्ध का स्वप्न था
जो सारी रात साथ में ठहरा रहा
तिब्बती गेस्ट हाउस के कमरे में,

मेरे साथ यह अक्सर होता है कि
मै बनारस जाता हूँ
और पहुँच जाता हूँ सारनाथ
बनारस हमेशा
सारनाथ से
पीछे छूट जाता है ।

❑❑❑

बहुतेरों का सिद्धांत यह भी है कि दशा किसकी होगी, जीव तो कोई पदार्थ ही नहीं है। घड़ी के जब तक सब पुरजे दुरुस्त हैं, और ठीक–ठाक लगे हुए हैं तभी तक उसमें खट–खट, टन–टन आवाज आ रही हैं, जहाँ उसके पुरजों का लगाव बिगड़ा; वहीं न उसकी गति है न शब्द।

–प्रताप नारायण मिश्र

मेरी कविताएँ आजकल



वीरभद्र कार्कीढोली
सुप्रसिद्ध कवि, गंगटोक (सिक्किम)

वास्तव में हम कविता में ही जीते थे
कविता में रोते और कविता में मुस्काते थे।
वही जगह, जहाँ
कविता खोते थे, ढूँढ़ते थे
कविता लिखते और फाड़ते थे।

कितनी बार टूटी है विश्वास की सड़क।
जहाँ सदा मैं हिमाल नाम जप कर
चला करता था

मेरी कविताएँ आजकल
मुट्ठी भर आनंद, खुशियाँ माँगने लगी हैं
मुझ से, फिर मुझ से।
अंजुरी भर विश्वास, आत्मीयता माँगने लगी हैं
मुझ से।

इस वक्त उजाला चाहिए
वह उजाला जो तुम्हारे पास है
उजाला माँगने लगी हैं
अचानक मुझ से।

कैसे स्पर्श कर चली जाती थीं कविताएँ।
कितने आत्मविभोर होते थे।
तुम प्रतीक थे क्षितिज उस वक्त,
मै प्रतिभा!

निराकार, तुम जीवन थे। मैं प्राण,
तुम आकृति थे। मैं आकृष्ट

किस तरह विलुप्त हुआ वह समय
कवितामय आत्मीयता
कितनी दूरी है कविता और आदमी के बीच

फिर भी
कविता वैसी नहीं है, आजकल
कविता स्पर्श ही नहीं कर पाती
कविता पहाड़ी मंद समीर की तरह बहती हो
ऐसा नहीं लगता
कविता को तराई की लू की तरह बहती
अनुभव, अनुभूत करता हूँ, आजकल

कविता का मन, प्राण मानों पत्थर हो गया है
क्योंकि कविता को हिम सदृश पिघलते
वर्षों हुए नहीं देखा।
संवेदनहीन उर्फ हिपोक्रेसी।
कविता तो मेरे अंदर, अंदर आत्महत्या करते हुए
अचानक मरना चाहती है, आजकल

कविता को आनंद न दे सका, मैं
उजाला भी न दे सका
आजकल कविताएँ
मेरे दिल को टटोलकर
मुझसे विष माँग रही हैं।
कविताएँ मेरे अंदर, अंदर आत्महत्या का प्रयास
कर रही हैं।

कितनी–कितनी आत्मीय कविताएँ
आँखें चुराकर भागने की
ताक में है आजकल मुझ से
हाँ, कविताएँ मुझे स्पर्श नहीं कर पा रहीं।

हम कविता में ही जीते थे
कविता में रोते, मुस्काते थे,
कविता जप कर जीवन ढूँढते थे।।

❑❑❑

सोमवार की सुबह



सुशांत सुप्रिय
सुप्रसिद्ध कहानीकार कवि एवं अनुवादक

सोमवार की सुबह
खीझे हुए देवताओं को भी
निकलना पड़ता है
अपना आराम और
भोग–विलास तज कर

इस सुबह
दीवार–घड़ी भी घबरा कर
किसी बेलगाम घोड़े–सी
बेकाबू भागने लगती है

रविवार की रौनक के बाद
फूल और घास भी
उदास हो जाते हैं
इस सुबह

नाश्ते की प्लेट
एक गंभीर मुद्रा
ओढ़ लेती है इस सुबह
घर की हड़बड़ी देख कर

आवारगी छोड़ी कर बँधना पड़ता है
हर पहिए को इस सुबह
एक घुटन भरे अनुशासन में
शहर की भीड़–भरी सड़कों पर

कुत्ता भी डरता है
इस सुबह
सड़क पार करने से
बदहवास भागते वाहनों को देखकर

धरती की जकड़ी हुई सुबह होती है यह
आकाश के खुले सप्ताहांत के बाद

इस सुबह व्यस्तता
हमें दबोच लेती है गर्दन से
और हम छटपटाने लगते हैं
गहरे पानी में गिर गए चींटे–से असहाय

हम चाहते हैं अपने भीतर शिद्दत से
बस इतना जीवन कि
जूझ सकें हम एक लंबे सप्ताह की
शुष्कता के हर पल से।

❑❑❑

छिप–छिप अश्रु बहाने वालों, मोती व्यर्थ बहाने वालों
कुछ सपनों के मर जाने से, जीवन नहीं मरा करता है।

–गोपाल दास 'नीरज'

काही अनिवार्य प्रश्न



पी. विट्ठल
सुप्रसिद्ध मराठी कवि

ही प्रदीर्घ शांतता
अशीच भिनत गेली देहात
तर आपल्या डोळ्यातल्या निष्पाप स्वप्नांचं
नेमकं काय होईल?

भ्रमंतीच्या नितळ गोष्टी
आपल्यातून वजा होत गेल्या
तर सहसंबंधाच्या सांस्कृतिक महाकाव्याचं
नेमकं काय होईल?

भेटीच्या साऱ्या साऱ्या रस्त्यावर
असेच बॅरिकेट्स उभे राहत गेले आणि
एकांताचं अरण्य अधिक व्यापक होत गेलं
तर या घनघोर आयुष्याचं
नेमकं काय होईल?

... आणि समजा आपलाही पाय पडलाच चुकून
मृत्यूच्या खड्ड्यात
तर आपणच निर्माण केलेल्या भाषेचं,
मुळाक्षरांचं
नेमकं काय होईल?

प्रेतांच्या ॲम्ब्युलन्स
अशाच धावत राहिल्या अहोरात्र
तर आपल्या संवेदनशीलतेचं, अश्रूंचं
नेमकं काय होईल?

ही विषाणूयुक्त हवा
अशीच पसरत गेली सर्वदूर

❑❑❑

आणि आपल्याला समुद्राच्या तळाशी
जाऊन बसताच आलं नाही
तर आपल्या श्वासाचं
नेमकं काय होईल?

नात्यांची निरपेक्ष पानं
अशीच गळत राहिली हळूहळू
तर आपण बांधलेल्या घराचं,
घरातल्या उदयोन्मुख जीवांचं
नेमकं काय होईल?

... आणि ही अस्वस्थता
अशीच वाढत गेली
तर कोणत्याही कवीचं
नि त्याने लिहिलेल्या कवितांचं
नेमकं काय होईल?

❑❑❑

हिंदी अनुवाद

कुछ अनिवार्य प्रश्न



प्रो.सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर'
निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली, निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

यह प्रदीर्घ शांतता
ऐसी ही घुल–मिलती गई संपूर्ण देह में
तो हमारी आँखों के निष्पाप सपनों का
न जाने क्या होगा?

घुमक्कड़ी की सौम्य बातें
हम में से यदि मायनस होती गईं
तो सहसंबंध के सांस्कृतिक महाकाव्य का
न जाने क्या होगा?

मिलन के सारे–सारे रास्तों पर
ऐसे ही बॅरिकेट्स खड़े होते गए और
एकांत का जंगल और अधिक व्यापक होता गया
तो इस घनघोर जिंदगी का
न जाने क्या होगा?

..... और यदि अपना ही कदम पड़े गलती से
मृत्यु के खड्डे में
तो हमारी ही निर्माण की हुई भाषा के,
आद्यक्षरों का
न जाने क्या होगा?

मृतदेह की ॲम्बुलन्स
ऐसे ही दौड़ती रही रातभर
तो अपनी संवेदनशीलता का, आँसुओं का
न जाने क्या होगा?

यह विषाणु से ग्रस्त हवा
ऐसे ही फैलती गई दूरतक

और यदि हमें समंदर की गहराई में
जा कर बैठना संभव ही नहीं हुआ
तो अपनी साँसों का
न जाने क्या होगा?

रिश्तों के निरपेक्ष पृष्ठ
ऐसे ही गलते रहे धीरे–धीरे
तो हमारे द्वारा निर्माण किए हुए भवनों का,
घर में स्थित उदयोन्मुख जीवों का
न जाने क्या होगा?

और यह बेचैनी
ऐसे ही बढ़ती गई
तो किसी भी कवि का
और उसके द्वारा लिखी गईं कविताओं का
न जाने क्या होगा?

❑❑❑

मुक्ति



संगीता बर्वे
प्रसिद्ध मराठी लेखिका साहित्य अकादमी
बाल साहित्य पुरस्कार से सम्मानित

पिंजरयातल्या पोपटाप्रमाणे
मी सुद्धा पिंजरयात होते
तेव्हा एक बरं होतं,
दाणा, पाणी सारं काही
वेळच्या वेळी मिळत होतं

पिंजरयाचं दार उघडून
बाहेर जायचं ठरवलं
काहींनी कौतुक केलं
काहींनी नाक मुरडलं

नाक मुरडणारे म्हणाले,
बघतोच मी जातेच कशी?
कौतुक करणारे म्हणाले,
जाऊ देत तिला;
तिचे पंख आपल्याचपाशी !

❑❑❑

हिंदी अनुवाद

मुक्ति



डॉ. सुलभा कोरे
कवयित्री, अनुवाद, संपादक, स्तंभ लेखिका, संप्रति–यूनियन बैंक ऑफ इंडिया में सेवारत।

पिंजड़े में बंद तोते की तरह
मैं भी पिंजड़े में बंद थी।
तब एक बात अच्छी थी
दाना, पानी सब कुछ
समय पर मिल जाता था।

पिंजड़े का दरवाजा खोलकर
जब बाहर जाने की सोची
कुछ लोगों ने सराहना की
कुछ की भौहें तन गईं

जिनकी भौहें तनी थीं,
उन्होंने कहा,
'देखते हैं, कैसे बाहर जाती है!'
सराहना करने वालों ने कहा,
'जाने दो उसे...
उसके पर तो हमारे ही पास हैं।

❑❑❑

बाजार



फुकनचंद्र बसुमतारी
लेखक, असिस्टेंट प्रोफेसर बोडो,
आसाम, लगभग 11 पुस्तकें प्रकाशित,
बोडो क्षेत्र में कई पुरस्कारों से सम्मानित

अदा बेयाव फालांगि जासावदों
दो–दोख्लानि
लांगा फास्रानि
मैगं–थाइगंनि
ना साम'नि
बेन्दों–बेनलानि
बायदि बायदि लाय–लथरनि
हाबिजाबि मुवानि
देलाइग्रा मुवानि
लाइमोन जौमोननि
मिजिं मुसुंनि।

दा बेयाव जेबो जेबो फानजायो।
खोमसि फानजायो
साया फानजायो
सोरां फानजायो
उन्दुनाय फानजायो
मिनिनाय फानजायो
गाबनाय फानजायो

दाहा फानजायो
सोंखारिनाय फानजायो
सोदोब फानजायो
रिंसारथि फानजायो
हाबिजाबि जेबो जेबो फानजायो।

दा बेयाव फोलानायबो फानजायो
बेसेन गोनांसिन थै–मोदोमनिखुइ।
थैजों–दैजों
खुद्रिनाय अननायजों
गोरोब गोरोब बाबस्रिस्रि जायो
फैलासेम जायो लोमसावनाय गोरबो।

दा बेयाव जेबो जेबो फानजायो
सिमांबो फानजायो
मोखांसे मिनिनायबो फानजायो

गोरबोसे गोरबोबो फानजायो
फानजारिनि दाउथुबादि फानजायो
सुथिना फानजायो
फानजा फानजा फानब्रेजायो
इसिं–अखं जिउनि अखं।

दा बेयाव जिउबो फानजायो
जिउनि थाखाय जिउबो फानजायो।

❑❑❑

हिंदी अनुवाद

बाजार



डॉ. स्वर्णप्रभा चैनारी
लेखिका, कई पुस्तकें प्रकाशित, कई संपादन कार्य, साहित्य अकादमी अनुवाद पुरस्कार से सम्मानित

अब यहाँ बाजार चला है
बर्तनों का
प्रसाधनों का
शाक सब्जी का
मछली–घोंघे का
अलग–अलग घरेलू सामानों का
ऐसी वैसी चीजों का
विलासी चीजों का
साज–शृंगार का
युवक–युवतियों का
वासना और आकांक्षाओं का।

यहाँ अब सब बिकते हैं
अंधेरा बिकता है
साया बिकता है
रोशनी बिकती है
नींद बिकती है
मुस्कुराहट बिकती है
रोना बिकता है
शोक बिकता है
समालोचना बिकती है
शब्द बिकते हैं
ध्वनि बिकती है
यहाँ सबकुछ बिकता है।

अब यहाँ झूठ भी बिकता है
जो रक्त और शरीर से भी महँगा है।
रक्त और पानी
नाराजगी और प्यार मिलकर
होते हैं नमकीन।
ज्वार उठते हैं मन में।

अब यहाँ सब कुछ बिकता है
ख्वाब बिकते हैं
मुठ्टी–भर हँसी भी बिकती है

भरा हुआ दिल बिकता है
पिंजर में बंद फाख्ता जैसी
समझ बिकती है
अंदर बाहर, बाहर अंदर
सब कुछ बिकता है।

अब यहाँ जिंदगी बिकती है
जिंदगी के लिए जिंदगी भी बिकती है।

❑❑❑

पुस्तक समीक्षा

दलित स्त्री केंद्रित कहानियाँ : एक मूल्यांकन



डॉ. पूनम तुषामड़
लेखिका, अनुवाद कार्य संप्रति अध्यापन

इस बार विश्व पुस्तक मेले में एक ही बार जाना हुआ। किंतु पुस्तक मेले में रिलीज होने वाली बहुत सी पुस्तकें मुझ तक पहुँच ही गईं। इन पुस्तकों में से एक पुस्तक वाणी प्रकाशन द्वारा प्रकाशित ''दलित स्त्री केंद्रित कहानियाँ'' प्राप्त हुई। हिंदी साहित्य में कहानी लेखन, स्त्री केंद्रित कहानी लेखन अथवा स्त्री लेखन की एक दीर्घ परंपरा रही है जबकि हिंदी दलित साहित्य में कहानी लेखन, दलित स्त्री केंद्रित कहानी लेखन और दलित स्त्री लेखन अभी अपनी शैशवावस्था से बाल्यकाल की ओर अग्रसर माना जा सकता है जिसके पीछे की चुनौतियों और लंबी संघर्ष यात्राओं को विस्मृत कर आगे नहीं बढ़ा जा सकता जिसका बहुत बड़ा हिस्सा दलित स्त्रियाँ रही हैं। इस दृष्टि से भी 'दलित स्त्री' केंद्रित इस संग्रह ने मेरा ध्यान खींचा।

इस पुस्तक का संपादन डॉ. रजत रानी मीनू तथा सह संपादन डॉ वंदना ने किया है। पुस्तक में क्रमवार स्त्री एवं पुरुष बाईस लेखकों की कहानियाँ शामिल की गई हैं जिनके नाम भी कवर पेज पर ही अंकित हैं। संभवतः कहानियों का क्रम लेखकीय वरिष्ठता के आधार पर तय किया है। पेपर बैक में छपी लगभग तीन सौ पृष्ठ की यह पुस्तक अपने आकर्षक कवर पेज और विशिष्ट शीर्षक के कारण ही शायद पाठकों का ध्यान खींचने में सफल रही हो।

चूंकि पुस्तक 'दलित स्त्री' को केंद्र में रखती है, इस दृष्टि से यह अपेक्षित है कि दलित स्त्री के न केवल पारिवारिक बल्कि सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक संघर्षों और चुनौतियों को रेखांकित करने वाली कहानियों को इस संग्रह में जगह दी जाती। खैर ..! पुस्तक पढ़ने के क्रम में सर्वप्रथम पुस्तक की भूमिका को पढ़ना शुरू किया जिसे एक रीडिंग में ही समाप्त कर दिया।

दलित स्त्री केंद्रित कहानियाँ (कहानी संकलन), सं.– रजत रानी मीनू, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष–2023, पृष्ठ–22, मूल्य–399/– (पेपरबैक)

भूमिका का शीर्षक 'एक दलित स्त्री की कलम से' थोड़ा अटपटा लगा। संभवतः इस का कारण अमूमन संपादकीय को 'संपादक की कलम से' या फिर किसी प्रासंगिक घटना को आधार बनाते हुए शीर्षक रखना या होने की अपेक्षा होना भी हो सकता है। भूमिका का बहुत बड़ा हिस्सा डॉ. रजत रानी मीनू जी के रचनात्मक निजी अनुभवों का रहा। इसके पश्चात् एक–एक कर सभी कहानियों का संक्षिप्त विवरण लेखिका अथवा संपादक अपनी भूमिका में करती है जिसके पश्चात् आपको संग्रह की कहानियों का लब्बोलुआब समझ आ जाता है। अब यह निर्णय पाठक का है कि वह संग्रह की सभी कहानियों को पढ़े या फिर संपादक ने जिन कहानियों को भूमिका में दूसरों की अपेक्षा ज्यादा तरजीह दी है, उनका पाठ करे।

सह संपादक के रूप में डॉ. वंदना द्वारा लिखित 'बात अभी बाकी है' ने दलित स्त्री के सवालों और दलित स्त्री को लेकर उठने वाले सवालों को अपने लेख में अधिक प्रभावशाली एवं अर्थपूर्ण तरीके से अभिव्यक्त किया है। साथ ही डॉ. वंदना ने संग्रह केंद्रित विषय की गंभीरता को भी बखूबी रेखांकित किया तथा संपादकीय में होने वाली साहित्यिक चूक की भरपाई भी कर दी है। अपने वक्तव्य में उक्त कहानी–संग्रह की प्रशंसा करते हुए वे कहती हैं 'प्रस्तुत स्त्री केंद्रित कहानी संकलन में दलित स्त्री केंद्रित मुद्दों और समाज में उनके सरोकार को समझा जा सकता है।' (पृष्ठ सं. 21)

संग्रह की सभी कहानियों का पाठ करने के पश्चात् एक बात से तो आश्वस्त हुआ जा सकता है कि अनुभव, संघर्ष एवं संवेदनशीलता की दृष्टि से दलित साहित्य अत्यंत समृद्ध साहित्य है। जहाँ तक इस संग्रह की कहानियों का प्रश्न है। कई कहानियाँ अपनी बुनावट, भाव, कला पक्ष, संवादशैली और कथ्य की दृष्टि से अच्छी कही जा सकती हैं। उदाहरणार्थ जय प्रकाश कर्दम जी की 'पगड़ी', प्रहलाद चंद दास कृत 'कजली', हरिराम मीणा कृत 'अमली', कैलाश वानखेड़े कृत 'महू', रजनी दिसोधिया कृत 'छोटी बहू' टेक चंद कृत 'एटीएम', पूर्ण सिंह जी कृत 'अरथी', वंदना कृत 'नालियाँ' तथा दीपा कृत 'जीत'। इन कहानियों में न केवल कहानी का भावपक्ष और कलापक्ष दिखता हैं बल्कि दलित रचनाकारों की पारंपरिक और जड़ मूल्य–मान्यताओं एवं पारंपरिक रूढ़ियों पर करारा प्रहार कर उन्हें ध्वस्त कर नवीन मानवीय मूल्यों की स्थापना का स्वप्न भी साकार होता दिखता है। उदाहरणस्वरूप जयप्रकाश कर्दम जी की कहानी 'पगड़ी' के इन संवादों को देखा जा सकता है जो दो पुरुषों के बीच एक स्त्री को सम्मान दिलाने के लिए चल रहा है– 'परिवार की मुखिया तो सरबतिया है वही सब कुछ करती है।'

एक आदमी कहता है ''बात तो सही है कि परिवार की मुखिया सरबतिया है पर स्त्री को तो नही बंधती पगड़ी। वह तो पुरुष को बंधती है।''

दूसरे ने अपनी राय व्यक्त की, 'समाज की यह परंपरा ही तो है कि पगड़ी स्त्री को नही बंधती। इस परंपरा को बदला क्यों नहीं जा सकता। परिवार का सारा बोझ

स्त्री उठाए, वही रात दिन हर काम में खटे। पुरुष केवल मूछों पर ताव दिए इधर–उधर मटरगश्ती करता घूमता फिरे।'' यह कहानी अत्यंत सरलता से स्त्री पुरुष समानता की वकालत करते हुए पुरानी परंपराओं और रूढ़ियों को बदलने की बात करती है।

इन कहानियों में अगली कहानी प्रहलाद चंद दास कृत 'कजली' है जिसके केंद्र में एक दलित आदिवासी स्त्री 'कजली' है जो बहुत कम उम्र में सामंतों के अन्याय और शोषण का शिकार होने के बावजूद हिम्मत नहीं हारती बल्कि अपने साहस और सूझबूझ से कानूनी तरीके से सामंतों की आधी जमीन पर अपना अधिकार करके उस जमीन पर गाँव वालों से ही खेती करवाती है और उससे प्राप्त फसल से गाँव की लड़कियों की शादी भी करवाती है ताकि गाँव के किसी व्यक्ति को कर्ज लेकर सामंतों के अधीन न होना पड़े। इस कहानी में कजली पूरे दलित समाज की नायिका बनकर सामने आती है। इसी शृंखला में अगली कहानी हरी राम मीना की 'अमली' है जो राजस्थान में प्रचलित एक लोककथा पर आधारित है जिसका ऐतिहासिक महत्व भी है। यह कहानी इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें किसी दलित महिला को नायकत्व प्रदान किया गया हैं। ''अमली नट समाज की एक हुनरमंद महिला हैं जिसकी रस्सी पर चलने की कला से प्रभावित होकर राजा ने उसे एक बार चुनौती दे दी। राजा ने कहा, ''तेरा बहुत नाम सुना है मैने। मेरे किले के सदर दरवाजे से एक कोस तक रस्सी पर चल कर अमली, तू बता दे तो मैं तीमनगढ़ का आधा राज्य तुझे दे दूँगा।''

अमली ने आत्मविश्वास के साथ हाँ कर दी यह कहते हुए कि ''राजा ने मेरी परीक्षा लेनी चाही है। मैं कैसे पीछे हट जाऊँगी'' अमली अड़ गई। बाँस के सहारे रस्सी पर चलने की कला में निपुण अमली राजा से शर्त जीत जाएगी, इसका विश्वास उसके कबीले वालों को भी था। किंतु कहानी में अमली के साथ हुए छल से सामंती धूर्तता की पोल खुल जाती है। जब रानी को लगता है कि अमली अपनी मंजिल के बहुत करीब है, वह शर्त जीत जाएगी और चुनौती जीतकर आधा राज्य जीत लेगी तो वह धोखे से रस्सी कटवा देती है जिससे अमली तेजी से नीचे गिरती है और उसकी मृत्यु हो जाती है। किंतु अमली हारकर भी जीत गई और इतिहास में नायिका के रूप अमर हो गई। यहाँ पर रानी की अमली के प्रति ईर्ष्या स्त्री–स्त्री के बीच की जातीय और वर्गीय असमानता को दर्शाती है।

अगली कहानी कैलाश वानखेड़े कृत 'महू' है जो शिक्षण संस्थानों में दलितों के साथ होने वाले जातिगत भेदभाव को दर्शाती हैं। कैलाश जी दलित साहित्य में आधुनिक भाव बोध के प्रतिष्ठित युवा रचनाकार हैं। 'महू' कहानी अपनी अंतर्वस्तु और पृष्ठभूमि के कारण ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की 'घुसपैठिए' कहानी के बहुत नजदीक दिखती है किंतु कैलाश जी की कहानी समकालीन परिदृश्य में तेजी से होने वाले उन

बदलावों को भी पकड़ती है जहाँ जातिगत भेद भाव व आरक्षण के नाम पर दलितों के साथ होने वाले शोषण उत्पीड़न के तरीके भी तेजी से बदल रहे हैं लेकिन दलितों के शोषण में कोई सकारात्मक बदलाव नहीं हो रहा। इस कहानी के युवा पात्र अंबेडकरवादी विचारों से प्रभावित नरेश और प्रज्ञा के संवादों से इसे भलीभाँति समझा जा सकता है।

उदाहरण 'नया जमाना'। 'रागिनी की बात का मतलब तो बाद में समझ में आया। सीधे–सीधे एस सी, एस टी, ओ बी सी शब्द नहीं बोल सकते, इसलिए नया शब्द ईजाद किया, शुडू।''

प्रताड़ना बंद नहीं होती है। कुछ शब्द बदल जाते हैं, कुछ तरीके चेंज कर लेते हैं पॉलिश हो गए नए बाजार वाले। मासूमियत से गला काटते हैं। नरेश ने प्रज्ञा से कहा।

प्रज्ञा ने कहा– रागिनी ने कहा था ''हायर मार्क्स मिलने के बाद भी मुझे केमिकल नहीं मिला और एक तू है लाडो, जिसे कम मार्क्स लाने पर भी मनचाही फैकल्टी मिल गई। शूडू तुम लोगों के कारण दो साल बर्बाद हो गए मेरे। हमारा हक छीनने वाली तेरा क्या करूँ।''

तब मैंने कहा था ''तुम्हारा हक?? सदियों से हमारे हक पर डाका डाला है तुमने। सदियों से सहते रहे हैं हम। अब हमें मौका मिला है तो पच नहीं पा रहा है।''

इन संवादों के आधार पर ये कहा जा सकता हैं कि आज का दलित युवा अपने पर हो रहे शोषण का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए तत्पर है, न कि उत्पीड़न से निराश होकर आत्महत्या जैसी घटनाओं को अंजाम देता है।

रजनी दिसोधिया कृत ''छोटी बहू'' एवं डॉ. टेकचंद कृत ''ए टी एम'' कहानियाँ ग्रामीण परिवेश में पढ़ी–लिखी दलित महिलाओं के साहस को दर्शाती हैं जो अपने हक के लिए भरी पंचायत में आवाज उठाती हैं तथा अपने पर लगे आरोपों का खंडन करते हुए अपना पक्ष मजबूती के साथ रखती हैं।

डॉ. पूर्ण सिंह की कहानी ''अर्थी'' को स्त्री पुरुष के प्रेम और समानता के संबंधों की सशक्त कहानी के रूप में देखा जा सकता है। यह कहानी न केवल पति–पत्नी के प्रेम और समर्पण की कहानी है बल्कि एक स्त्री द्वारा अपनी लालची संतानों को सबक सिखाने एवं पुरानी परंपराओं को तोड़कर नवीन मूल्यों की स्थापना की भी कहानी है। पूरन सिंह जी की इस कहानी को कथ्य, शिल्प, भाषा, संवाद एवं शैली के आधार पर इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानी कहा जा सकता है।

विषय–विविधता, नवीनता, भाषा–संवाद एवं संवेदनात्मक स्तर पर इन कहानियों को समकालीन दलित साहित्य के नवीन संदर्भों में सफल कहानियों के रूप में देखा जा सकता है।

इस संग्रह की जो कहानियाँ उपर्युक्त सूची में शामिल नहीं हैं। वे दलित स्त्री के मुद्दों को तो रेखांकित करती हैं किंतु ये कहानियाँ दलित स्त्री की गहन त्रासद स्थितियों का रेखांकन मात्र लगती हैं। अजय नावरिया कृत 'इज्जत' और रजत रानी मीनू कृत 'सरोगेट मदर', श्योराज सिंह बैचेन जी द्वारा कृत 'हाथ तो उग ही आते हैं' कथ्य की दृष्टि से अच्छी कहानियाँ कही जा सकती हैं किंतु इन कहानियों में अंत तक फैली गहन पीड़ा, विवशता, शोभ और संत्रास न केवल कहानी के पात्र को (जो कि दलित स्त्री है) बल्कि दलित साहित्य को भी नियतिवाद की ओर धकेलता प्रतीत होता है जहाँ से दलित साहित्य का जन्म हुआ है। जिन त्रासद स्थितियों से उबर कर दलित साहित्य प्रतिरोध एवं संघर्ष का साहित्य बना है जबकि साहित्य अथवा समाज में उपजे किसी भी विमर्श का उद्देश्य उस समुदाय या अस्मिता को नैतिक, सामाजिक और साहित्यिक बल प्रदान करना होता है।

एक ओर जहाँ हम दलित स्त्री विमर्श को केंद्र में रख कर दलित स्त्री के साथ गैर दलितों द्वारा किए जाने वाले अन्याय और उत्पीड़न का विरोध करते रहे हैं, वहीं पढ़े–लिखे दलित पुरुषों द्वारा अपनी पढ़ी–लिखी पत्नियों पर किए जाने वाले अन्याय को आधार बना कर कहानियाँ रच रहे हैं। डॉ. नामदेव की कहानी ''चरिता'' तथा सूरज बड़त्या की कहानी ''गुफाएँ'' इस प्रकार की कहानियाँ हैं जो स्त्री के लिए परिवार और समाज में सदियों से खींच दिए गए सीमित दायरे को तोड़ नहीं पाती, न ही स्त्री इससे मुक्त होती नजर आती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इन कहानियों में स्त्री समानता और स्वतंत्रता का अर्थ परिवारों का टूटना, स्वाभिमान के नाम पर संबंध विच्छेद करना भर ही है अथवा स्त्री स्वाभिमान और आत्मसम्मान की परिधि में आता है। तो क्या यह मान लिया जाए कि दलित साहित्य और दलित रचनाकार आज भी दलित स्त्री के मौजूदा अधिकारों और सवालों से अनभिज्ञ हैं। स्त्री पुरुष समानता का अर्थ आज भी वे अपने पारिवारिक अनुभवों के संकुचित दायरे में ही खोज रहे हैं। अथवा आज भी वे स्त्री स्वतंत्रता के पूर्ण पक्षधर नहीं हैं।

इस संग्रह की अन्य कुछ कहानियाँ कहानी कहलाने के मापदंडों पर ही खरी नहीं उतरतीं। उदाहरणस्वरूप कौशल पवार कृत 'और जिंदगी हार गई'। यह कथित कहानी दरअसल हरियाणा के 'मिर्चपुर कांड' पर आधारित एक रिपोर्ट भर है जिसमें कहानी तत्व का सिरे से अभाव है। इसके अतिरिक्त सुनीता देवी की ''उमा चली गई दिल्ली'' कहानी अपनी कथा वस्तु, संवादशैली एवं उद्देश्य की दृष्टि से हल्की कहानी है।

संग्रह की अन्य कहानियों में सूरजपाल चौहान जी की कहानी 'चोट', मोहनदास नैभिशराय जी की 'यात्रा', रजनी तिलक जी की ''बेस्ट ऑफ करवा चौथ'' तथा सुशीला टाकभोरे जी की ''कड़वा सच'' हैं जो दलित साहित्य के शुरुआती दौर की कहानियों के सीमित साँचे में गढ़ी गई कहानियाँ हैं जहाँ स्त्री सवर्ण मानसिकता,

जातिवाद एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था में शोषण और उत्पीड़न की शिकार है। या कभी स्त्री पुरुष संबंधों की खींचतान, वैचारिक जुगाली, उपदेशात्मकता, घरेलू हिंसा, शोषण और बलात्कार तथा जातिगत पूर्वाग्रहों की ही बात प्रमुखता से उठाई गई है जबकि दलित स्त्रियाँ तमाम शोषण, उत्पीड़न और संघर्षों के बावजूद समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी योग्यता और कामयाबी का परचम लहरा रही है। अनीता भारती जी की कहानी 'नई धार' एवं हेमलता महिश्वर की कहानी ''कर का मनका डारी दे'' अभिजात्यवादी छद्म दलित हितैषी कार्यकर्ता महिलाओं के जातिवादी रवैये की पोल खोलती हैं। इतना ही नहीं, हेमलता महिश्वर जी की कहानी दलित अवमानना के नए तरीकों के पीछे छिपी धूर्तता को भी सरलता से उजागर करती हैं जब वे बताती हैं ''साधना जी ने झाँकते हुए पूछा : महेसकर! यानी महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण... तभी तो बड़ी वैचारिकता है आपमें। नहीं! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। तो...'' साधना जी के चेहरे पर सवालों के जाल थे। जिन्हें देखकर मैं फिर सकुचा गई।

मैंने धीरे से किंतु दृढ़ स्वर में कहा : शेड्यूल कास्ट को बिलॉन्ग करती हूँ।'' बिना एक क्षण गँवाए साधना जी ने मेरे हाथों से अपनी डायरी ली और सामने बैठी वकील साहिबा के साथ जाकर बैठ गई।

सुमित्रा मेहरोल जी की कहानी 'प्रतिकार' भी पढ़े लिखे मध्यम वर्ग की जातिवादी मानसिकता का पर्दाफाश करती है।

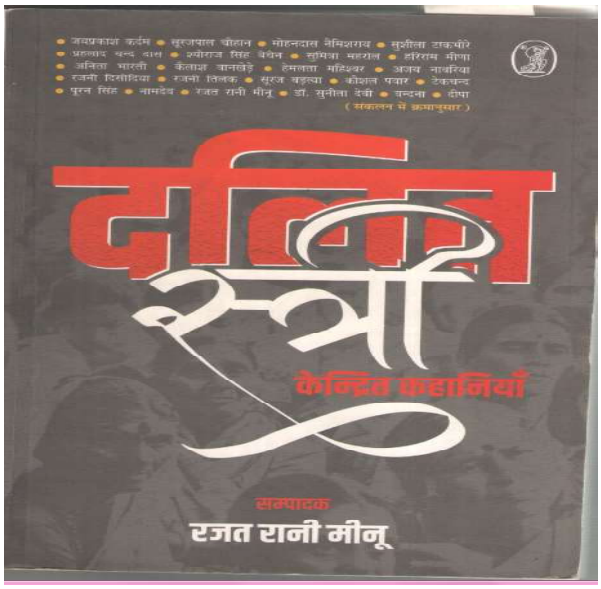
वंदना की कहानी ''नालियाँ'' एक पढ़ी–लिखी दलित युवती की अपने कच्चे घर को पक्का बनाने की लालसा की कहानी हैं जिसमें नविता नामक युवती को गाँव में घर बनाते हुए पानी की निकासी के लिए नाली निकालने को लेकर गाँव के तथाकथित सवर्णों की जातिवादी मानसिकता का सामना करना पड़ता है।

संग्रह की अंतिम कहानी दीपा द्वारा रचित ''जीत'' है जो एक सफाई कर्मचारी की बेटी रेखा द्वारा सिपाही भर्ती परीक्षा में जाति–आधारित भेदभाव के चलते होने वाली धांधली को उजागर करती है तथा भर्ती प्रक्रिया में अपने साथ होने वाले अन्याय के खिलाफ आवाज उठाकर दोषी को दंड भी दिलवाती है। ये कहानी युवा पीढ़ी की आत्मसम्मान से भरी नई सोच को उजागर करती है। दरअसल इन कहानियों में से कई कहानियों में कई ऐसे पात्र सामने आए है जो पुरुष हैं ओर किसी न किसी रूप में स्त्री अधिकारों की बात करते हैं या स्त्री पुरुष समानता की बात भी करते हैं। इनमें पढ़े–लिखे दलित और गैर दलित पुरुषों की भूमिका भी संभवतः किसी न किसी रूप में हो सकती है, फिर चाहे पिता, पति, भाई, बेटा, दोस्त या कोई अन्य जो उस स्त्री को सशक्त ओर सफल होते देखना चाहता है जो सही मायने में स्त्री पुरुष समानता का पक्षधर है तो ऐसे पात्र हमारी कहानियों में प्रत्यक्ष रुप में क्यों नहीं दर्शाए जाते। इस दृष्टि से दलित साहित्य की इक्कीसवीं सदी में लिखी जाने वाली कहानियों का

सूक्ष्म एवं गंभीर मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक है। इसलिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि दलित रचनाकार अपने समय में साहित्य और समाज में तेजी से होने वाले बदलाव एवं परिवर्तनों पर पैनी दृष्टि बनाए रखे और साहित्य की किसी भी विधा में उन्हें सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करे जिससे वर्तमान एवं भविष्य में आने वाली पीढ़ी अथवा पाठक वर्ग इन रचनाओं से सकारात्मक ऊर्जा ग्रहण कर सके।

इस संग्रह को पढ़ने पर अहसास हुआ कि संपादक और प्रकाशक ने संग्रह के प्रकाशन को गंभीरता से नहीं लिया बल्कि संग्रह के प्रकाशन में अत्यधिक शीघ्रता बरती गई जिस कारण कई महत्वपूर्ण रचनाकार छूट गए जिनकी रचनाएँ इस संग्रह को रचनात्मक स्तर पर और समृद्ध कर सकती थी। उत्कृष्ट कहानी चयन में भी कोई तत्परता नहीं दिखाई देती है। इसके स्थान पर रजत रानी मीनू जी अपनी समस्त कहानियों को संग्रह रूप में प्रकाशित करतीं तो शायद एक महत्वपूर्ण संग्रह दलित साहित्य को समृद्ध करता। फिर भी दलित स्त्री केंद्रित कहानियाँ शीर्षक से आई यह किताब दलित साहित्य में शोध कर रहे विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी।

दलित साहित्य स्त्री–पुरुष समानता का हामी है जो सभी संवैधानिक मूल्यों को आत्मसात करके एक समान जनतांत्रिक समाज का स्वप्न लेकर आगे बढ़ रहा है। इस दृष्टि से ''दलित स्त्री केंद्रित कहानियाँ'' नामक यह संपादित संग्रह अलग–अलग दलित रचनाकारों के स्त्री विषयक नजरिए, उनकी साहित्यिक, वैचारिक समझ एवं परिपक्वता का सामूहिक मूल्यांकन करने एवं दलित साहित्य में शोध के लिए संकलित संग्रह के रूप में उपयोगी हो सकेगा।



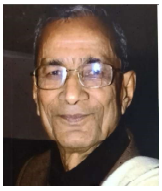
❑❑❑

पुस्तक समीक्षा

रूपक और बिंब से बुनी गई गंभीर कहानियाँ



पवन माथुर
प्रोफेसर, रसायन शास्त्र,
कवि–आलोचक



प्रो. रामदेव शुक्ल
सुप्रसिद्ध आलोचक

रसायन शास्त्र में पांडित्य–अर्जन के बाद मनुष्य की संरचना में भाषा का उत्स खोजने वाले डॉक्टर पवन माथुर अपने कहानी–संग्रह 'हासिल' की भूमिका में 'समय की धारा' से अलग हटकर रचना करने वाले, उल्कापिंड की तरह नजर आकर गुम हो जाने वाले स्व॰ देवेंद्र इस्सर के विषय में लिखते हैं कि "जब हिंदी का कथा–संसार प्रत्यक्ष/परिचित को और अधिक यथार्थपरक/वास्तविक बनाने की होड़ में लगा हुआ था, इस्सर जी के पात्र परिचित यथार्थ के ढाँचे के पार जाते हुए ज़िंदगी के स्वप्नों, परछाइयों, खुशबुओं के इर्द–गिर्द अपनी शनाख़्त टटोल रहे थे। उनकी रचनाएँ स्मृति और स्वप्न के बीच के अंतराल में जन्म लेती हैं।' इस्सर जी को गुरुतुल्य मानने वाले पवन माथुर ने 2008 में लगभग चार महीनों में एक आलेख तैयार किया। वे लिखते हैं – "इस आलेख में मैंने दो भिन्न विधाओं की सीमा–रेखाओं को मिटा दिया था। इस आलेख के प्रारूप (फार्म) को कहानी बना दिया, लेकिन दरअसल यह था इस्सर जी की कृतियों में मौजूद मूल्य–बोध का विश्लेषण।" इस 'कहानी–नुमा' आलेख में इस्सर जी की बहुचर्चित कहानी के नायक सिद्धार्थ के नायक 'परेश राय' का उपयोग इस्सर जी से एक काल्पनिक संवाद गढ़ने के लिए किया गया है। यहाँ भी एक अपरिचित 'डिवाइस' का उपयोग किया। परेश राय का संवाद लेखक से न होकर उनके बुक शैल्फ पर रखे टी.वी. से होता है। पवन माथुर ने अपने कहानीनुमा–आलेख को 'एक जख्मी परिंदा' शीर्षक देकर 'हासिल' संग्रह का हिस्सा बना दिया है। इस कहानी (या शोधपत्र) के कुछ संवाद परेश राय, देवेंद्र इस्सर और पवन माथुर के मानस को समझने में सहायक हो सकते हैं– 'हर एक के दिल में किसी अंधेरे गोशे में आदिम पुरुष छिपा बैठा रहता है– जितना हम बदलते हैं– उतनी ही

पुस्तकः हासिल' (कहानी संग्रह), लेखक : प्रो. रामदेव शुक्ल, लेखक : पवन माथुर, प्रकाशकः ए–387, शीतल सुयश, राप्ती चौक, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर–273003, वर्षः 2023, मूल्यः 495/–, पृष्ठ : 159)

गुफाएँ गहरी होती जाती हैं, जंगल घने होते जाते हैं।' उसे नंदिनी के शब्द याद आ रहे थे– 'ज़िंदगी हो या मनुष्य, उसे किसी दूसरे की किताब से न पढ़ा जा सकता है और न समझा जा सकता है। जीवन मायाजाल है, तो पुस्तक शब्द–जाल।'... "उनकी आँखें प्रश्न–शून्य थीं, मानों वे किसी जमी हुई झील में किसी बर्फ के टुकड़े के तड़कने का इंतजार कर रहे हों। ''आपके सभी सगे साथी मध्यवर्ग की तमाम सुविधाएँ भोगते हुए, अपनी कहानी के पात्रों को समाज राजनीति की तब्दीली का औज़ार मान रहे हैं और आप अभी भी रास्ते की भूलों में, ज़िंदगी के मायने फिर नए सिरे से तलाश रहे हैं?... तब आप ही ने कहा था, 'जीवन भर शब्दों का मोह करते–करते मैंने कितने शब्द जमा कर लिए हैं, शब्दों की इस गठरी में, उफ! शब्द भी कितने कष्ट, कायर, हिपोक्रेट और पौरुषहीन हो चुके हैं।''... 'जमाना इतिहास हो जाता है, लेकिन काल में हमेशा जीवित रहता है, हमारे पास, हमारे भीतर। फिर मनुष्य तो स्वतंत्र होने पर मजबूर है, वह अपनी असीम जिम्मेदारियों से घिरा हुआ इस संसार में छोड़ दिया गया है, बगैर किसी प्रयोजन, किसी मंज़िल, सिवा उसके जो वह स्वतंत्र रूप से वरण करता है और उसके द्वारा इस एब्सर्ड दुनिया को अर्थ देता है।''

दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, लंदन और मास्को के कॉफी हाउसों में पढ़ाकू बुद्धिजीवी जिन देशी–विदेशी इंटेलेक्चुअल्स के नाम मंत्र की तरह जपा करते थे, वे सारे नाम पवन किसी न किसी रूप में यहाँ स्मरण कर लेते हैं। उनके अमर वाक्यों का स्मरण करते हैं और कृति, सत्य और पाठ पर ठहर जाते हैं। काव्य (साहित्य) एक ऐसी भाषा का सृजन करता है जो सबसे 'प्राक', 'नूतन' और 'मौलिकता' से रची होती है। कृति का टैक्स्ट एक अनोखी, अनबूझ, कभी खत्म न होने वाली चेतना का प्रवाह है जो सामाजिक यथार्थ से भिन्न एक नई 'सुपरयथार्थ' वाली दुनिया पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इस 'जख्मी परिंदा का समापन होता है– ''मनुष्य डिकंस्ट्रक्ट' होने लगा, फिर डिफक्ट और फिर साइबोर्ग की तरह 'डिस्मैंटल। वे तमाम शब्द गायब होने लगे जिनका संबंध सृजनात्मकता, काव्यशक्ति, अंतर्प्रज्ञा, सौंदर्यानुभूति और आत्मिक एंग्स्ट था। वैचारिक प्रतिबद्धता के हामी और विशुद्ध साहित्यिक मूल्यों के हिमायती अब एक ही पंक्ति में खड़े दिखाई देने लगे जहाँ साहित्य का कोई स्वायत्त अस्तित्व नहीं था।'' नामवरों के जो नाम छूट रहे थे, उन्हें लिखने के बाद पवन माथुर लिखते हैं, ''कुछ देर बाद जब यह शोर फीका पड़ने लगा तब बहुत दूर से उसे तबले की ताल और वाइलिन की बहुत सूक्ष्म स्वर लहरी सुनाई पड़ने लगी। साहित्य की सरगम, जो बाहर के शोर की अनुगूंज नहीं थी और मि. रोशो (संचेतना पत्रिका में छपी इस्सर जी की अंतिम कहानी, मि. रोशो) के रचनाकार की तस्वीर एकदम साफ हो गई।''

'हासिल' की भूमिका लिखते समय परंपरा और आधुनिकता दोनों के मर्मज्ञ आचार्य नित्यानंद तिवारी ने जार्ज लुकॉच को उद्धृत करते हुए लिखा है कि 'जीवन

में गति और व्यवहार के पैटर्न बदल जाने से साहित्य के प्रतिदर्श भी बदल जाते हैं। पवन माथुर ने उसी का योग्य उपयोग किया है तथा इस सामान्य सच को ही अपनी कहानियों में 'आर्गनाइज़' कर दिया है और वह 'सच' विशेष बन गया है।"

'ज़ख़्मी परिंदा' में पवन जी ने अपने समय, अपने समय के 'सच' और पात्रों की असामान्यता के विषय में बहुत कुछ बता दिया है। उससे यह निष्कर्ष तो साफ़ है कि साधारण से साधारण दिखने वाला पात्र भी गहरे स्तर पर बहुत तरह की जटिलताओं से घिरा होता है। पहली कहानी 'माँ जा रही है' वर्षा की झड़ियों, आती–जाती बिजली की लुका–छिपी, माँ के कमरे में उनके मायके से आए सामानों के साथ मौन का फ्रीज हो जाना और घर का भुतहा खंडहर बनाता सन्नाटा जैसे बिंबों से शुरू होती है। बड़ी बहन के आसन्न निधन की सूचना पाकर जुट आईं मौसियों का चित्र है – 'बरसात में भीगे पोस्टकार्ड की अस्पष्ट लिखावट सी मौसियाँ। बाँदा, शिवपुरी, गुना से अपने ट्रंकों और बड़े बैगों को बांधे एक एक कर आ गई थीं।'

कथाकार इस घर में माँ के आने के पहले दिन से पतंग के बिंब के माध्यम से उनकी ट्रेजेडी को मूर्त करते हैं। माँ जब विवाह हो इस घर में आईं, तब उनके हाथ में एक ऐसी पतंग पकड़ा दी गई जिसके कन्ने पहले से गलत बँधे हुए थे.... माँ लगातार एक न उड़ने वाली पतंग उड़ाती रहीं जब तक वह बिल्कुल कट–फट कर ख़त्म न हो गई। पिता के जाने के बाद भी उन्होंने हार न मानी। अपने हाथों से हू–ब–हू पिता जैसी पतंग बना वे उसे भी उड़ाने की भरसक कोशिश करती रहीं। पिता का ग़ैर ज़िम्मेदार भोगलिप्सा में जर्जर होता जीवन और सब कुछ को साहस के साथ झेलती मरणासन्न होती जर्जर ज़िंदगी टूटती बिखर गई। बड़े हॉल, पर्दों, पेंटिंग में पिता की भयंकर गालियों और लांछनों में माँ की जो दुर्गति बयान की गई, वह शब्दों में नहीं, प्रतीकों में ही कही जा सकती थी, कही गई है। आख़िरी प्रतीक है – दरवाज़े के बाहर लगी घंटी बजकर बंद न हुई, उसका बटन कहीं अटक गया था। ... बाहर की घंटी अभी भी चीख़ रही थी और ब्रह्मांड से पूछ रही थी – माँ, क्या तुम जा रही हो।'

दूसरी कहानी है 'हासिल'। सरकारी नौकरी करते अनेक तबादलों के बाद दिल्ली में बस गए पिता का कार–स्कूटर टक्कर में निधन हो गया। बड़ा भाई दुबई भाग गया। बैंक की अस्थायी नौकरी से अपना और माँ का खर्च चलाती। माँ की एकमात्र इच्छा थी, किसी तरह बेटी का ब्याह हो जाए तो वे मथुरा जाकर विधवाश्रम में बुआ के साथ जीवन बिता दे। कथाकार पवन माथुर समय की सूचना इस रूप में देते है। 'माँ को गए तीन वर्ष बीत गए थे और उसके अपने विवाह को बारह। उसके दो बच्चे थे, घर अच्छा था, और वह एक अर्ध सरकारी कंपनी में सीनियर टाइपिस्ट थी। पति और बीमार माँ के बीच समय की चील, उसकी ज़िंदगी के बारह वर्ष, कब झपट्टा मारकर उड़ा ले गई थी, उसे मालूम न चला।'

कहानी के अगले मोड़ पर उसका कहीं नाम नहीं आता। फिरपहली बार मिसेज शर्मा कहलवाया गया है। 'उसके बॉस द्वारा उसे डाँटा जा सकता है या उसकी साड़ी और ब्लाउज के रंग, उसके वक्ष के उभार, कूल्हों की बनावट, होठों की रसमयता और आँखों की चंचलता के बारे में फुसफुसाया जा सकता है। इस स्टेशन पर वह सिर्फ एक देह थी। वह चाहती इस देह का भरपूर फायदा उठा सकती थी – मातहत होकर बॉस तक को उंगलियों पर नचा सकती थी ... लेकिन अक्सर वह अपने से प्रश्न करती – इस रिझाने वाली गुड़िया के रोल से अंततः क्या हासिल हो पाएगा? बैसाखियों पर खड़े व्यवस्था के 'शायलाक' से कुछ सुभीता? कोढ़ पर मक्खी से कुछ रियायत?'

ऊपर आए अप्रस्तुत विधान क्या पूरी व्यवस्था के भ्रष्ट हो जाने और स्त्री की सारी सुकुमार भावनाओं को कुचल डालने वाली क्रूरता कथा नहीं कह डालते?

एक विलक्षण कहानी है 'एक और रोज़' जिसे पढ़ते समय हिंदी का कहानी–पाठक अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी 'रोज़' (या गैंग्रीन) से तुलना करने लग सकता है, लेकिन दोनों कहानियों में कोई समानता है ही नहीं। अज्ञेय की कहानी 'पहाड़ी जीवन' में एकरसता, ऊब, अपने कर्म के प्रति ईमानदारी से समर्पित डॉक्टर और उसकी पत्नी की निराशा, खीझ और बच्चे के प्रति कठोरता से भरी हुई है। पवन माथुर की कहानी में 'यह जो रोज का दैत्य है जो हर सुबह उनके दरवाज़े पर दस्तक देता रहता है, उनके सभी निर्णयों को धुंधला कर देता है। वे भरसक इस दैत्य से लड़ते रहते हैं।

कहानी शुरू होती है कथानायक के बस में बैठकर बैंक जाने से। 'रिटायरमेंट से पहले तीसरी मंज़िल पर अपना फ्लैट होने के 'सुख' ने 'सीढ़ियाँ उतरते चढ़ते ज़िंदगी के अंतिम वर्षों में ऐसा कष्ट भी दे दिया, जिसे रोज़ एक कड़वे घूँट की तरह पीते जाना पड़ता।' बस में चढ़ने के बाद पसीने की बदबू के साथ वृद्धों और स्त्रियों के साथ बदतमीज़ी करने वाले नर–पशुओं की दुष्टता को झेलते समय उन्हें याद आता है कानपुर छोड़कर दिल्ली आने का समय। 'उनकी ज़िंदगी का रोज़ यहीं से शुरू होता था। तीन सौ रुपए की पहली तनख्वाह से लेकर आख़िरी पे–स्लिप पर लिखा अपना नाम इस सर्वनाम को पहली बार याद आता है – हरिचरण–एकाउंटेंट रिटायर्ड (2001)। 'पहली तनख्वाह देते हुए हैड कैशियर ने हिदायत दी थी कि एकाउंटस का काम मेहनत, सावधानी और ईमानदारी का है –तरक्की का यही मूल मंत्र है।' छोटी बँधी तनख्वाह से घर चलाने के कौशल के संदर्भ में पत्नी का नाम आता है, दीक्षा की माँ के रूप में। अंत में मरणासन्न दीक्षा की माँ को बचाने के लिए नर्सिंग होम में दोपहर से पहले पाँच हज़ार रुपए जमा करने के लिए बस में सवार हरिचरण सोचते हैं कि 'आख़िर हेड कैशियर के मंत्र का जादुई जिन्न, कैसे विलीन हो गया?' आंकड़ों के बाजीगरों ने उन्हें वहाँ पहुँचा दिया जहाँ गहरे नीले अंधेरे को एक और रोज में तब्दील होने का इंतजार करते।

बेटी दीक्षा के असाध्यरोग और उसका इनके हाथों में तड़पकर मरने, अपनी पत्नी के हस्ताक्षर स्वयं करने के बाद मिले पाँच हज़ार रुपए हाथ में लिए सोचने लगे – 'ज़िंदगी जीने के मंत्र ने जहाँ लाख कोशिशों के बाद भी उनकी मुट्ठी में कुछ न रखा, वहीं मृत्यु जीने के इस पाठ ने, शायद दीक्षा की माँ की बाकी ज़िंदगी उनके हाथ में रख दी थी।' किसी के रिटायरमेंट के बाद विदाई के अवसर पर तालियाँ बज रही थीं ... 'एक और रोज, बुझने को धीमे–धीमे सरक रहा था।

अज्ञेय की कहानी का मर्म घटनाविहीनता में है तो पवन माथुर की कहानी का घटना–बहुलता में। उपन्यास का फलक लिए घटनाएँ एक सांस में वर्णित बल्कि सूचित कर दी गई हैं।

'पारी' कहानी सरकारी अफ़सरों, ठेकेदारों और ऊपर तक के भ्रष्टाचार और उसके अंग के रूप में कामाचार की कहानी है। पवन माथुर प्रायः अपनी कहानियों का आरंभ संध्याकाल से, अंधेरों के अनेक रूप रचते हुए करते हैं। कहानियाँ सर्वनाम से ही शुरू होती हैं। संज्ञा का अवतरण कहीं आगे चलकर होता है। जनवरी की कनॉट प्लेस से बाहर 'स्याह होती जा रही शाम खिड़की के शीशे पर एक–परत–सी बन कर झूल गई।' स्पष्ट है कि ब्यूरोक्रेसी की सर्वोच्च स्थिति में पहुँचने वाले साहब 'इतालवी सिगार' का आनंद ले सकते हैं। अगले पैराग्राफ में उनके पिता का परिचय एक कस्बे में मुहरिर्र' (वकील का मुंशी) के रूप में दिया गया है जो अपने व्यवहार और खेतीबाड़ी से संपन्न थे। जिलाधिकारी क्या होता है, उसका रौबदाब क्या होता है, यहाँ वर्णित है। एस॰डी॰एम॰ के रूप में पारी की शुरुआत करते ही उन्हें समझाया जा चुका था कि कुर्सी के पास दरियादिली नाम की चिड़िया पंख भी नहीं पसार सकती। 'कुर्सी हमेशा सही होती है और फरियादी हमेशा से ही काइयाँ, कुटिल और लालची।'

बहुत मंद स्वर में कहानी पाठक के कान में भुनभुना जाती है कि सौ में निन्यानवे बड़े 'साहब' लोग रामसरनों की फाइलों पर हस्ताक्षर कर ही देते हैं।

'जिंदगी की कील' कहानी भी सर्वनाम 'वे' से शुरू होती है। गाज़ियाबाद की एक छोटी सी.जी. फार्मा कंपनी के सेल्स ऑफिस में नियुक्त थे। तीन छोटे बच्चों के साथ किराए के मकान में रहते थे और दिन–रात सेल्स के चक्कर में छोटे–छोटे शहरों के चक्कर काटा करते थे। अभावों की मार में दीवाली का बोनस जरा सी राहत देता। पत्नी गाँव में से महीने एक बोरी अनाज गेहूँ–बाजरा–उड़द ले आतीं। अपना घर बनाने की बात तो सोची भी नहीं जा सकती थी। 'यह मकान एक अजब संयोग से उनकी झोली में आ गिरा था।' एक रात उनके गाँव के पास का पूरन आधी रात में उनको रुपयों से भरा एक पैकेट थमा गया। जिस बैंक में क्लर्क था, उसी से चुराया पैसा पकड़े जाने के डर से अपने घर में न रखकर इन्हें दे गया था। बाद में उसके चाचा ने बताया कि पूरन तो निर्दोष था, पर बैंक वालों ने उसे झूठे आरोप में फँसा

दिया। वह दस साल के लिए जेल चला गया। पूरन के पैकेट के दो लाख रुपयों से उन्होंने एक नई कॉलोनी में जमीन खरीद कर मकान बनवा लिया। पत्नी के आग्रह पर नए घर में रहने लगे।

अपने घर का मालिक बन जाने के चालीस साल बाद कहानी शुरू होती है जब 'उनकी प्रोस्टेट ग्रंथि इतनी बढ़ गई कि बेड शीट, ड्राइंग रूम, डाइनिंग कमरे इसकी बदबू से भरने लगे, तब उनके लिए किसी बीमार पालतू जानवर की तरह मकान के पिछवाड़े की दो दीवारों के बीच एस्बैस्ट शीट की छत बिछाकर एक बिस्तर भर की जगह बना दी गई। गनीमत थी कि जब चालीस वर्ष पूर्व यह मकान बनवाया था तब पिछवाड़े एक छोटा सा टायलेंट, सफाई वाली और बाहर से आने वालों के लिए बनवा दिया था। कमरे में वे अपने बिस्तर के सामने लगे हिंदू कैलेंडर से जान लेते थे कि यह किन तारीखों, महीनों में त्योहार कब आएँगे, वरना मकान के पिछवाड़े में बने इस छोटे से कमरे में, सिवाय जमादार और सफाई वाली के रोज़ कोई नहीं आता था। यह कैलेंडर एक पुरानी जंग खाई कील पर टंगा था। लगता था अब गिरा तब गिरा। कैलेंडर के पन्ने उनकी बची खुची ज़िंदगी को गहरी, हल्की, कब कष्टों में डूबी और कब 'अब आई–तो तब गई।'

बीच में कहानी में उन पर एक के बाद दूसरी मुसीबतों का आना, एक जोगी बाबा की खोज में लगना, पूरन से दगाबाजी करने को अपनी ओर से गढ़ी सफाई और अंत में अपने ही घर के बाहर पालतू बीमार जीवन की नियति को प्राप्त हो जाना। पाठक के मन में 'जैसी करनी, वैसी भरनी' की आश्वस्ति।

निखिल के साथ बहस करता हुआ 'वह' ('डोर' का सर्वनाम) उसी धागे को खोज रहा था मानो वह धागा भी कोई विचार बिंदु हो जिसे भाषा के जरिए पूरा का पूरा अभिव्यक्त किया जा सकता हो।' अंधेरा, कोहरा, मोह पवन माथुर के प्रिय बिंब हैं। रिसर्च लैब में क्लोरोफार्म, बैंजीन, ईथर और न जाने किन–किन रसायन और गैसों की गंधों के बीच रहते हुए अपने होने की गंध भी 'वह' के लिए बदल गई थी। लैब में बस की टिकट पर लिखे निखिल ने पत्र में उसे अपने पड़ोसी शर्मा जी के घर टेलीफोन के पास पहुँचा दिया। शर्माजी उन कुटिल जीवों में से एक हैं जो संभावनाशील प्रतिभावों को कुंठित करने में ही अपनी योग्यता खर्च करते हैं। कथानायक की पीड़ा वर्ग चरित्र को लेकर है। सामान्यतः निम्नवर्गीय व्यक्ति अपनी प्रतिभा से ऊपर उठकर मध्य वर्ग और फिर उच्चमध्यवर्ग की ओर अग्रसर होते हैं तो अपने समकक्षों को उनसे मिलने आए पिता का परिचय अपने नौकर के रूप में देते हैं। यहाँ कथानायक अभी कुछ बना नहीं है, बन जाने की संभावना मात्र से अपने निम्नवर्गीय परिवार से, माता–पिता से, उनके रजाई गद्दों से, घर के फर्नीचर से नफ़रत करने लगता है।

निखिल, आशु, कविता, चंद्र कई महीनों से उस लड़की से मिल नहीं पाए थे। सबकी राय सही थी कि अगर क्रूर पति 'सुदु' को सहन नहीं कर पा रही है तो अपनी माँ के पास चली जाए। खूब रोए। लेकिन सभी मिलकर सोचते हैं कि 'उस लड़की का खुलापन एक ऊपरी मुखौटा भर था। जहाँ वो दिखाने के लिए सास–ससुर के सामने अभद्र शब्द बोल सकती थी। या 'सुदू के दोस्तों के साथ शराब में शामिल हो सकती थी।... ऐसी लड़की को समझौता करना ही था जो लगातार घर को तोड़ने की बात करती रही, वह अपनी सराय नहीं तोड़ पाई। कथाकार तीन रिश्तों–व्यवस्था से, जन्म से, और तीसरा रिश्ता हमारा अपना व्यक्तित्व–की विशिष्टता का अहसास कराता है, जो अपना है– अपनी रचना की डोर है। एक ऐसी अदृश्य डोर, जो कभी तो लगता है कि चुकी डोर के सिरे, असंख्य महीन धागों में बँट, पुनर्रोपित हो एक नई डोर में परिवर्तित होते जा रहे हैं।'' सामान्य पाठक की भलाई इसी में है कि इस डोर को सुलझाने का मोह छोड़ दे।

'गंतव्य–हीन' गंभीर ट्रेजेडी है। हिंदुस्तान में मिशनरियों द्वारा चर्च और स्कूलों में चल रहे कार्यक्रमों की सच्चाई और एक होनहार किशोरी के किशोर–प्रेम पर उसकी माँ की बौखलाहट। पिता बेटी को स्वावलंबी बनाने का सपना देखते थे और माँ जल्दी से जल्दी उसे ब्याह देने को आतुर थी। तेज़ी से बदलते दृश्यों, दुर्घटनाओं के बीच पल्लवी के साथ ईसाई अब्राहम के विवाह से क्षुब्ध लक्ष्मी दराती लेकर बेटी की हत्या करने निकली, उसके न मिलने पर स्वयं अपने सिर पर दराती मार ली। पिता का छोटा–सा घरौंदा बिखर गया था। पल्लवी अब्राहम के साथ कहाँ गई, पिता को पता नहीं। उनकी पत्नी उन्हें छोड़कर भाई के पास चली गई। 'पिता की ज़िंदगी फिर गंतव्यहीन हो गई।' अच्छे मैकेनिक थे, मेहनत और ईमानदारी के बल पर मारुति कंपनी में अच्छी नौकरी मिली लेकिन दुर्घटना में एक कंधा और बाँह बेकार गई। इससे बड़ी दुर्घटना पल्लवी के जीवन में घटी। अब्राहम का दोस्त अबू धाबी में काम करता था। उसके वीज़ा और किराए के लिए पल्लवी के गहने भी बिक गए। एक तरह से वह अनाथ हो गई। कुछ महीनों बाद अब्राहम के दोस्त ने बताया कि अब्राहम एक्सीडेंट में मारा गया और वहीं उसे दफना दिया गया। वहाँ का सर्टिफिकेट और उसकी उँगली में पहनी सोने की अंगूठी दे गया। पल्लवी बेहोश हुई। गहरे आघात से महीनों बाद ठीक हुई तो उसकी एक ही रट थी कि इलाहाबाद जाकर अपने ईसाई सास–ससुर को अब्राहम के बारे में पूरी जानकारी दे। शरीर और मन से अशक्त होने पर भी पिता ने प्रयागराज एक्सप्रेस में पल्लवी के साथ यात्रा आरंभ की। 'इम्तिहान का एक बड़ा पहाड़ फिर उनके सामने खड़ा हो गया था, क्या अब्राहम के माता–पिता पल्लवी को स्वीकार करेंगे? उन्हें मालूम नहीं।' बाहर गहरे कुहासे और घुप्प अँधेरे को चीरती हुई ट्रेन गंतव्य की ओर बढ़ रही थी, गंतव्य जिस पर एक सर्प कुंडली मारे बैठा था।'

एक लंबी, मनोरंजक और रति प्रसंगों से भरपूर, सरोगेट मदर की अवधारणा को केंद्र में रखकर लिखी गई कहानी 'गुलाब के फूल' है। भारत में बुढ़ापा बिताता बुज़ुर्ग बेटा–बहू के बुलाने पर अमरीका जा रहा है। सन फ्रांसिस्को के हवाई अड्डे पर बेटा बहू इनको रिसीव करने आए। ''बेटे के पास से एक आदमी लाल गुलाबों का एक बड़ा–सा गुलदस्ता लेकर निकला, बेटे के मुँह से बेसाख़्ता निकल पड़ा – 'क्या मस्त खुशबू है।" पिता ने उसे गौर से देखा, और याद करने लगा कि शोभा कहा करती थी कि ये अनुज कभी–कभी मुझे अपना बेटा नहीं लगता!!' यहीं पिता अपनी जवानी में रिसर्च और नौकरी के लिए की गई अपनी पहली अमरीका–यात्रा की स्मृति में प्रवेश करते है। स्मृति की रील में पाठक को दिखता है कि प्यार के रोमैंटिक दिनों में वह और शोभा संगीत की दुनिया में खोए रहते थे। शादी हुई और 'एक दो वर्ष का समय यूँ उड़ गया जैसे पूजा में जलाई कपूर की खुशबू।' जल्दी ही पता चल गया कि माँ न बन पाने की तड़प शोभा झेल नहीं पा रही थी। अमरीकी समाज की सुविधाओं के बीच पति हरसंभव उपाय से पत्नी की उदासी दूर करने की कोशिश करता है। एक संपन्न कामकाजी महिला के बच्चे को दिन भर अपने साथ रख कर अपने सूखते वात्सल्य की हरीतिमा को शोभा सींचती रही। तीन से कुछ कम साल का बच्चा जॉनी और शोभा एक–दूसरे के लिए अपरिहार्य होने लगे। उधर जॉनी की शरारतें बढ़ती गई, उसकी माँ कुछ दिन तक टालती रही। बाद में अपने बच्चे को उठा ले गई। शोभा की मानसिक और शारीरिक दशा बिगड़ने लगी।

पति के ऑफिस में पच्चीस–छब्बीस वर्षीय असिस्टेंट मैरी ने आक्रामकता के साथ ऑफिस के बाद अपने बॉस की देह को भोग लिया। लिफ्ट के भीतर लोअर बेसमेंट में आधा घंटा दोनों की तृप्ति में लगा। 'मुझे लगा 'मैरी' से यह मेरा पहला और आखिरी शारीरिक एनकाउंटर होगा। लेकिन यह मेरी भूल थी।' उसके बाद अमरीका जैसे खुले समाज और माहौल में इथियोपिया में पोस्टिंग पर गए आर्मी अफसर पति और धन–कुबेर पिता की संतान मैरी अपने महलनुमा बंगले में अपने शिकार को लेकर क्या कुछ करती रही, उसकी एक झलक – "मैं और शोभा मध्यम–ताल से धीरे–धीरे द्रुत तक जाते थे, लेकिन मैरी तो द्रुत से ही शुरू होकर शरीर को अजब–सी आग में लपेट लेती थी, जिसकी ज्वाला को आप स्वयं भी शांत नहीं होने देना चाहते थे।' एक शाम मैरी से पूछा जाता है – "बड़ी गज़ब की लड़की हो, शादी किसी और से, प्रेम किसी और संग, शारीरिक संबंध अन्य से, क्या यही अमरीकी स्त्री की स्वतंत्रता है? उसका उत्तर था – "दिस इज़ माई बॉडी, आई विल डू विद इट एज़ आई प्लीज़। तब मैंने कटाक्ष करते हुए पूछा – "पर बच्चा तो अपने पति से ही प्राप्त करोगी ना?" उसके चेहरे पर शरारत भरी मुस्कुराहट तैर गई, बोली – बच्चा सिर्फ़ और सिर्फ़ तुम्हारे से।' कुछ देर सन्न रहने के बाद प्रश्न हुआ – 'मुझसे? मुझसे ही क्यों? उसने मुझसे

लिपटते हुए कहा – "मुझे अपना बच्चा काला या गोरा नहीं 'ब्राउन' चाहिए, ठीक तुम्हारे जैसा, समझे मि. ब्राउन।' मैरी की सबसे बड़ी पसंद है 'लाल गुलाब'। इसके बाद कहानी सरोगेट मदर बनने की ओर तेज़ी से बढ़ती है। अमरीका में मामला कई लाख डॉलर का है, उसे मैरी इस शर्त पर हल कर देती है कि बच्चा उसकी कोख से पैदा होगा।

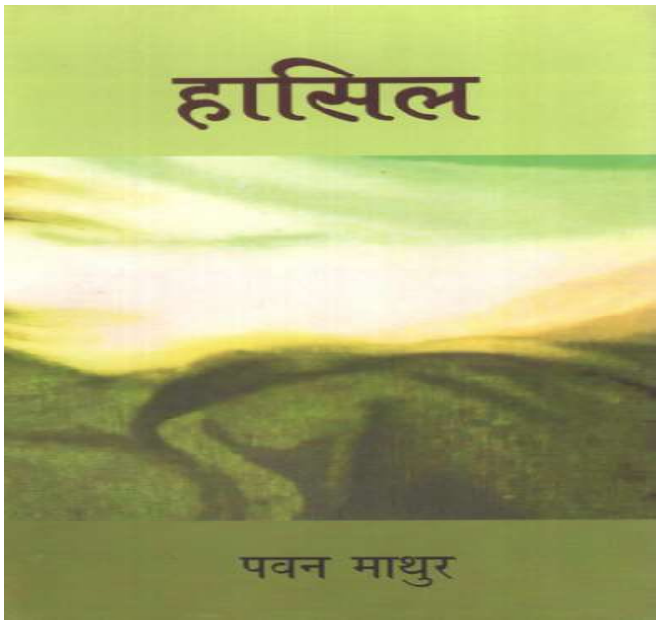
वही बच्चा है जो बूढ़े माँ बाप के स्वागत के लिए आया है। किसी दूसरे के हाथ में लाल गुलाबों का गुच्छा देखकर खिल जाता है। पति को याद आता है शोभा का कथन– 'ये अनुज कभी–कभी मुझे अपना बेटा नहीं लगता।'

वैज्ञानिक पवन माथुर की एक कहानी है 'तफतीश' जिसे पढ़ते हुए पाठक को अगाथा क्रिस्टी और शरलॉक होम्स की कथाओं के दाँवपेंच में घुस जाने का रोमांचक अनुभव मिलता है। एक कर्मचारी अपने अफसर से निकटता पाने का प्रयास करता है, सफल होता है और जब उसका लाभ मिलने लगता है तो साहब के आर्थिक और यौन अपराधों की पोल परत–दर–परत खुलने लगती है। अंत होता है न्यायपालिका के न्याय–बोध की सच्चाई खुलने के साथ 'तंत्र के भीतरी तंत्र की व्यूह–दर–व्यूह रचना की काली छाया' के साथ।

'कौन सा सत्य' कहानी दिल्ली के पाँच मंजिले कॉफी हाउस के ओपेन टैरेस से शुरू होती है। नैरेटर (मैं) वर्षों से अपनी शामें वहीं बिताता है। एक शाम वहीं अंदर के रेस्टोरेंट में एक बड़ी क़द–काठी का एक व्यक्ति दिखता है। वह बुझती हुई सिगरेट से नई सिगरेट सुलगाते हुए लगातार कश खींचता रहता है। जब वह कश खींचता, तब क्षणभर के लिए उसकी सिगरेट का मुँह लाल चिनगारी से भर उठता, 'मानों क्रुद्ध शनि तारे का टुकड़ा ही पृथ्वी पर उतर आया हो।' अपनी सिगरेट जलाने के लिए माचिस माँगते हुए नैरेटर अजनबी के पास जाता है। अजनबी अपने लाइटर से उसका सिगरेट जलाकर उसे अपने सामने ही बैठने का इशारा करता है। बातचीत शुरू होने पर पता चलता है कि अजनबी जमुनापार के एक पागलखाने के पास ठहरा है। नैरेटर के प्रश्न पर 'पागलखाने के पास क्यों?' अजनबी फट पड़ता है – 'क्या आपको इनसान और पागल का फर्क मालूम है?" उसके बाद वह पागल को पागल बनाने वाली परिस्थितियों को रेखांकित कर देता है। नैरेटर अपनी ही पत्नी की असामान्य मानसिक स्थिति पर विचार करने लगता है। उसे लगता है कि पत्नी के पागल होने का कारण वह स्वयं है। अचानक अजनबी की रहस्यमयी आवाज़ नैरेटर के कानों में गूंजने लगी 'आपने कभी घुड़सवारों, रथों, भालों, तीरों की वर्षा में, युद्ध के मैदान में पड़ी लाशों के बीच एक दिशा में भागते हुए पागल हाथी को देखा है? दरअसल हाथी पागल था नहीं, महावत के भरोसे का विच्छिन्न होना उसे पागल बना रहा था – व्यक्ति का हो, परिपाटियों का हो, संस्कारों का हो, भरोसा टूटते ही पागलपन का दौर शुरू हो जाता

है। 'नैरेटर को अजनबी की आवाज में महाभारत के 'अश्वत्थामा' हाथी के मारे जाने की धर्मराज के अर्धसत्य की ध्वनि सुनाई पड़ी। अजनबी जैसे अपने आप बड़बड़ाता रहा – तुम सब बुज़दिल हो, निहायत स्वार्थी, कर्त्तव्यहीन और जीवन के लालची पिस्सू, शापित भी नहीं हो फिर भी घिसट–घिसट कर जीना चाहते हो.... मृत्यु का आना वरदान है, वरदान....' नैरेटर एक ओर अपनी पत्नी की दुर्दशा का कारण स्वयं को मानता है, दूसरी ओर अजनबी की यह लताड़। अजनबी झटके से बाहर निकल जाता है। वेटर दौड़कर उससे उसका नाम पूछता है। उत्तर में मिला शब्द समझ नहीं पाता (नैरेटर) के पूछने पर बताता –अस्थ, अश्वमाँ ....। नैरेटर 'अश्वत्थामा' कहकर वेटर से पुष्ट करना चाहता है, लेकिन वह दूसरा ऑर्डर लेने भीतर जा चुका है। पाठक 'अश्वत्थामा' समझ लेते हैं। रामायण–महाभारत के पात्र दुनिया भर के आख्यानों में प्रवेश कर गए हैं। आज का निम्न मध्यवर्ग और मध्यमवर्ग का शिक्षित जन आधुनिक चेतना, नैतिकता बोध, पारिवारिक संबंधों के चक्रव्यूह में घिरा किस तरह जीने मरने के बीच घिसट रहा है, इस कहानी की प्रतीक व्यवस्था इसे बोधगम्य बनाती है।

इन अच्छी कहानियों की एक माँग यह है कि पाठक को गंभीर विचारक होना चाहिए।



❑❑❑

धरोहर : एक रचनात्मक आंदोलन की तहरीर



डॉ. एन. सिंह
लेखक एवं प्रकाशक



डॉ. राजेश पाल
प्रोफेसर, गणित विभाग, डी.ए.वी.पी. कॉलेज, देहरादून

बीत गए चिट्ठियाँ लिखने के वो स्वप्निल दिन, लेकिन उन दिनों की यादें आज भी ताजा है। पत्र के इंतजार में आँखें डाकिये की राह बेताबी से तका करती थीं।

इतिहास में कुछ विशेष चिट्ठियाँ बड़ा साहित्यिक दस्तावेज भी बन गई हैं। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुत्री इंदिरा के नाम, जिसे वे प्यार से इंदु कहते थे, जो पत्र लिखे थे, वे एक साहित्यिक धरोहर बन गए हैं जो 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' पुस्तक में संकलित हैं। इन पत्रों में नेहरू ने अपनी पुत्री के व्यक्तित्व को निखारने के लिए उन्हें जीवन व समाज के महत्वपूर्ण पहलुओं से परिचित कराया है। इसी प्रकार इतिहास में सावित्रीबाई फूले व ज्योतिबाफुले के पत्र महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। वे पति–पत्नी के पत्र होकर भी तत्कालीन सामाजिक रूढ़ियों, सामाजिक समस्याओं व उनके निदान से हमारा परिचय कराते हैं। इसी प्रकार अमरीका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का अपने बेटे के शिक्षक को लिखा पत्र भी बहुत चर्चित पत्र है। आज कई ऐतिहासिक पत्रों की नीलामी अरबों रुपये में हो रही है। यह उन पत्रों के ऐतिहासिक व सामाजिक महत्व को तो दर्शाता है, साथ ही यह भी दर्शाता है कि पत्र भले ही भविष्य को सोचकर न लिखा जाए परंतु लिखने वाले के अमूल्य विचार उसे भविष्य के लिए महत्वपूर्ण धरोहर बना देते हैं। ऐसे ही कुछ महत्वपूर्ण पत्र डा. एन. सिंह के पास हैं जो साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. एन. सिंह का अपने समकालीन लेखकों से निरंतर पत्राचार होता रहा। उनके इन पत्रों का संचयन धरोहर नाम से कलमकार पब्लिकेशन,

---

पुस्तक : धरोहर (पत्र संचयन), संपादक– डा. एन. सिंह, प्रकाशक : कलमकार पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली–110078, फोन 9310562856, ईमेल kalamkaarpublishers@gmail.com प्रथम संस्करण : 2023, मूल्य रु. 700/– पृष्ठ–268

दिल्ली से प्रकाशित हुआ है जिसमें लगभग 40 साहित्यकारों के 200 पत्र संकलित हैं। इनमें अधिकतर लेखक आज अपनी प्रतिष्ठा के शिखर पर हैं ये पत्र अपने समय की साहित्यिक गतिविधियों और रचनात्मक बेचैनियों को समझने के लिए बहुत जरूरी हैं। प्रथम पीढ़ी के दलित रचनाकारों ने दलित साहित्य को स्थापित करने के लिए रचनात्मक रूप से एक आंदोलन की तरह कार्य किया । इस रचनात्मक आंदोलन को समझने में भी ये पत्र पढ़े जाने बहुत जरूरी हैं।

अरुणाचल प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल माताप्रसाद जी अपने 19 जनवरी 1994 के पत्र में लिखते हैं :

'अरुणाचल का राज्यपाल बनने में मैं समझता हूँ कि दलित साहित्य का भी योगदान है इसलिए आप दलित साहित्यकारों की प्रेरणा से मुझे अपने कर्तव्य पालन में शक्ति मिल रही है।'

दलित साहित्य को समृद्ध करने के लिए इन पत्रों के माध्यम से पारस्परिक सहयोग एवं योजना बनाकर कार्य किया जाता रहा है। दिनांक 26.7.2002 के पत्र में पूर्व राज्यपाल महामहिम माताप्रसाद जी डॉ. एन सिंह को लिखते हैं–

"आपने सुझाव दिया है इस समय दलित कविता में उभर रहे नए हस्ताक्षर का एक जोरदार संकलन तैयार करने के लिए। मैं इसके लिए तैयार हूँ। इसमें क्या करना है। नए हस्ताक्षर में मुख्यतः कौन–कौन कवि हैं उनके मैटर मुझे कहाँ–कहाँ से मिलेंगे? आपके पास भी कुछ होंगे। मेरे विचार से यदि ऐसा संकलन निकालना हो तो इसके तीन भाग होने चाहिए। एक स्वतंत्रता के पूर्व, दूसरा आजादी के बाद से 2000 ई. तक और तीसरा 2000 ई. के बाद के दलित कवियों को रखा जाए। आपका इस संबंध में सुझाव क्या है? इसकी रूपरेखा बनाकर भेजें।"

9 अक्टूबर 1986 के एक पत्र में पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुणा जी लिखते हैं: मैं जीवन भर प्रवाह के विरुद्ध तैरता रहा हूँ और इसके लिए मुझे उपहास, उपेक्षा, अलगाव और अपमान के पुरस्कार प्राप्त होते रहे हैं। आप जैसे मित्रों की शुभकामनाएँ मेरा संबल रही है।

बजाज पुरस्कार के लिए तो बजाज प्रतिष्ठान को बधाई दीजिए, उन्होंने पर्यावरण की रक्षा को मान्यता देकर जनता को इसके महत्व का अहसास कराया है। यह मान व अस्तित्व के लिए आवश्यक है।''

13 जून 1994 के एक पत्र में वरिष्ठ साहित्यकार व आलोचक कंवल भारती लिखते हैं: 'उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान' दलित साहित्यकारों को सम्मानित करेगा, ऐसा मैं फिलहाल तो नहीं सोचता हूँ। आप यदि इसके लिए सूची बनाकर काशीराम को लिखें और संभव हो, तो एक शिष्ट मंडल उनसे मिले भी, तो इसमें पूर्ण सफलता मिल सकती है। शिष्ट मंडल में मैं भी शामिल हो सकता हूँ। काशीराम और बसपा के पक्ष में मेरे लेखों का प्रभाव भी काशीराम पर है।''

1 दिसंबर 1992 के पत्र में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं :

'10–15 लोग यदि अपने खर्चे से आ भी जाए तो भी रहने खाने की व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी जिसके लिए आर्थिक भार वहन करने का कोई रास्ता ढूँढने की आवश्यकता है। आप योजना बनाएँ, मैं तैयार हूँ किंतु शर्त वही–मात्र साहित्य, राजनीति नहीं। दिल्ली के साहित्यकार साहित्य से ज्यादा राजनीति में रुचि लेते हैं, मेरा यह अनुभव है। इस वक्त जरूरत है दलित चेतना की गंभीर रचनाएँ सामने आएँ ताकि यह आरोप गलत साबित हो कि हिंदी में दलित रचनाकार नहीं है।'

दलित साहित्य के सौंदर्य में कलात्मकता नहीं होने के आरोप पर कथाकार रत्न कुमार सांभरियाँ अपने 27 जुलाई 2002 के पत्र में लिखते हैं–

'प्रकाश्य ग्रंथ के लिए 'बात' कहानी इसलिए भेजी है कि यह कहानी दलित चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। साथ उन लोगों के मुँह भी बंद करती है जो यह कहते हैं कि दलित वर्ग के लेखकों के लेखन में कलात्मकता नहीं है। खैर, आप तो समीक्षक हैं, अपनी कसौटी पर परखेंगे। इस माह एक कहानी 'कथाक्रम' में 'बात' छपी है और राजस्थान साहित्य अकादमी की पत्रिका 'मधुमती' में 'हुक्म की दुग्गी' प्रकाशित हुई है। कृपया अवलोकन कर पत्र दें।'

इन पत्रों के माध्यम से दलित साहित्य इतिहास की वे बातें भी पता चलती हैं कि किस प्रकार प्रकाशित रचनाओं पर गंभीर टिप्पणियाँ लेखकों द्वारा की जाती थीं। जयप्रकाश कर्दम अपने 27 फरवरी 2002 के पत्र में लिखते हैं–

'सूरजपाल चौहान जी का एक पत्र मुझे कोरियर से प्राप्त हुआ था जिसकी फोटो प्रति आपको भेजी गई है, मिल गई होगी। पत्र में 'दलित साहित्य 2002' में प्रकाशित आपके लेख को लेकर उन्होंने टिप्पणी की है। आप चाहें तो श्री चौहान को, उनकी टिप्पणी के संदर्भ में अपने स्पष्टीकरण/मंतव्य से अवगत करा सकते हैं।'

साहित्यिक पत्रिकाओं को निकालना कितना मुश्किल रहा है, यह जानकारी भी इन पत्रों से प्राप्त होती है। डॉ. विमल कीर्ति अपने 3 सितंबर 1998 के पत्र में लिखते हैं 'फिलहाल 'अंगुत्तर' का प्रकाशन स्थगित कर दिया गया है। अक्तू–नव.–दिस. 97 के बाद अंगुत्तर का कोई अंक नहीं छपा है। किंतु दिसंबर 98 से फिर नियमित प्रकाशन के बारे में सोच रहे हैं। क्योंकि अंगुत्तर के कई पाठकों ने अंगुत्तर के प्रकाशन को स्थगित कर देने पर अपनी नाखुशी व्यक्त की है। आप जानते हैं कि अंगुत्तर जैसी प्रतिबद्ध पत्रिकाएँ चलाना आसान नहीं है, बगैर विज्ञापनों के पत्रिकाएँ नहीं चल सकती। अंगुत्तर के लिए विज्ञापन मिलना आसान नहीं है, फिर भी हमारा प्रयास है कि अंगुत्तर की निश्चित व्यवस्था कर नियमित प्रकाशन हो।'

पहली पीढ़ी के आलोचक किस तरह ढूँढ–ढूँढकर या आपस में जानकारियाँ इकट्ठा करके समग्रता से आलोचनात्मक कार्य कर रहे थे। डॉ. तेज सिंह के 22 दिसंबर 2000 के पत्र में इसकी एक बानगी देखिए:

'इधर मैं दलित उपन्यास पर भी काम कर रहा हूँ। आपकी दृष्टि में पिछले 20–25 सालों में कुछ महत्वपूर्ण उपन्यास सामने आए हों तो उनकी एक सूची मुझे भेज दीजिए ताकि मैं उन्हें उसमें शामिल कर सकूँ। अगर उपलब्ध हो सके तो अच्छा रहेगा। या यह पता चल जाए कि वे कौन–कौन से उपन्यास लेखक का उपन्यास है जो अभी तक आलोचना से वंचित रहे हैं तो उनको भी सूचीबद्ध करके मेरी कठिनाई कम करें। क्योंकि अभी तक उपन्यास आलोचना उपेक्षित रही है।'

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने 1.12.1992 के पत्र में लिखते है ''दलित साहित्य के नाम पर ऊलजलूल लिखा जा रहा है, उसे भी छानने की आवश्यकता है''।

ओम प्रकाश वाल्मीकि का कोई उपन्यास नहीं छपा है लेकिन वह अपने 1 दिसंबर 1992 के ही पत्र में लिखते हैं ''एक उपन्यास छपते–छपते रह गया है 'काली रेत' नाम से पराग से वापस ले लिया है लेकिन वह उपन्यास कहाँ है कुछ पता नहीं है।'' ओमप्रकाश वाल्मीकि का कोई भी उपन्यास आज तक नहीं छपा है वह उपन्यास कहाँ है किसके पास है, उसे छपना चाहिए।

पहली पीढ़ी के लेखकों ने दलित साहित्य को स्थापित करने में एक आंदोलन की तरह कार्य किया है। 20 मार्च 1997 के पत्र में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं–

'12.3.97 को JNU में एकल काव्य पाठ था। कार्यक्रम सफल रहा। मैनेजर पांडेय जी का वक्तव्य कविताओं पर सशक्त एवं प्रभावशाली था। बाद में प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम में खुलकर बहस हुई। सभी प्रश्नों के उत्तर मैंने अपनी ओर से खुलकर दिए। मुझे व्यक्तिगत तौर पर लग रहा हैं कि ऐसे कार्यक्रम अवश्य होने चाहिए। विश्वविद्यालय में दलित साहित्य का यह कार्यक्रम सफल रहा है, तो इस से दलित आंदोलन में मजबूती मिलेगी।'

लेखन की पारस्परिक प्रगति की भी ये पत्र बहुत रोचकता से अच्छी जानकारी देते हैं। 2 सितंबर 1996 के पत्र में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं–

'जूठन' आत्मकथा राधाकृष्ण से छप रही है। शायद अगले माह तक आ जाएगी, वाणी से कविता–संग्रह, 'बस्स बहुत हो चुका' भी अक्टूबर तक आने की संभावना है।'

21.5.1995 के पत्र में ओमप्रकाश वाल्मीकि जानकारी देते हैं– एम.ए मैंने 1992 में गढ़वाल से किया है जबकि साहित्य मैं 1975 से ही लिख रहा हूँ। ओमप्रकाश वाल्मीकि किस लगन व गंभीरता से काम करते थे, यह उनके पत्रों में साफ दिखाई देता है।

'शिमला सेमिनार का निमंत्रण मुझे भी मिला है। मैंने स्वीकृति भेज दी है। आलेख तैयार कर रहा हूँ ताकि दलित चेतना के कुछ मूलभूत तत्वों पर बात उठाई जा सके।'

गैर दलितों द्वारा दलितों पर लिखे गए साहित्य के बारे में तर्क व खंडन की तैयारी पहली पीढ़ी के लेखकों ने कितनी सजगता, संवेदना एवं मेहनत से की है, यह देखने वाली बात है। 31 जनवरी 1996 के एक पत्र में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं–

'मुझे लगता है यदि हम लोग चर्चा में नए आयाम खोलेंगे, हरिजन गाथा, मोचीराम और नाच्यो बहुत गोपाल को यदि हम लोग दलित चेतना के आधार पर खारिज कर सकें तो बहुत कुछ साफ हो जाएगा।'

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने लेखन के साथ अन्य साथियों को भी परिश्रम करने के लिए प्रेरित कर रहे थे। 12 फरवरी 1996 के पत्र में मोहनदास नैमिशराय और कंवल भारती का जिक्र करते हुए वे कहते हैं–

'मेरे विचार से इन दोनों साथियों ने एक विशिष्ट काम किया है जिसकी आवश्यकता थी, हमें दूसरों के भरोसे नहीं रहना है। जब तक हमारे अपने साथी अन्य विधाओं में नहीं आएँगे एक गैप बना रहेगा।'

इन पत्रों की एक विशेषता यह भी है कि ये पत्र राज खोलते हैं कि ये लेखक पारस्परिक सहयोग, परामर्श, प्रोत्साहन आदि करके आपस में कार्य करते थे। 2 सितंबर 98 के पत्र में मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं–

'दलित आंदोलन के इतिहास पर जो मेरा शोधकार्य पिछले डेढ़ वर्ष पूर्व से चल रहा था, वह अब अंतिम चरण में है। अगले सप्ताह देहरादून और मसूरी आने का कार्यक्रम है। आपसे भी मिलकर कुछ जरूरी चर्चा करना चाहता हूँ। कृपया पत्र द्वारा सूचित करें कि आपका अगले सप्ताह क्या कार्यक्रम है।'

22 फरवरी 1999 के पत्र में डॉक्टर प्रेमशंकर से मसूरी मिलने के लिए वे डॉ. एन. सिंह को लिखते हैं:

'उन्होंने जो दलित उत्पीड़न पर अंक निकाले हैं, उन्हें देखना है। साथ ही उनसे दलित आंदोलन और साहित्य पर बातचीत भी करनी है। इसके अलावा वे अगर किसी अन्य से बात करा सकें।'

अपनी प्रगति व रचनाओं पर प्रतिक्रिया के लिए आपसी संवाद कायम करते हुए ये पत्र बहुत ही आत्मीय प्रतीत होते हैं। दिनांक 9 दिसंबर 1995, 29 जून 2001 व एक अन्य पत्र में दयानंद बटोही लिखते हैं–

'सुरंग (दलित कहानी–संग्रह) की इधर काफी चर्चा हो रही है। गुजरात, अहमदाबाद, हैदराबाद, दिल्ली, आगरा, वर्धमान, अलीगढ़ से कई पत्र आए हैं। इसका श्रेय आप विद्वानों को जाता है। सुमनलिपि टाकभौरे जी के पास देखा, अच्छा लगा। इतिहास आप बना रहे हैं, सुखद है।

सुरंग पर डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ, सुरेश कॉंटक, डॉ. शंभुनाथ अलग–अलग पत्रों में दे रहे हैं। लोगों ने गहराई से दलित साहित्य को लिखा है।

दलित साहित्य के लिए आप समर्पित हैं और साहित्यकारों को आपने हिंदी विश्वविद्यालयों में स्थान दिलाया है यह बेहद खुशी की बात है। कुमाऊँ वि.वि. में हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. लक्षमण सिंह बिष्ट 'बटरोही' मेरे साथ ही इलाहाबाद में शोध के प्रत्याशी रहे। उनका हो गया था रिसर्च में। मुझे वार्ष्णेय ने नहीं दिया मौका। मैंने

हजारीबाग में कहा था कि डॉ. एन. सिंह हमारे नामवर सिंह और मैनेजर पांडे हैं उनसे आगे हैं। राजेंद्र जी ने हामी भरी थी। आपकी लेखनी में तेज है, और लोगों को पढ़ने के लिए प्रेरित करती है जो भी पुस्तकें आपकी आई हैं उसमें। दलित साहित्य, साहित्यकार को लोग पढ़ते रहे हैं।

डॉ. देवेंद्र दीपक अपने 10 जनवरी 1991 के पत्र में लिखते हैं–

'जरूरी है कि दोनों वर्ग एक–दूसरे को समझें। मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि सवर्ण समाज को अस्पृश्य होने की पीड़ा का अहसास नहीं है। स्वयं मुझे भी नहीं था।'

इन पत्रों से यह भी पता चलता है कि सवर्ण वर्ग के प्रगतिशील लोग धीरे–धीरे दलित साहित्य के महत्व को समझने लगे थे।

आगे वह अपने 5 नवंबर 1999 के पत्र में लिखते हैं–

'लंदन में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में दलित साहित्य पर पृथक चर्चा हुई। कमलेश्वर को हिंदूवादियों का प्रभुत्व अखरा, लेकिन इन्ही हिंदूवादियों के प्रभुत्व वाले सम्मेलन में दलित साहित्य पर भी गोष्ठी हुई।'

अपने एक अन्य पत्र में देवेंद्र दीपक लिखते हैं–

'आपने जो दलित साहित्य की परिभाषा दी उसमें तो आपने हम जैसे लोगों को ही खारिज कर दिया। लिखना अपने हाथ में है दलित होना तो अपने बस में नहीं था। ठीक वैसे ही जैसे दलित न होना दलित के बस में नहीं था।'

ये पत्र साहित्य के साथ–साथ विश्वविद्यालय तथा सरकारी प्रतिष्ठानों में दलितों के साथ हो रहे भेदभाव की भी परतें खोलते हैं। इस तरह ये पत्र तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक स्थिति समझने में भी सहायता करते हैं। 9 जून 1995 के पत्र में श्योराज सिंह बेचैन लिखते हैं–

'दिल्ली वि.वि. के अधीन कॉलेजों में साक्षात्कार चल रहे हैं। मैं शिवाजी कॉलेज, सनातन धर्म कॉलेज, भीमराव अंबेडकर कॉलेज में साक्षात्कार दे चुका हूँ। हिंदी के साक्षात्कार लेने वाले दलित साहित्य के प्रति नकारात्मक पूर्वाग्रह लेकर बैठते हैं। इसलिए बावजूद S.C. में NET, Ph.D. का अभाव है। उच्च शिक्षा में (Lecturer) का प्रतिशत 0.2 प्रतिशत है। यहाँ लोकतांत्रिक भागीदारी नहीं है। इसका प्रभाव परंपरागत साहित्य की बढ़ती विशाल संख्या और दलित साहित्य का कम होना भी है।'

डॉक्टर चंद्रकुमार बरठे अपने दो पत्रों दिनांक 20 जनवरी 1987 व 22 मार्च 1987 के पत्र में लिखते हैं–

'आपके द्वारा प्रेषित पुस्तक ''संत कवि रैदास : मूल्यांकन और प्रदेय'' प्राप्त हुई। बहुत–बहुत धन्यवाद एवं हार्दिक बधाइयाँ। बधाइयाँ इसलिए कि आपने संत रैदास के जीवन से संबंधित एक बढ़िया और खूबसूरत पुस्तक लिखी है।'

कमलेश्वर के संपादन में 'सारिका' के दो विशेषांक निकले थे, वे इस प्रकार हैं– अप्रैल 1975 अंक 7 एवं मई 75 अंक 8। संभवतः ये अब उपलब्ध नहीं हो पाएँगे। डॉ. महीप सिंह ने भी संचेतना का एक विशेषांक निकाला था जो अब पुस्तक रूप में उपलब्ध है।

प्रथम पीढ़ी के लेखक एक दूसरे का मनोबल बढ़ाने व मुक्तकंठ से प्रशंसा करते दिखाई देते हैं जो दलित साहित्य आंदोलन को मजबूती देने के लिए जरूरी था। डॉक्टर सुखबीर सिंह का एक महत्वपूर्ण पत्र देखें–

'आपका पत्र मिला। 'बयान बाहर' कविता भेज रहा हूँ। 'सतह से उठते हुए' को पढ़ गया हूँ। इसके वैचारिक सरोकारों ने प्रभावित किया है। आपने अपने समय की सच्चाइयों को बड़ी बेबाकी से अभिव्यक्त कर दिया है। सबसे बड़ी बात यह है कि समय की दौड़ में पिछड़ गए आदमी के साथ आपकी केवल सहानुभूति ही नहीं है अपितु प्रबल पक्षधरता है। आज के समय की यही सच्ची और सही कविता है। दलित जीवन की सामान्य विवशताओं के प्रति भी आपकी कविता संवेदनशील रही है। व्यंग्य और विद्रूप की शैली में आज की राजनीति पर आपके कटाक्ष काफी सार्थक बन पड़े हैं। कविताओं के साथ–साथ ग़ज़ल के क्षेत्र में भी आपकी गहरी पैठ भी दिखाई पड़ती है। ग़ज़लों की सादी अदायगी और बात कहने के ढंग ने प्रभावित किया है। मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि शीघ्र ही आप समकालीन हिंदी कविता में अपना–अलग और महत्वपूर्ण स्थान बनाने में सफलता प्राप्त कर लेंगे।'

कालीचरण स्नेही अपने पत्रों दिनांक 12 मार्च 1993 तथा 17.5.2000 में लिखते हैं– 'दर्द के दस्तावेज' सचमुच दलितों की गीता है। इसमें आपने संताप के शिलालेख प्रस्तुत कर दिए हैं। आपकी रचनाएँ भी प्रथम बार पढ़ीं, आँच और तपन दोनों ही हैं, आपकी कविताओं में। कश्मीर से कन्याकुमारी तक दलित, एक ही भट्टी में तप रहे हैं। पता नहीं यह भट्टी कब सिराएगी। एक बात सच ही है कि दलितों की शाब्दिक प्रहार क्षमता अद्भुत है। उनका अपना भोगा सत्य कविता का जीवंत स्वरूप है।

आने वाले युग में जब हमारी रचनाओं का मूल्यांकन होगा तब आपका नजरिया ही प्रामाणिक माना जाएगा। अपनी दो टूक टिप्पणी अवश्य भेजें।'

इस तरह इन 40 लेखकों के लगभग 200 पत्रों में जीवन के विभिन्न उतार–चढ़ाव, आत्मीय क्षण, प्रेम लगाव, प्रेरणा, प्रोत्साहन के साथ दलित साहित्य के उद्भव व विकास में पहली पीढ़ी के लेखकों का संघर्ष व सहयोग देखने को मिलता है।

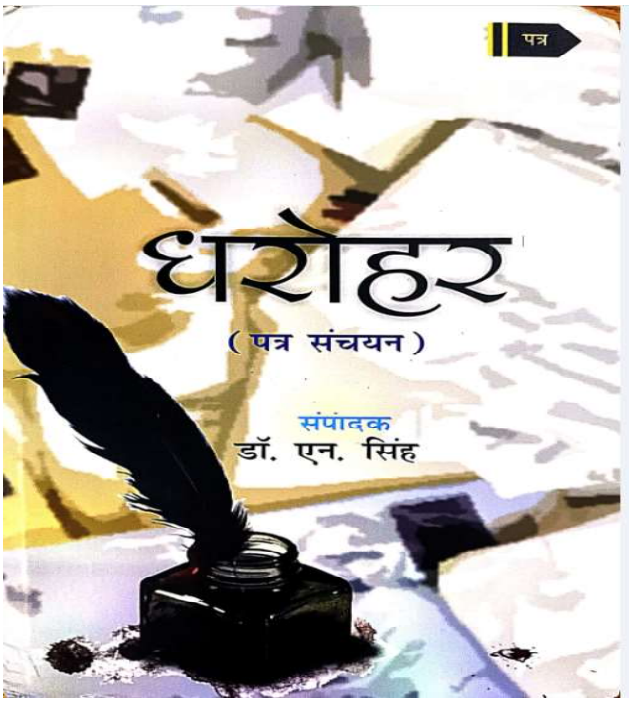
ये पत्र तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक रचनात्मक बेचैनियों की पड़ताल के लिए अपने अंदर बहुत कुछ समेटे हुए है, इनमे पारिवारिक चिंताओं से लेकर सामाजिक सहयोग तक के भाव बहुत गहरे तक देखे जा सकते है।

'समकाल' पत्रिका का दलित विशेषांक निकलते हुए मुझे डॉ. एन. सिंह जी से ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के कुछ पत्र छापने के लिए प्राप्त हुए थे जिन्हें मैं 'धरोहर' नाम से ही पत्रिका में छाप रहा था, परंतु पृष्ठ संख्या की सीमा के कारण उस समय इस महत्वपूर्ण धरोहर को मैं छाप नहीं सका। मुझे आज खुशी हो रही है कि संपादक डॉ. एन. सिंह जी ने इन पत्रों को धरोहर नाम से ही प्रकाशित किया है।

पत्राचार बहुत ही रोचक तथा अनेकानेक जानकारी से भरा है जो पुस्तक को बहुत पठनीय, रोचक तथा संग्रहणीय बनाता है। यह पुस्तक हर लेखक को पढ़नी चाहिए ताकि वह प्रथम पीढ़ी के उन्नायकों से प्रेरणा ग्रहण कर सके।

पुस्तक में कुछ पत्रों के क्रम तिथिनुसार आगे पीछे हो गए हैं, तथापि वे अपने संदर्भ में स्पष्ट हो जाते हैं, फिर भी संपादक को इस पर ध्यान देना चाहिए था। अच्छा रहता कि संपादक जो स्वयं पत्र–लेखक भी हैं, आवश्यकतानुसार किसी पत्र को संदर्भ से जोड़ने के लिए फुटनोट भी दे देते तो नए पाठकों के लिए जानकारी स्पष्ट रहती। फिर भी ये पत्र एकतरफा होते हुए भी अपने आप में काफी स्पष्ट व संदर्भ को जोड़ लेते हैं, यह ही इन पत्रों की विशेषता है। पुस्तक का मूल्य भी पाठकों के लिए बहुत अधिक है।

संपादक डा. एन. सिंह जी को यह अमूल्य धरोहर सुधी पाठकों को सौंपने के लिए बहुत–बहुत साधुवाद, आभार एवं बधाई।



❑❑❑

प्राप्ति स्वीकार

1. युद्ध के विरुद्ध / कुमार अनुपम / सर्व भाषा प्रकाशन / जे–49 स्ट्रीट नं. 38, राजापुरी मेन रोड़, उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059 / प्रकाशन वर्ष–2024 / मूल्य–400 / पृष्ठ–360
2. अगम बहै दरियाव / शिवमूर्ति / राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. / 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियांगज, नई दिल्ली–110002 / प्रकाशन वर्ष 2024 / मूल्य–599 / पृष्ठ–587
3. नेपाली में हिंदीः स्थिति और संभावनाएँ / विमलेश कांति वर्मा, संजीत वर्मा / हिंदी बुक सेंटर / 4 / 5बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002 / प्रकाशन वर्ष 2024 / मूल्य–750 / पृष्ठ–403
4. पर्वत पर्वत बस्ती बस्ती / चंडी प्रसाद भट्ट / निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया फेज–2, वसंत कुंज, नई दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष–2023 / मूल्य–201 / पृष्ठ–233
5. पूर्णमासी / जसवंद सिंह कंवल, अनुवाद–कुलवंत सिंह कोछड़ / प्रकाशक–निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया फेज–2, वसंत कुंज, नई दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष–2022 / मूल्य–180 / पृष्ठ–2011
6. मय्यषी नदी के किनारे / एम.मुकुंदन, अनुवाद–सुधांशु चतुर्वेदी / प्रकाशक–निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया फेज–2, वसंत कुंज, नई दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष 2022 / मूल्य–375 / पृष्ठ–299
7. विरले दोस्त कबीर के / कैलाश नारायण तिवारी / प्रकाशन–निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया फेज–2, वसंत कुंज, नई दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष–2023 / मूल्य–155 / पृष्ठ–160
8. कहानियाँ कहावतों की / प्रताप अनम / प्रकाशन– निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया फेज–2, वसंत कुंज, नई दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष–2022 / मूल्य–110 / पृष्ठ–126
9. मेरी यात्रा / विष्णुभट गोड़से / प्रकाशन– निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया फेज–2, वसंत कुंज, नई दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष–2022 / मूल्य–190 / पृष्ठ–157
10. पिता पुत्र / होमेन बरगोहांई / प्रकाशन– निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीटयूशनल एरिया फेज–2, वसंत कुंज, नई दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष–2022 / मूल्य–185 / पृष्ठ–235

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन
   सेक्टर–1 मकान नं.–122, वसुंधरा, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश–201102
   मो॰–9718371808, ई-मेल–sheorajsinghbechain@gmail.com
2. डॉ. एलाङबम विजयलक्ष्मी
   Uripok, Ningthokhongjam, Laikai West, Imphal, Manipur- 795001
   मो॰– 9856138333, ई-मेल–vningthoukhongjam@gmail.com
3. डॉ.राजेंद्र गौतम
   पूर्व प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय, 906, झेलम, प्लॉट 8, सैक्टर 4, द्वारका, नई दिल्ली–110075 मो॰–9868140469, ई-मेल–rajendragautam99@yahoo.com
4. डॉ. एस. ए. मंजुनाथ
   Head of Hindi Department, Pompei. College, Aikala, Mangaluru, Karnataka-574141 Mobile- 9449546665, Email- manjuspc66@gmail.com
5. डॉ. मंटू कुमार साव
   138/1, पद्मपुकुर रोड, पो. ऑ. फिंगापारा, जिला नार्थ 24 परगना, पश्चिम बंगाल–743129 Mobile- 9339825170, Emai- shaw_mantoo@rediffmail.com
6. डॉ. गजेंद्र पाठक
   Deptt. Of Hindi, School of Humanities, University of Hyderabad, CR Rao Road, Gachibowli, Hyderabad, Telangana-500046, Mob- 8374701410, Email- gkpsh@uohyd.ac.in
7. डॉ. वर्षा कुमारी
   Flat No-& B-210, 2nd Floor. Fortune Greenhomes Sapphire, Tellapur Village, Sangareddy. Hyderabad-502032 Mobile- 7569961990, Email-warsha_ipdrf@uohyd.ac.in
8. डॉ. उषा शर्मा
   प्रवक्ता, अध्यापक शिक्षा विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा–282005
   मो॰–9397737378, ई-मेल–ushasharma9216@gmail.com
9. डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति
   पं. सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, छत्तीसगढ़, कोनी–बिरकोना रोड, बिलासपुर, छत्तीसगढ़–495009, मो॰–9229703055, ई-मेल–singh.jaipal82@gmail.com

10. डॉ शशि शर्मा
    गौर आवास, फ्लैट नं. 4, रबींद्र पल्ली, भाटीगारा, दार्जिलिंग, सिलीगुड़ी–734010
    Mobile- 9832321080, Email- anantshashi.sharma43@gmail.com
11. डॉ. अशोक कुमार मीणा
    सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रामलाल आनंद कॉलेज, 5 बेनितो जुआरेज मार्ग, साउथ कैंपस, आनंद निकेतन, नई दिल्ली–110021 मो·–9891639251 ई-मेल–ashokmeenajnu@gmail.com
12. सुश्री पूजा पाराशर
    30/43, 1st Floor, Madhavan Nair Road, Mahalingapuram, Chennai - 600034
    Mobile- 9025279034, Email- poojasudharsun@gmail.com
13. डॉ तुकाराम दौड
    पीयूष प्लाजा अपार्टमेंट्स, गुरुदत्त नगर, जलगाँव, महाराष्ट्र - 425002
    Mobile- 9420438453, 9834186493, Email- tvdaud@gmail.com
14. प्रोफेसर पठान रहीम खान
    Deptt. of Hindi, Maulana Azad, National Urdu University, Gachibowli Hyderabad, Teleangana-500032, Mobile- 9440214888 Email- drprahimkhan@gmail.com
15. डॉ. रेखा रानी
    द्वारा भीम राज टाक, एच.एम.टी. कॉलोनी, गेस्ट हाउस के विपरीत, रेलवे लाइन के नजदीक, सुभाषनगर, अजमेर, राजस्थान–305001 Mobile- 9636790262, Email- rekha26684@gmail-com
16. डॉ. कमलेश कुमारी
    सह–आचार्य, हिंदी विभाग हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, जंत–पाली महेंद्रगढ़, हरियाणा–123031 मो·–7015405750 ई-मेल–kumaridrkamlesh@gmail.com
17. डॉ. गौरव रंजन
    Assistant Professor, Department of Journalism and Mass Communication, Central University of Orissa, Sunabeda, NAD Post office Koraput, Odisha Pin-763004 Mobile- 8539010264, Email- gauravholymonu@gmail.com
18. श्री औदुंबर बबनराव मोरे
    बाल भीम आर्ट्स साइंस एंड कॉमर्स कॉलेज, बालभीम नगर पथ बी, बीड महाराष्ट्र - 431122
    Mobile- 9421213575 Email- audumbarhindi@gmail.com

19 प्रो. भाऊसाहेब नळे
सुंदरराव सोलके कॉलेज, मंगलनाथ कॉलोनी, मजलगाँव, महाराष्ट्र - 431131
Mobile- 9665905638, Email- Drnale1980@gmail.com

20. श्री सागर देसले
सहायक प्रोफेसर, श्री गोविंद गुरु यूनिवर्सिटी, गोधरा विंजोल, कोकंण पुर, गुजरात- 388713 मो·–9687089896, ई-मेल–sagar-hindiphd@msubaroda.ac.in

21. श्री काशीनाथ सिंह
बी–61, ब्रिज एन्क्लेव कॉलोनी, सुंदरपुर, वाराणसी, उत्तरप्रदेश–221005
मो·–9452826562 ई-मेल–kashinathsingh1937@gmail.com

22. सुश्री पल्लवी फताटे
Research Scholar, Hindi Department, Karnataka State Akkamahadevi Women's College Athani Rd., Jnanashakti Campus, Torvi, Vijayapura, Karnataka-586108
Mobile- 8123602185, Email- pallavimphatate85@gmail.com

23. श्री नीरज नीर
आशीर्वाद, बुद्ध विहार पोस्ट ऑफिस–अशोक नगर, राँची, झारखंड–834002
मो·–8789263238 ई-मेल–neerajcex@gmail.com

24. श्रीमती मंगला रामचंद्रन
608, आई ब्लॉक, मेरीगोल्ड, ओशन पार्क, निपानिया, इंदौर, मध्यप्रदेश–452010
मो·–9753351506 ई-मेल–mangla.ramachandran@gmail.com

25. डॉ. अशोक बाचुलकर
असिस्टेंट प्रोफेसर एंड चेयरमैन हिंदी डिपार्टमेंट, आजरा कॉलेज, आजरा, तहसील आजरा महाराष्ट्र-416505 Mobile - 9423391579, 9764835672, Email- avbachulkar1973@gmail.com

26. सुश्री मीता दास
63/4 नेहरू नगर पश्चिम, भिलाई, छत्तीसगढ़ 490020, मो·–9329509050, ई–मेल mitad1906@gmail.com

27. सुश्री चंद्रमति chandradeep, C13, Mukalurmoola, Trivendrum-695020
Mobile No. 9447387644

28. श्रीमती जे.एस. तंकमणि अम्मा
पूर्व प्रोफेसर, डी.7, केरल विश्वविद्यालय, तिरूअनंतपुरम मो.–9349193272 ईमेल–Sthankamoniamma@gmail.com

29. सुश्री कागो मादो,
C/O Taru Yami, composite live stock stock farm, Nirjuli, P.O P.S Nirjuli Distt- Papumpare, Arunachal Pradesh-791109

Mobile-8171573205 Email- kmado3261@gmail.com

30. श्री नरेंद्र पुंडरीक
    डी.एम. कालोनी, सिविल लाइन, बाँदा उत्तरप्रदेश–210001
    मो·–9450169568 ई-मेल–pundriknarendr549k@gmail.com
31. श्री वीरभद्र कार्कीढोली
    Chief Editor- Prakriya-P.B. No.6, Gangtok, Sikkim - 737101
    Mobile- 9933129220, Email- birbhadra777@gmail.com
32. श्री सुशांत सुप्रिय
    ए–5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश–201014
    मो·–8512070086 ई-मेल–sushant1968@gmail.com
33. श्री पी. विट्ठल, प्रोफेसर, मराठी विभाग, स्वामी रामानंद तीर्थ मराठावाड़ा विश्व विद्यालय, नांदेड– 431606 ईमेलः P.vitthal75@gmail.com, Mobile-9850241332
34. प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी देशगव्हाणकर, निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा–282004 ईमेलः directorofficekhs1960@gmail.com
35. सुश्री संगीता बर्वे
    91/A, प्लॉट नं. 17, सी.टी.एस नं. 1263, स्नेहलबाग फ्लैट नं. 201, तुलसीबाग वाले कॉलोनी, सहकार नगर नं. 02 पार्वती, पुणे-411009
    Mobile- 9545995693, Email- dr.sangeeta.barve@gmail.com
36. डॉ. सुलभा कोरे
    A313-314, अर्जुन नगर कॉप्लेक्स, पथरली रोड, डॉम्बेवेली ईस्ट, महाराष्ट्र-421201, Mobile- 9820468919, Email- Kore.sulabha@gmail.com
37. श्री फुकनचंद बसुमतारी
    Department of Bodo Cotton University, Hem Baruah Rd. Pan Bazaar, Guwahati, Assam-781001
    Mobile No- 9954123839, Emai id: pcbasumatary@cottonuniversity.ac.in
38. डॉ. स्वर्णप्रभा चैनारी
    Bodo Department, Guwahati University, Gopinath Bardoloi Nagar Jalukbari, Guwahati, Assam- 781014,
    Mobile- 9435144323, Email- Swarna@gauhati.ac.in
39. डॉ. पूनम तुषामड़
    एच.एन. 1,2, पॉकेट, 2 गेट नंबर 5, अपर ग्राउंड फ्लोर, सेक्टर 22, रोहिणी, दिल्ली–110086 मो·–9013893213, ई-मेल–tushamadpoonam@gmail.com

40. प्रो. रामदेव शुक्ल
ए–387, शीतल सुयश, राप्ती चौक पोस्ट, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर, उत्तरप्रदेश–273003
मो·–9956585193 ई-मेल–shuklaramdeo@gamil.com
41. डॉ. राजेश पाल
गणित विभाग, डी.ए.वी.(पी.जी.) कॉलेज, देहरादून, उत्तराखंड़–248001
मो·–9412369876 ई-मेल–prof.rajeshpal24@gmail.com

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066

ई.मेल – chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

.....

मोबाइल/दूरभाष : .....

ई–मेल : .....

संबद्धता/व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस पर : .....

पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

सदस्यता शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in – Quick Payment – Ministry (007 Higher Education)- Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।



केंद्रीय हिंदी निदेशालय और केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह लद्दाख के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदीतर भाषी हिंदी नवलेखन शिविर के कविता कैसे लिखें सत्र में अपना वक्तव्य देते हुए निदेशक प्रोफेसर सुनील बाबुराव कुळकर्णी साथ में हैं शिविर प्रभारी डॉक्टर नूतन पांडेय तथा अन्य विशेषज्ञ





पत्राचार पाठ्यक्रम विभाग द्वारा आयोजित परीक्षा सत्र 2023–2024 की झलकियां

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305.3-4.2024
700

प्रधान संपादक के मंतव्य से साभार...

वर्तमान समय में देश में हुई कुछ घटनाओं ने मानव जगत को विचलित किया है जो यह दर्शाता है कि घटती संवेदना पृथ्वी के अस्तित्व को खतरे में डाल रही है और मानव सभ्यता नैतिक पतन की ओर है। एक जिम्मेदार नागरिक होने के नाते हम सभी का यह दायित्व है कि हम अपनी संवेदना को टटोलें, विवेक का इस्तेमाल करें और आत्ममूल्यांकन करें कि संवेदनहीनता से अस्मिता, प्रतिष्ठा पर आंच न आए अपितु ऐसी कोमल भावनाएँ रखें जिससे मानुष होने का अर्थ बना रहे। स्वतंत्रता आंदोलन के समय दिनकर, पंत, निराला जैसे महान क्रांतिकारी कवियों ने चेतना जगाने की जो मशाल जलाई थी, वह मशाल वर्तमान साहित्यकारों को दृढ़ता से थामकर संवेदना को खत्म न होने देने का आह्वान करते रहना चाहिए। कृतिकार 'दिनकर' ने 'रश्मिरथी' में लिखा है– 'ऊँच–नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है, दया धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है'

प्रो.सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर



केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
दूरभाष:–011–20862356/26105211
एक्सटेंशन– 248
www.chd.education.gov.in
www.chdpublication.education.gov.in
bhashaunit@gmail.com

Central Hindi Directorate
(Ministry of Education, Govt. of India)
West Block-7, Ramakrishnapuram,
New Delhi-110066
www.chd.education.gov.in
www.chdpublication.education.gov.in
bhashaunit@gmail.com